CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आवश्यकता है क्योंकि इस प्रकार सर्व व्यापी ईश्वर का सुन्दर स्वरूप विश्व के कण कण में गोचर हो सकता है अतः सहज ध्यान लगाये आँख खोलें रहो और सबद(गुरु का दिया ज्ञान) में सर्वदा चित्त लगाये रहो और चित्त से अपवित्र वासनाओं को त्याग दो और फिर ऐसा ताला लगा देने की आवश्यकता है कि उठते बैठते कभी भी यह सहज ध्यान न टूटने पावे। कबीर कहते हैं कि हे भाई! यह 'उनमुनि' मुद्रा ही रखनी आवश्यक है जिसमें मन की प्रवृत्ति अन्तंमुखी और स्थिर हो जाती है। इस प्रकार का ध्यान संसार में प्रकट रूप धारण करने पर ही उस परम पद की प्राप्ती होती है जो समस्त सुख दुख के बन्धन से दूर है अर्थात् प्राणी उस परम पिता में लीन हो जाता है और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विशेष—सद् गुरु के बताये हुए रहस्य से निज लक्ष्य में ध्यान लगाने को सहज समाधि कहते हैं। इस ध्यान में किसी प्रकार के बाह्याडम्बर (आसन मुद्रा आदि) की आवश्यकता नहीं रहती।

## साखी

विशेष टिप्पणी—साखी का अर्थ है साक्ष्य या साक्षात् अनुभव साखियों में महान पुरुष अपना अनुभव उपदेश के रूप देते थे। साखियाँ प्रधानतः दोहा छंद में ही लिखी जाती थीं परन्तु कबीर ने दूसरे छंदो का भी प्रयोग किया है।

(१) वहे वहाये.............दीपक दीन्हा हाथ।

शब्दार्थ—लोक-वेद=लौकिक आचार; पैंड़ा=मार्ग।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि हम लौकिक आचारों के साथ संसार में बहे जा रहे थे अर्थात् समस्त संसार जिस रास्ते पर चल रहा था उसी पर हम भी चले जा रहे थे परन्तु सौभाग्य से रस्ते में सतगुरु से भेंट होगई और उन्होंने ज्ञान का दीपक हमारे हाथ पर रख दिया।

टिप्पणी—सांसारिक गति पर अपने विचार प्रगट करते हुये कबीर ने एक और स्थान पर कहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ऐसी गति संसार की ज्यों गाडर की ठाट।
एक पड़ी जेहि गाढ़ में सवें जाहिं तेहि बाट॥

(२) सतगुरु सांचा ................ भीतर चकना चूर।

शब्दार्थ—सूरमा=शूरवीर। नख सिख=पैर के नाखून से लेकर चोटी तक अर्थात संपूर्ण शरीर। दीसई=दिखाई देना।

अर्थ—सतगुर ही सच्चा शूरवीर है क्योंकि उसकी ज्ञान की मार का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है और विशेषता यह रहती हैं बाहर से उस मार का कोई घाव शरीर पर दिखाई नहीं देता है परन्तु अन्तः करण के समस्त पाप चकना चूर हो जाते हैं और हृदय अत्यन्त निर्मल हो जाता है।

(३) प्रेम प्रेम ..................... प्रेम कहावै सोय।

शब्दार्थः—चीन्है=पहचाने। भीना=भीगा।

अर्थः—प्रेम प्रेम समस्त संसार पुकारता है परन्तु प्रेम के वास्तविक स्वरूप को कोई नहीं पहचानता है। सच्चा प्रेम उसे कहते हैं जिसमें जीव आठों पहर भीगा रहता है

विशेष—कवीर ने अपनी साधना सच्चे प्रेम को बहुत महत्व वतलाया है इस लिये प्रेम का पाठ पढ़ने वाले को उन्होंने महान पंडित कहा है—

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

(४) जब मैं था ..................न [illegible]माहि।

शब्दार्थ—मैं=अहं भाव, अहंकार, साकारी [illegible]

अर्थ—जब मेरे अन्त: करण में अहं भाव था तब गुरू का महान स्वरूप मेरे अन्तकरण में प्रतिष्ठित नहीं होता था परन्तु जब से मैंने अहंकार का त्याग कर दिया है तब से गुरू ने मेरे हृदय में अमिट स्थान बना लिया है क्योंकि प्रेम की डाली अति संकरी है उसमें एक साथ दो नहीं समा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विशेष—कबीर ने अन्य स्थान पर लिखा है—

गुरु गोविन्द तो एक हैं, दूजा यह आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार॥

अर्थात गुरू और गोविन्द में कोई अन्तर नहीं है अतः हम उपर्युक्त साखी में गुरू का अर्थ 'हरि' से भी ले सकते हैं। इस साखी से मिलती जुलती एक साखी और भी मिलती है—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहि।
सब अन्धियारा मिट गया, दीपक रेखा माहिं॥

(५) जाति न पूछो..................रहन दो म्यान।

शब्दार्थ—तरवार—तलवार।

अर्थ—संत पुरुष की जाति पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है केवल उसके ज्ञान का मूल्य समझने की आवश्कयता है। जिस प्रकार तलवार खरीदते समय म्यान को छोड़कर तलवार का मोल किया जा सकता है इसी प्रकार साधु पुरुष के ज्ञान का मान करना चाहिये न कि उसकी कुलीनता का।

टिप्पणी—कबीर 'जाति पाति पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का होई'—उक्ति में विश्वास करते थे।

(६) कबीर संगत..................कहसी कोय।

शब्दार्थ—बांवना=उत्तम।

अर्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि साधु की संगति कभी निष्फल नहीं होती। साधु संगति में तुम नीम से उत्तम चंदन बन में आये, फिर उत्तम चन्दन को कोई नीम नहीं बतलाएय।

नोट—'बासना' के स्थान पर बांवना होना चाहिये, देखो कबीर ग्रन्थावली श्याम सुन्दर दास —(४८) साध को अगं (१)

(७) कथा कीरतन..................की खेह।

शब्दार्थ—उद्यम=कार्य। खेह—धूल।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि जिस साधु पुरुष के यहां दिन रात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कथा कीर्तन ही होता रहता है उस महापुरुष की हम चरण रज के समान हैं।

(८) कथनी मीठी ............... अमृत होय।

शब्दार्थ—कथनी = वाणी; लोय = लपट, ज्वाला।

अर्थ—संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो ऊपर से तो शक्कर जैसी मधुर वाणी बोलतें हैं परन्तु उनका वास्तविक व्यवहार विष मयी ज्वाला के समान विषम होता है। कबीर कहते हैं कि यदि वे मधुर वाणी का त्याग कर अपना वास्तविक व्यवहार सब पर प्रकट करदें अर्थात् कहने और करने में कोई अन्तर न रखें तो उनका विषमय व्यवहार ही अमृत मय समझा जा सकता है क्योंकि वहां पर छल और कपट की गंध नहीं आती। कबीर ने कहा भी है—

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
पार ब्रह्मनेड़ा रहे, पल में करे निहाल॥

(९) तन तुरग............लिये हाथ।

शब्दार्थ—तुरंग = घोडा। पियादा = पैदल। त्रिस्ना = तृष्णा लालसा। विषै = विषय।

अर्थ—यह शरीर तो घोड़ा है, मन इस पर सवार रूप है और कर्म रूपी पैदल इसके साथ साथ चल रहा है। इससे कबीर का तात्पर्य यह है कि मन के आधीन यह शरीर रहता है और फिर मन की गति के साथ साथ ही कर्म होते हैं। फलस्वरू[illegible] मन के आदेश पर तृष्णायें अर्थात् आकांक्षायें विषय वासना रूपी [illegible] में लेकर शिकार करती हैं। जिस प्रकार शिकारी बाज नामक चि[illegible] हाथ पर बैठा कर शिकार करता है, यह बाज हाथ पर से उड़ कर [illegible] छोटे पक्षियों का शिकार करता है और उन्हें लाकर शिकारी को दे देता है इसी आधार पर बिहारी ने लिखा है—'बाज पराये पानि पर तू पक्षीन न मारि'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अतः प्रस्तुत साखी में द्वितीय पंक्ति का भाव यह है कि विषय वासना रूपी वाज अपने विषयों के अनुकूल स्वरूप रूपी पक्षी ढूंढता है और इस प्रकार तृष्णा रूपी शिकारी की आकांक्षायें तृप्त होती हैं।

(१०) सब रग तांत..........कै चित।

शब्दार्थ—रग=नाड़ी; रवाब=एक प्रकार का सारंगी जैसा वाद्य-यन्त्र; साईं=ईश्वर।

अर्थ—यह शरीर एक रवाब के समान है और इसकी नाड़ियाँ तांत के समान हैं जिनको विरह (परमात्मा से वियोग) नित्य प्रति निनाद्रित करता है। इस आवाज़ को कोई दूसरा नहीं सुन सकता या तो स्वयं अपना मन सुन सकता है या ईश्वर।

जायसी ने भी इसी भाव को लेकर लिखा है—

हाड़ भये सब किंगरी नसें भई सब तांति।
रोंव रोंव से धुनि उठे, कहो विथा केहि भाँति॥

(११) कबीर माइया चोरटी..............बारह वाट।

शब्दार्थ—माइया=माया; चोरटी=चोर; मुसि=चुराना; हाटि=बाजार; बारह बाट=नष्ट भ्रष्ट।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि माया एक चोर की तरह है जो लोगों के मन को चुरा चुरा कर संसार रूपी बाजार में ला कर बेचती रहती है। एक कबीर के मन को ही वह नहीं चुरा सकी जिससे स्वयं माया को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

विशेष—[illegible] इस पद द्वारा यह आदेश है कि मनोबल के द्वारा माया को परास्त किया जा सकता है।

यही भाव व्यक्त करते हुये कबीर एक और स्थान पर लिखते हैं—

कबीर माया डाकणीं सब किसही कौं खाइ।
दाँत उपाड़ौं पापणी, जे संतो नेड़ी जाय॥

(उपाड़ौं=उखाड़ौं; नेड़ी=समीप)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कबीर जिसु................ पूरन परमानंद।

शब्दार्थ—पूरन=पूर्ण

(१२) अर्थ—कबीर कहते हैं जिस मरने से संसार डरता है, वही मरण मेरे हृदय में आनन्द भर देता है, क्यों कि मरने पर ही पूर्ण आनन्द मय अवस्था की प्राप्ती होती है।

विशेष—कबीर को अपनी पवित्रात्मा पर विश्वास है कि वह मृत्यु के पश्चात परम पिता परमात्मा में लीन हो जायगी अतः मृत्यु उनके लिये परम आनन्द का विषय है।

(१३) कबीर तासिउ..................कउने काम।

शब्दार्थ—ठाकुरु=स्वामी, आराध्य देव, कउने=किस

अर्थ—कबीर कहते हैं कि तू उस साधु पुरुष से प्रेम कर जिस का आराध्य राम है। पंडित राजा और भूपाल ये किस काम आते हैं? अर्थात पंडित राजा भूपाल आदि से प्रेम करना व्यर्थ है, किसी संत से प्रेम करना ही सार्थक है क्यों कि सन्मार्ग का ज्ञान देता है।

(१४) कबीर जगु काजल............जु नीकसि जाहि।

शब्दार्थ—अन्ध=अन्धे, पैसि=प्रवेश करके, नीकसि जाहि=निकल जाते हैं।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि यह संसार एक काजल की कोठरी है और उसमें रहने वाले भी अन्धे हैं क्यों कि वे निकल नहीं सकते। मैं तो उनकी बलिहारी जाता हूँ जो उस में प्रवेश करके भी बाहर निकल आते हैं।

(१५) कबीर इहु तनु...........लाख करोरि।

शब्दार्थ—लेहु बहोरि=बचालो; पावहु=पैर

अर्थ—कबीर दास कहते हैं यह शरीर नष्ट हो जायगा। यदि तुम में शक्ति हो तो इसे बचा लो। जिनके पास लाखों और करोड़ों का धन था वे भी इस संसार से नंगे पैर ही गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


(१६) कबीर मरता..............मरना होइ ।

शब्दार्थ—मुआ=मर गया; बहुरि=फिर ।

कबीर दास कहते हैं कि मरते मरते यह सारा संसार मर गया किन्तु वास्तव में किस प्रकार मरा जाता है यह कोई नहीं जान सका । वास्तव में मरना वही है कि एक बार मर कर पुनर्मरण न हो अर्थात आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाय ।

(१७) कबीर मानस...............लागहि डार ।

शब्दार्थ— पाके=पके हुए; भुइ=पृथ्वी ।

अर्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है यह बार बार नहीं मिलता। जिस प्रकार वन के वृक्षों से पके हुये फल एक बार पृथ्वी पर गिरकर फिर डाल से नहीं लगते ।

विशेष—मानव योनि सर्व श्रेष्ठ है यह बार बार प्राप्त नहीं होती अतः कबीर उपदेश देते हैं कि इस जन्म में महान और पवित्र कर्म करके इसे सुधार लो और आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाय अन्यथा तो निकृष्ट कर्म करने से मनुष्य की योनि भी पुनः प्राप्त न होगी ।

(१८) कबीर झंखु...................साके कोई ।

शब्दार्थ—झंखु=झींकना । करीम=ईश्वर ।

अर्थ—कबीर कहते हैं तुम झींकना क्यों झींकते हो तुम्हारा कहा हुआ अर्थात इच्छित कार्य तो होगा नहीं । उस करीम ने तुम्हारे लिये जो कर्म निर्धारित कर दिये गये हैं उन्हें कोई मिटा नहीं सकता ।

टिप्पणी—कबीर ने अन्य स्थान पर भी कहा है—

करम गति टारे नाहि टरहि ।

(१९) कबीर कसउटी....................मरिजीवा होइ ।

शब्दार्थ—कसउटी=कसौटी । मरिजीवा=जीते जी संसार के प्रति मृतकवत ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—कबीर कहते हैं राम एक ऐसी कसौटी की तरह है जिस पर झूठा मनुष्य टिक नहीं सकता अर्थात उसके दोष शीघ्र ही प्रगट हो जाते हैं। राम रूपी कसौटी तो वही सहन कर सकता है जो जीते जी संसार के प्रति मृतकनत होता है।

(२०) हाड़ जरै.............कबार उदासु।

शब्दार्थ—हाड़=हड्डियां। लाकरी=लकड़ी।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि मरने पर हड्डियां तो लकड़ी की तरह जलती हैं और केशराशी घास की तरह। इस प्रकार संसार को जलता देख कबीर को स्वयं दुख हुआ।

विशेष—(१) कबीर के दुख का कारण संसार का इस प्रकार जलकर भस्मी भूत होना है कबीर चाहते हैं कि संसार इस प्रकार न जले बल्कि निम्न प्रकार से जले...

कबीर ऐसा न कोई न जनमिओं अपने घर लावै आग।
पाँचउ लरिका जारि कै रहे राम लौ लागि॥

अर्थात ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ जो अपने घर रूपी शरीर में आग लगा दे अर्थात वासनाओं का विनाश करदें और पांचों लड़को (इन्द्रियों) को जलाकर केवल राम में अपनी लौ लगा कर रहे।

(२) उदासु का अर्थ यदि हम विरक्त लें तो हम कह सकते हैं कि शरीर की नश्वरता को देख कबीर उससे विरक्त हो गये।

(२१) कबीर गरबु .............. जायै घासु।

शब्दार्थ— अवासु=भवन।

अर्थ—कबीर कहते हैं, ऊंचा भवन देख कर गर्व नहीं करना चाहिये क्यों कि आज या कल पृथ्वी में लेटना ही पड़ेगा और ऊपर घास जम जायगी ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(२२) कबीर साधू का......... ...न जाउ ।

शब्दार्थ—जउ=जो; साकत=शाक्त, शक्ति के उपासक ।

अर्थ—कबीर कहते हैं, जौ की भूसी खाते हुए भी तुम साधु की संगति में रहो। जो होन हार है वह तो होगा ही किन्तु कभी किसी शाक्त की संगति में मत जाओ।

(२३) कबीर सोइ कुल.................ढाक पलासु ।

शब्दार्थ—कुला=कुल ।

अर्थ—कबीर कहते हैं वही कुल उत्तम है जिस कुल में हरि का दास उत्पन्न होता है और जिस कुल में भगवान के भक्त अर्थात हरि दास का जन्म नहीं होता वह तो ढाक और पलास की भांति है।

(२४) कबीर देखि ........... गुन गाई ।

शब्दार्थ—किह=क्या । पतिआइ=विश्वास करेगा । हरखि=हर्षित ।

अर्थ—कबीर दास कहते हैं मैं प्रभु को देखकर क्या कहूं? यदि कुछ कहूँ भी तो कौन विश्वास करेगा ? अतः हरि जैसा है, वह वैसा ही रहे और मैं हर्षित होकर उसके गुणों का गान करूं न मेरे कहने की आवश्यकता है न किसी के सुनने की।

(२५) कबीर चकई.......................न राति।

शब्दार्थ—जउ—जो। परभाति=प्रातः काल ।

अर्थ—कबीर कहते हैं, यदि चकवी रात्रि के समय चकवा से विछुड़ जाती है तो प्रातः काल आकर मिल जाती है परन्तु जो मनुष्य राम से बिछुड़ जाते हैं वे न प्रातः काल में और रात्रि काल में राम से मिल सकते हैं अर्थात राम से एक बार बिछुड़ने से वे सदैव के लिये राम से दूर हो जाते हैं।

## आलोचनात्मक प्रश्न

प्रश्न १ धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से कबीर के समय की आलोचना कीजिये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## उत्तर

श्री श्याम सुन्दर दास जी का कथन है–"कि काल की कठोर आवश्यकतायें महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुआ था।"

कबीर के समय की धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से नीचे अलोचना की जाती है:—

१ धार्मिक दृष्टि से—जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे उस समय भक्ति की लहर तरंगित हो चुकी थी। मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत अतर आ गया था। हिन्दू जनता का नैराश्य दूर करने के लिये भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। धार्मिक दृष्टि से इस समय वैदिक धर्म का अत्यन्त क्षीण रूप मिलता है सर्व साधारण में भक्ति या वैष्णव धर्म के विभिन्न रूपों का प्रचार चालू हो गया था। अपने मूल या शुद्ध रूप में भक्ति आन्दोलन मुसलमानों के आने से पूर्व हो चुका था। उस समय उत्तर भारत में बज्रयानी और नाथ पंथियों की विचार धारा का प्रचार था। दक्षिण भारत का आन्दोलन भगवान का लीला रूप लेकर आया जिसमें भक्त और प्रेम प्रधान थे। उत्तर भारत में रामानन्द, चैतन्य और वल्लभाचार्य ने वैष्णव मत का प्रचार कर भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। वैष्णव धार्मिक आन्दोलन के साथ संत सम्प्रदाय का अति घनिष्ट सम्बन्ध है। कबीर इसके प्रधान प्रवर्तक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। कबीर ने स्वयं रामानन्द से दीक्षा ग्रहण की थी।

इस समय हिन्दू मुसलमान के जातीय और धार्मिक झगड़े तो थे ही, जैन वैष्ण एवं शैव सम्प्रदाओं के भीतर भी भिन्न भिन्न संगठन हो रहे थे। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत उलमाओं और काजिओं की धार्मिक असहिष्णुता के साथ साथ सूफी सम्प्रदाय का प्रचार भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बढ़ रहा था । ऐसे समय में कबीर ने जन्म लेकर जनता की धार्मिक भावना का नेतृत्व किया ।

राजनीतिक दृष्टि से—कबीर के अविर्भाव के समय देश की राजनितिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी । महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी के आक्रमणों से देश पहले ही जर्जर हो गया था । कबीर का समय फिरोज तुग़लक का शासन काल (सं० १४०८-१४४५) है, ऐतिहासिक दृष्टि से यह समय अत्यन्त अराजकता पूर्ण है । शासकों के अत्याचारों से हिन्दू जनता अति पीड़ित थी। उसे मृत्यु या धर्म परिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था । मुसल्मान भी निर्गुणोपासक थे अतः कबीर ने उनसे मिलते जुलते पथ पर लगा कर हिन्दू जनता को शान्ति और संतोष प्रदान करने का प्रयत्न किया ।

सामाजिक दृष्टि से—सामाजिक दृष्टि से भी कबीर का समय अति भयंकर परिस्थितियों से युक्त था । हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से खिचे हुए रहते थे अतः सामाजिक जीवन में सम रसता के स्थान पर कटुता अधिक व्याप्त थी । ऐसे समय में कबीर ने एक समन्वयात्मक मार्ग का सृजन किया । इस समय में विवाह और खानपान सम्बन्धी प्रतिबन्धों को समाज में अधिक कट्टरता का पालन होने लगा था । इसका प्रधान कारण विदेशियों का संसर्ग था । विदेशियों ने जब सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करना शुरु किया उस समय समाज ने सुरक्षा की भावना अपने नियमों को अधिक कठोर बना दिया । और साथ में विवाह, सती प्रथा, अन्ध विश्वास आदि कुरीतियाँ प्रचलित हो कर सामाजिक जीवन पर कुठाराघात कर रही थीं । वास्तव में सामाजिक दुर्व्यवस्था पहले से चली आ रही थी परन्तु राजनीतिक परिवर्तनों के कारण था और भी शोचनीय हो गई थी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



२. कबीर के आध्यात्मिक विचार संक्षेप में लिखिये ।

## उत्तर

कबीर ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्त्तक थे । ज्ञान तत्व के विचार से कबीर को हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में माना जा सकता है। उन्होंने आध्यात्मिक तत्वों का इतनी सरलता से विवेचन किया है कि जिसकी समानता में कोई दूसरा कवि नहीं ठहरता । ब्रह्म, जीव प्रकृति और माया को लेकर कबीर ने अपने काव्य में बुद्धि तत्व को प्रधानता दी है । उनकी ज्ञान सम्बन्धी रचना अनुपम है । यदि हम कबीर के आध्यात्मिक विचारों पर दृष्टिपात करें तो हमें उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करना आवश्यक है कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों में ३ तत्वों की प्रधानता है—(१) परम तत्व (२) जीवतत्व (३) माया तत्व ।

इन तीनों तत्वों के बारे में विवेचन करने से हम कबीर के आध्यात्मिक विचारों से पूर्ण परिचित हो सकते हैं ।

(१) परम तत्व—कबीर के परम तत्व पर ब्रह्मवाद का प्रभाव है परन्तु उसकी व्याख्या उन्होंने अपनी अनुभूति के आधार पर की है और उसके निर्गुण रूप को अपना उपास्य माना है कबीर के 'राम' दशरथ पुत्र राम नहीं हैं परन्तु 'निर्गुण ब्रह्म' हैं यह बात उनके अनेक पदों से स्पष्ट होती है—'निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई' अथवा 'हृदय बसे तेहि राम न जाना' आदि आदि ।

कबीर मुसलमानी एकेश्वर वाद से प्रभावित थे परन्तु उन्होंने जीवात्मा परमात्मा और जड़ जगत को एक ही माना है जब कि एकेश्वरवाद में इन तीनों की सत्ता अलग अलग मानी जाती है । कबीर तो कहते हैं कि ब्रह्म ही जगत में एकमात्र सत्ता है इसके अतिरिक्त संसार में कुछ नहीं—

खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कबीर कहते हैं कि ब्रह्म से ही सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं—

(१) पानी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय ॥
(२) जल में कुँभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथौ गियानी ॥

(२) जीव तत्व—जीव के सम्बन्ध में कबीर अद्वैत स्थिति स्वीकार करते हैं जीव तत्व को वे परम तत्व का अंश ही मानते हैं । इन्होंने जीव और ब्रह्म की एकता को स्वयं सिद्ध माना हैं परन्तु भेद का कारण है अज्ञान । कबीर कहते हैं—

'कह कबीर यह राम की अंसू जस कायद पर मिटे न अंसू' । इसमें आत्मा अर्थात् जीव तत्व की अमरता का बोध होता है वह तो स्पष्ट कहते हैं कि ब्रह्म अनश्वर है अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नहीं हो सकता, यही कबीर के अमरत्व का रहस्य है—

हरि मरि है तो हम हू मरि हैं, हरि न मरै हम काहे कूँ मरि हैं ।

२ माया तत्व—तुलसी की तरह कबीर भी माया को ब्रह्म से अभिन्न और उसकी दासी मानते हैं—'माया मेरी अर्धंसरीरी औ' भक्तन की दासी । कबीर ने माया को ही मनुष्य के अधःपतन का कारण बताया है । संसार का समस्त दुख माया कृत हैं अतः कबीर ने माया को महा ठगिनी बताया है, इसे त्यागना अति कठिन है क्योंकि बाहर से यह अति मधुर जान पड़ती है—

मीठी मीठी माया तजी न जाई ।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई ।।

इस माया से बचने के लिये और इसे अपनी दासी बनाने के लिये कबीर ने सहज समाधि की प्रतिष्ठा की है । मन को स्थायी रूप से एकाग्र करने तथा उसे पूर्णतः निर्विषय बनाने के लिये कबीर ने इसका आदर्श प्रस्तुत किया है —'साधो सहज समाधि भली'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कबीर ने माया को बारहबाट करने का स्पष्ट आदेश दिया है

कबीर माया चोरटी, मुसि मुसि लावे हाट।
एकु कबीरा ना मुसै, जिनि कीनी बारह बाट ।।

संक्षेप में हम कबीर के अध्यात्मिक विचार इस प्रकार र सकते हैं—कि जीव और ब्रह्म एक हैं परन्तु इस अद्वैतावस्था की प्राप्ति में माया या अविद्या बाधा रूप में आती है। ज्ञान, भक्ति और सहज योग से इस माया का नाश हो सकता है।

प्रश्न—३ रहस्यवाद से क्या तात्पर्य है? कबीर की रचनाओं से उदाहरण देकर अपना उत्तर स्पष्ट कीजिये।

## उत्तर

रहस्यवाद क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भी कुछ रहस्यमय है जो विशेष रूप से हृदय से सम्बन्ध रखता है क्योंकि रहस्यवाद का विषय आत्मा और परमात्मा हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद का सुन्दर विश्लेषण किया है उनके विचार निम्न पक्तियों में उद्धृत किये जाते हैं—

'रहस्यवाद जीवात्मा की अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इस शक्ति के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत प्रोत हो जाती है।'

वास्तव में रहस्यवाद के अन्तर्गत प्रधान रूप से अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा होती है। संसार का चक्र किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा चालित होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी। आदि काल से 'रूप रेख गुन जाति जुगति बिन, वाले रूप को मानव सदैव से 'रूप रेख गुन जाति जुगति सह' बनाकर उसे समझने और प्राप्त करने का प्रयत्न करता आया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



है। सिद्ध पुरुषों ने अपनी अनुभूति के द्वारा उस महान शक्ति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है परन्तु उक्तिओं द्वारा उसका स्वरूप स्पष्ट करने में अपने को असमर्थ ही पाया है। कबीर ने स्पष्ट कह दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूंगे का सा गुड़ है अर्थात अवर्णनीय है—

अकथ कहानी प्रेम की कछू कही न जाइ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाइ।

यही रहस्यवाद का मूल है। परमात्मा का स्वरूप न समझकर उसे पिता माता प्रिया प्रियतम पुत्र अथवा सखा के रूप में समझना रहस्यवाद ही है क्यों कि सांसारिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। कबीर में यह भावना पूर्णतः मिलती है—

(१) बाप राम राया अब हूँ सरन तिहारी।
(२) हरि जननी मैं बालक तेरा।
(३) हरि मोर पिय राम की बहुँरियाँ।
(४) कहै कबीर मोहि व्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत का मत है कि जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्य की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी द्वारा शब्दमय चित्रों में सजाकर रखने लगता है तब साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है। रहस्यवादी कवि अद्वैतवादी होता है।

उपर्युक्त दृष्टि से यदि हम कबीर की आलोचना करें तो हम कह सकते हैं कि कबीर महान साधक थे और उनकी रहस्यमयी अनुभूतियां रहस्यवाद की सुन्दर उदाहरण हैं—

जैसे -

१—काहे री नलिनी तू कुमिलानी, तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उत्पति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास॥

२— माली आवत देखकर कलियां करी पुकार।
फूले फूले चुणि लिये काल्हि हमारी बार॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कितनी सुन्दर अनुभूति जन्य कबीर की रहस्य मयी अन्योक्तियां हैं। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी हैं और जल ब्रह्म तत्व हैं, इसी में प्रकृति के अनेक रूपों की उत्पत्ति होती है यही पोषक तत्व हैं जो मनुष्य और नाना रूपों में विद्यमान हैं।

वास्तव में कबीर का रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवाद और सूफियों के प्रेम से मिलकर बना है। कबीर ने कहीं कहीं विरहिणी आत्मा की पीर ऐसी कातर-वाणी में प्रगट की है कि वहां पर कबीर की सारी शुष्कता गायब हो गई हैं। कबीर की अनुभूति अलौकिक थी। कबीर ने अपनी अनुभूतियों को प्रतीकों, रूपकों और उलटवांसियों के द्वारा प्रगट किया है। कबीर की इस प्रकार की प्रवृत्ति रहस्य वाद की परिचायक है।

प्रश्न—४ कबीर निर्गुण वादी संत क्यों कहे जाते हैं? उन की रचनाओं के आधार पर उत्तर दीजिये।

## उत्तर

कबीर ने ऐसे समय में जन्म लेकर जनता की धार्मिक भावना का नेतृत्व किया जब कि देश में हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा था और दोनों ने बाह्याडम्बरों को ही धर्म का प्रधान अंग मान रखा था। इस समय में हिन्दुओं और मुसलमानों की संस्कृतियों के मेल से एक सामान्य भक्ति मार्ग का भी विकास हो रहा था। यह भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक ऐसा अनिश्चित रूप लेकर सामने आया जो कभी ब्रह्मवाद की ओर मुड़ता था तो कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर। यही निर्गुण पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ कबीर इसी निर्गुण पंथ के प्रवर्त्तक थे। कबीर ने इस निर्गुण भक्ति को एक निशिचत स्वरूप दिया।

कबीर स्वभाव से संत, परिस्थिति से समाज सुधारक और विवशता से कवि थे। कबीर ने अपने मतवाद में निर्गुण ब्रह्म की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उपासना पर ज़ोर दिया। उन्होंने वैष्णवों के राम और कृष्ण को निर्गुण अर्थों में ही प्रयुक्त किया—

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगति की गति लखी न जाई॥

कबीर का लक्ष्य निरगुण था। अनेक स्थान पर उन्होंने आत्मतत्व और निरगुण ब्रह्म तत्त्व की व्याख्या की है और उनका पारस्परिक सम्बन्ध समझाया है। कबीर का निर्गुण ब्रह्म घट घट व्यापी है जो प्रेम से प्रकट होता है। वह गुणों से परे है—

भारी कहौं तो वहु डरौं हल्का कहूँ तो झूठ।
मैं का जानतें राम कूँ; नैनन कबहूं न दीठ॥

कबीर का कहना है कि जीव और ब्रह्म एक हैं परन्तु जब तक जीव विरह की साधना द्वारा इस अद्वैतावस्था तक नहीं पहुंच जाता तब तक भेद है ही। साधन मार्ग से हीं एकता प्राप्त होती है।—

एक मेंय ह्वै मिलि रहना दास कबीरा राम।

कबीर ने निर्गुण उपासना का मार्ग प्रशस्त करते हुये अवतार वाद और मूर्ति पूजा का विशेष रूप से खंडन किया—

१. दशरथ कुल अवतरि नहीं आया; नहीं लंक के राय सताया।
२. पाहन पूजे हरि मिलै तौ मैं पूजू पहार!

अतः स्पष्ट है कि कबीर निर्गुण वादी संत थे। उन्होने निर्गुणोपासक द्वारा जिस संत मत का प्रवर्तन किया उस में समन्वय की चेष्टा स्पष्ट झलकती है।

प्रश्न—५. कबीर की भक्ति का स्वरूप निश्चित कीजिये।

## उत्तर

कबीर जिस काल में उदय हुये उस में हिन्दुओं और मुसलमानों की संस्कृतियों के मेल से एक सामान्य भक्ति मार्ग का भी विकास हुआ। यह भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक ऐसा अनिश्चित रूप लेकर सामने आया जो कभी ब्रह्म वाद की ओर मुड़ता था तो कभी पैग़म्बरी खुदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की ओर। यही निरगुण पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कबीर इसी निर्गुण पंथ के प्रवर्त्तक थे। कबीर यद्यपि ज्ञान मार्गी थे परन्तु उन्हो ने भक्ति का निरादर नहीं किया। श्री गुलाब राय लिखते हैं कि उन्हो ने निष्काम भक्ति को ही मुख्यता दी है—

और कर्म सब कर्म हैं भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहै कबीर पुकार कै भक्ति करो तजि धर्म॥
मुक्ति मुक्ति माँगौ नहीं, भक्ति दान दे मोहि।
और कोई याचौं नहीं, निस दिन याचौं तोहि॥
कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय॥

इससे यह तो स्पष्ट है कि कबीर ने भक्ति की महिमा को स्वीकार किया है परन्तु उन्होंने अवतारवाद को नहीं माना है और रामावतार का भी खडन किया है—दशरथ कुल अवतर नहीं आया; नहि लका में राय सताया। परन्तु उन्होंने राम नाम की महिमा दिल खोल कर गाई है। उनका राम नाम भगवान का पर्यायवाची है। कबीर इस विषय में निश्चित हैं कि सत्तनाम सुमरिन से ही भक्ति की उत्पत्ति होती है। कबीर ने भक्ति के बारे में बताया है कि यह खांडे की धार है यह भीतर की वस्तु है बाहर से नहीं आती। इसके लिये पहले विनम्रता का पाठ पढ़ना होगा•••

भक्ति दुवारा सांकरा राई दसवें याव।
मन ऐरावत ह्वै रहा, कैसे होइ समाव॥

कबीर की भक्ति में अर्थात नाम स्मरण और विरह की साधना की ही प्रधानता है। वे स्पष्ट कहते हैं—

भगत बिनु बिरथे जनम गइओ।
साधु संगति, भगवान भजन बिनु कहीं न सचु रहिओ॥

विरह की साधना कबीर की भक्ति का मुख्य अंग है। ब्रह्म में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



लीन होने के लिये विरह काल की साधना पर प्रकाश डालते हुए कबीर कहते हैं।

माटि तन का दिवला, करौं बाती मेलौं जीव।
लोहू सीची तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव ॥

अर्थात उस प्रीतम से मिलने के लिए शरीर रूपी दीपक में जीव रूपी वत्ती को सतत रूप से रक्त रूपी तेल के सहारे जलाने की आवश्यकता है। अत: इस विरह की अग्नि में तप कर ही भक्ति का सोना निखरता है।

कबीर की भक्ति का स्वरूप निम्न पद से पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। इस पद को उद्धृत कर हम यहीं इस प्रसंग को समाप्त करते हैं—

भक्ति का मारग झीना रे।
नहि अचाह नहीं चाहना, चरनन लौ लीना रे॥
साधन के रस धार में; रहै निस दिन भीना रे॥
राग में स्रुत ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे॥
साईं सेवन में हेत सिर, कुछ विलम न कीना रे॥
कहैं कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे॥

प्रश्न—६ कबीर की भाषा और शैली के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिये।

## उत्तर

कबीर की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों का बड़ा मतभेद है। वास्तव में कबीर की भाषा के सम्बन्ध में निर्णय करना अति कठिन है क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। कबीर ने यद्यपि अपनी बोली को पूरबी कहा है—

'मेरी बोली पूरबी',

परन्तु उनकी भाषा में पंजाबी गुजराती राजस्थानी के भी प्रयोग हैं। कारक चिन्हों में 'कर, केरा. का' प्रयोग पूर्वी हैं, 'कै सन सा'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आदि अवधि के हैं, 'कों' व्रज का है और 'थे' राजस्थानी के । 'चन्दन होसी बावना नीम न कहसी कोय' यह राजस्थानी का ही प्रभाव है । कुछ पद तो शुद्ध व्रज भाषा के हैं जैसे 'करम गति टारे नाहिं टरी' । कबीर में खड़ी बोली के प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं जैसे—

(१) अऊँगा न जाऊँगा, मँरुगा न जीऊँगा ।
गुरु के सबद रमि रमि रहूँगा ॥

(२) अजब जमाना आया रे ।

(३) इक प्रेम रस चाखा नहीं । आदि खड़ी बोली के अच्छे उदाहरण हैं । कबीर में कही कहीं अरबी फारसी के शब्द जैसे—'अजब', फहम (समझ), वाकिफ गुल, चमन, दीदार आदि अधिकतर मिलते हैं ।

अतः कबीर ने जो अपनी भाषा को पूरबी बताया है, उससे उनका क्या तात्पर्य था कुछ कहा नहीं जा सकता । उनका बनारस निवास पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है परन्तु उनकी रचना में बिहारी का भी पर्याप्त मेल है । अन्त में हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है । कबीर पढ़े लिखे नहीं थे अतः वे बाहरी प्रभावों के अधिक शिकार हुए । भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमें नहीं मिलती उनकी भाषा के पंचमेल खिचड़ी होने का एक कारण यह भी है कि उन्होंने दूर दूर के साधु संतों का सत्संग किया था जिससे स्वाभावतः ही उन पर भिन्न भिन्न प्रान्त की बोलियों का प्रभाव पड़ा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर कीं भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा बताया है ।

कबीर ने शब्दों की तोड़ मरोड़ भी खूब की है. 'सुन' को सनि, सना, सूं चाहे जिस रूप में तोड़ मरोड़ कर उन्होंने आवश्यकता के अनुसार अपनी उक्तियों में बिठा लिया है । श्याम सुन्दर दास जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कहते हैं—'कबीर की भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता या प्रसाद का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं उनकी भाषा बिल्कुल गंवारू लगती है पर उनकी बातों में खरेपन का मिठास है जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गंवारपन डूब जाता है।'

शैली—कबीर कवि नहीं थे। उनकी कविता कविता के लिये नहीं थी परन्तु वह तो उनके विचारों को जनता तक पहुँचाने का माध्यम थी। अतः कबीर की कोई शैली विशेष नहीं है। वहाँ तो डफली बजाकर गाने में शब्द जिस रूप में निकल गया वही ठीक था। मात्राओं में घट बढ़ जाने की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी; परन्तु कबीर की प्रतिभा थी, उन्हें तो संदेशा देना था अतः उन्हें शब्द और मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी कि सुनने वालों के हृदय में बैठ जायें। वास्तव में कबीर की शैली ऐसी थी कि भाषा सदैव उनके भावों की अनुगामिनी बन कर रही इसी लिये डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर कहा है। व्यंग्य करने और चुटकी लेने में कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। उनकी शैली कुछ ऐसी है कि सीधी सरल भाषा में वे गहरी चोट करते हैं।

प्रश्न ७—कबीर कवि नहीं, उच्चकोटि के सन्त थे।

## उत्तर

डा० श्याम सुन्दर दास जी ने कबीर के काव्य में ५ खटकने वाली बातों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित हैं—

(१) एक ही बात को उन्होंने कई बार दोहराया है जिससे कहीं कहीं रोचकता जाती रही है।

(२) उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिबिम्ब उनकी भाषा पर अक्खड़पन होकर पड़ा है

(३) उनकी आधी से अधिक रचना दार्शनिक पद्य मात्र है जिसको कविता नहीं कहना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(४) उनकी कविता में साहित्य का सर्वथा अभाव है। थोड़ी सी साहित्यिकता आ जाने से परम्परानुबद्ध रसिकों के लिए उपालंभ (शिकायत) का स्थान न रह जाता।

(५) न उनकी भाषा परिमार्जित है और न उनके पद्य पिंगल शास्त्र के नियम के अनुकूल हैं।

वास्तव में कविता करना कबीर का ध्येय न था अतः उनकी कविता में काव्य गुणों को ढूड़ना उपहासास्पद ही होगा। अतः यदि उनकी कविता में कुछ खटकने वाली बातें मिलती हैं तो इसके उत्तर दायी कबीर नहीं। कबीर तो संत थे. उनकी एक कवि की वाणी नहीं एक संत, एक समाज सुधारक की वाणी थी। केवल कवि से तो संत कबीर को घृणा ही है—

कबी कवि ने कविता मुए।

वे कविता के लिये कविता नहीं लिखते हैं उसे भाव प्रकाशन का माध्यम मात्र बनाते हैं। कबीर के पास एक महान संदेश था। जाति एवं सम्प्रदाय भेद से अनेक टुकड़ों में टूटी हुई मानव जाति को कबीर ने एकता का संदेश दिया। कबीर ने जाति गत, कुलगत, संस्कार गत और आचार गत श्रेष्ठता को मानने से इन्कार कर दिया। इन्होंने एक संत की भाँति एक ओर तर्क और बुद्धि द्वारा समाज के अन्ध विश्वासों को निर्मूल किया और दूसरी ओर प्रेम की धारा बहाकर उस अज्ञात और अनन्त से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया।

कबीर एक पहुंचे हुये संत थे। समता का भाव प्रदर्शित करते हुये आप कहते हैं—

एक बिन्दु से सृष्टि रच्यो को ब्राह्मण को शूद्रा

कबीर ने बाह्याडम्बर का घोर विरोध किया और अपनी पवित्र वाणी से हिन्दू और मुसलमान दोनों को फटकारा और सीधे रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

 Jevaclath P. Sidhu P.

हिन्दू वरत एकादसि साधैं, दूध सिंगाड़ा सेती ।
अन को त्यागैं, मन नहिं हटकें पारन करे सगोतो ।।
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, बिसमिल वांग पुकारै ।
उनकी भिस्त कहां ते होई है, साँझे मुरगी मारैं ।।

इस प्रकार के एक नहीं अनेक उदाहरण कबीर साहित्य से लिये जा सकते हैं—

(१) पाहन पूजे हरि मिलै तौ मैं पूंजू पहार ।
ताते यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥

दिन भर रोजा धरत हो, रात हनत हो गाय ।
वह तो खून यह बन्दगी, क्यों कर खुसी खुदाय ॥

कबीर ने ब्रह्म की सर्व व्यापिनी सत्ता का प्रचार किया और कहा कि जीव ब्रह्म का ही अंश है अतः उस परम पिता को ढूंढने के लिये कहीं अन्य जाने की और पाखंड रचने की आवश्यकता नहीं—

मो को कहां ढूंढे बन्दे मै तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल, ना मै मसजिद, ना काबै कैलास में ।।

कबीर की उपदेश सम्बन्धी रचनाओं में गुरु, शुद्ध आचरण प्रेम और सत्संग की महिमा तो है ही साथ ही ब्रह्म के सर्व व्यापी स्वरूप का निरूपण और माया मोह की निंदा भी है ।

अतः हम निर्विवाद कह सकते हैं कि कबीर कवि नही बल्कि एक उच्च कोटि के सन्त थे। सन्त शिरोमणी कबीर का नाम सर्वदा अमर रहेगा !

कुछ परीक्षोपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों की विस्तृत व्याख्या कीजिये—

१. लोगा भरमिन..................निरंजनु डीठा
( देखो पद संख्या १ )

२. माया महा ठगिनि................अकथ कहानी ।
( देखो पद संख्या ४ )

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



३. भगति बिनु............ ओट लइओ।

( देखो पद संख्या ५ )

४. झीनी झीनी..............दीनी चदरिया।

( देखो पद संख्या ७ )

५. सत गुरू साँचा........... .. चकनाचूर।

( देखो साखी संख्या २ )

६. कथनी मीठी......... ....अमृत होय।

( देखो साखी संख्या ८)

७. तन तुँरग................लिये हाथ

( देखो साखी संख्या ६ )

८. सब रग ताँत...... .........कै चित्त।

( देखो साखी संख्या १० )

९. कबीर कसउटी...............मरिजीवा होय।

( देखो साखी संख्या १६ )

१०, कबीर चकई..............न राति।

( देखो साखी संख्या २५ )

# २ मलिक मुहम्मद जायसी

परिचय—जायसी सूफी कवियों के प्रतिनिधि हैं आपने सन ९३६ हिजरी में सन १५२८ के लगभग 'आखिरी कलाम' नामक पुस्तक लिखी थी। इस में इन्होने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है—

भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरिस ऊपरि कवि बदी॥

इस कथन के द्वारा उनकी ठीक ठीक जन्म तिथि का परिचय नहीं मिलता है। पहली पक्ति के अनुसार हम जन्म काल ९०० हिजरी मान सकते है और दूसरी पंक्ति के अनुसार ३० वर्ष की अवस्था में वे कवियों में गिने जाने लगे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



परन्तु जायसी के पद्मावत में निम्नलिखित कथन जायसी की जन्म तिथि ९०० हिजरी मानने में संदेह उत्पन्न कर देता है—

सन् नव सौ सत्ताइस अहा, कथा आरम्भ बैन कवि कहा।

अर्थात् जायसी ने कथा आरम्भ ९२७ हिजरी में किया परन्तु उस में तत्कालीन बादशाह शेरशाह की स्तुति की गई है जिस का शासन काल ९४७ हिजरी में आरम्भ हुआ था। इस से यह ज्ञात होता है कि कवि ने पद्मावत का कुछ भाग ९२७ हिजरी में आरम्भ किया और उसे शेरशाह के समय में पूर्ण किया। इस प्रकार हम उनकी जन्म तिथि ९०० हिजरी अर्थात् सन् १४९४ ई० मान सकते हैं। उन की मृत्यु तिथि ठीक ज्ञात नहीं ऐसा ज्ञात होता है कि वृद्ध होकर मर गये होंगे। जैसा कि उनके कथन से ज्ञात होता है—

मुहमद बिरिध बैंस जो भई।
जोबन हुत, सो अवस्था गई॥

कविवर जायसी जायस के निवासी थे। इनका जन्म स्थान अज्ञात है। ये जायस नगर में कहीं से आकर बस गये थे, जैसा स्वयं कहते हैं—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कबि कीन्ह बखानू॥

जायसी निजामुद्दीन औलिया के शिष्य परम्परा में से थे और उनके ग्रंथों से मालूम पड़ता है कि उन्होंने सैयद अशरफ से गुरु दीक्षा ली थी—

सैयद असरफ पीर पियारा।
जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥

बचपन में चेचक के कारण जायसी की बाँई आंख और बाँया कान जाता रहा—'मुहम्मद बांई दिसि तजा इक सरवन इक आंखि' जायसी अत्यन्त कुरूप थे! इनकी मृत्यु अमेठी से दो मील दूर जंगल में हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**साहित्यिक रचनाएँ**—प्रेम मार्गी शाखा के सर्व श्रेष्ठ कवि जायसी ने तीन ग्रन्थों की रचना की—

१. पदमावत

२. अखरावट

३. आखरी कलाम

'पदमावत' जायसी की अमर कृति है! यह प्रेमाख्यान फारसी की मसनवी पद्धति पर है। इस की कथा खंडों में विभक्त है। इस में प्रसिद्ध चित्तौड़ की रानी पद्मनी की कथा का वर्णन दोहे चौपाई की शैली में किया गया है।

'अखरावट' में कवि ने वर्णमाला के अक्षरों के क्रमानुसार प्रयोग कर अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

'आखिरी कलाम' में मरणोपरान्त जीव कि दशा और कयामत के अंतिम न्याय आदि का वर्णन है

प्रस्तुत 'सिंहल दीप वर्णन' जायसी की अमर कृति पद्मावत से उदवृत है।

**जायसी का साहित्य में स्थान**—प्रवन्ध-क्षेत्र में गोस्वामी के बाद जायसी को द्वितीय स्थान दिया जा सकता हैं और सूफी प्रेम गाथा कारों में तो उनका स्थान निर्विवाद रूप से प्रथय ही हैं। जायसी साहित्य में रहस्यवादी कवि के रूप में गिने जाते हैं। आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्वाद को कवीर की अपेक्षा रमणीय और सुन्दर वताया है। कुछ भी हो जायसी के रहस्यवाद में वह प्रभावोत्पादक गुण है जो हृदय को स्पर्श करने वाला है।

जायसी में प्रेम की भावना वड़ी विशद और व्यापक है। उनके 'प्रेम की पीर' विश्व व्यापिनी है। पद्मावत में छोटे छोटे भावों की ऐसी विशद व्यंजना मिलती है कि जिस से जायसी के कोमल हृदय का परिचय मिलता है। यह सत्य है कि तुलसी ने लोक लोक जीवन का विशद चित्रण किया है परन्तु जायसी ने सीमित क्षेत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



में ही अत्यन्त गूढ प्रेम वेदना का जो प्रकाशन किया है, वह भी अद्वितीय है। यह निर्विाद कहा जा सकता है कि जायसी हिन्दी साहित्य के एक जगमगाते अमर रत्न हैं

जायसी ने सर्व प्रथम दोहा चौपाइयों में एक सफल माहाकाव्य की रचना कर भविष्य के कवियों के लिये मार्ग अशस्त किया और साथ ही साथ हिन्दी साहित्य के भंडार को भी भरा। हिन्दी कवियों मे जायसी अपना एक विशेष स्थान रखते हैं।

## टीका—

### सिहल द्वीप वर्णन—

(१ सिंघलदीप कथा·················समीप।

शब्दार्थ—दीप=द्वीप। औ सो=उस। पदुमिनि=पद्मावती। वरिन=वर्णन। बरन क=वर्णन की। धनि=धन्य। सरि=जोगू=योग्य। सरां=सरन नामक द्वीप, स्वर्ण द्वीप जो सुमात्रा का मध्यकालीन नाम था। दीप कुसस्थल=कुश नामक द्वीप। आरन=अरण्य जंगल उत्तिम=श्रेष्ठ।

अर्थ—जायसी, पद्मावत की कथा प्रारम्भ करने से पूर्व स्तुति करते हैं और इसके पश्चात पद्मावती के निवास सिहल द्वीप का अति सजीव चित्रण करते हैं।

जायसी कहते हैं—अब मैं सिंघल द्वीप की कथा कहता हूँ और उस पदमावती का वर्णन सुनाता हूँ। दर्पण की भाँति वर्णन की की भी विशेषता होती है जिसका जैसा रूप होता है वह वैसा ही उसमें दिखाई पड़ता हैं (अर्थात जायसी यहां यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि वे पदमावती का इतना सजीव शब्दों द्वारा चित्रण करेंगे जैसा कि दर्पण ज्यों का त्यों रूप प्रस्तुत करता है)। वह द्वीप धन्य है जहां स्त्रियां दीपक के समान है और जहां ईश्वर ने उस पदमावती का अवतार कराया। सब मनुष्य सात द्वीपों का वर्णन करते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



परन्तु एक भी द्वीप उसकी तुलना के योग्य नहीं हैं। दीया द्वीप (यह द्वीप काठियावाड़ी समुद्र तट के पास है) में भी वैसा उजाला नहीं है और सरन द्वीप भी उसकी पार नहीं पा सकता। जम्बू द्वीप भी वैसा नहीं है—मैं कहता हूँ। लंका द्वीप उसकी परछाईं के बराबर भी नहीं है। कुशस्थल द्वीप में जंगल भरा पड़ा है और महु स्थल द्वीप मनुष्यों को हरने वाला है।

सब संसार में पहले सात द्वीप उत्पन्न हुये उनमें सिंघल द्वीप के समान उत्तम एक भी द्वीप नहीं है ॥१॥

विशेष—यहां जायसी ने भूगोल की कहानियों में कल्पित सात द्वीपों का वर्णन किया है। जो इस प्रकार हैं—१ सिंघल द्वीप; २ दीउ दीप; ३ सरन द्वीप; ४ जम्बू द्वीप; ५ लंक द्वीप; ६ कुशस्थल द्वीप और ७ महुस्थल द्वीप। इन सात द्वीपों में जायसी ने सिंहल द्वीप की श्रेष्टता स्वीकार की है।

(२) गंध्रपसेन सुगंध.......................करै न कोई।

शब्दार्थ—गंध्रपसेन = राजा गंधर्व सेन। सुगंध = गंध युक्त अथवा यशस्वी। कटक दर—सैनिक दल। ओरगन्ह = अवरंग का अर्थात सिंहासनों का। घोर—घोड़ा। घोरसारा = घुड़साल सांव करन = श्याम कर्ण। बालका—वंशज। तुखारा = तुषार देश। जनु = मानों। कबिलास = स्वर्ग। एरापति = ऐरावत हाथी। असुपति = अश्वपति। आँकुस गज = अंकुश गज, वह हाथी जो मतवाले हाथियों को वश में रखता है। नरिन्दू = नरेन्द्र इंदु = चन्द्रमा। चक्कवै = चक्रवर्ती। भै = भय। सरवरि = बराबरी।

अर्थ—गंधर्व सेन यशस्वी राजा था जिसके यश की सुगन्ध सर्वव्याप्त थी। यह सिंघल ऐसे राजा का देश था। लंका में जो रावण का राज सुना गया उससे भी बढ़कर उसकी साज सज्जा थी उसने छप्पन करोड़ सैनिक दल सजाया था सब छत्रपतियों के सिंहासनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



का वह राजा था सोलह हजार घोड़े उसकी घुड़साल में थे जो श्याम कर्णं घोड़े के वंशज और तुषार देश के थे। उसके यहां सात हजार सिंहली हाथी स्वर्ग के ऐरावत हाथी के समान बली थे। वह राजा अश्वपतियों में सर्व श्रेष्ठ कहा जाता था और गजपतियों को इस तरह झुका देते थे जिस प्रकार अंकुश गज मतवाले हाथी को झुका देता है। नरपतियों में वह नरेन्द्र कहा जाता था और भूपतियों में वह ससार में दूसरे इन्द्र के समान था।

वह ऐसा चक्रवर्ती राजा था कि चारों खंड उससे भय खाते थे। सब आकार उसे मस्तक झुकाते थे कोई बराबरी न करता था ॥२॥

(३) जबहि दीप·····················सदा बसन्त।

शब्दार्थ—निअरावा=समीप। कबिलास=स्वर्ग। अबराउं=अमराइयां, आम के बाग। पासा=पार्श्व ओर। पुहुमि =पृथ्वी। मलै गिरि=मलयागिरी नामक पर्वत। हरिअर=हरा भरा। पंथिक=पथिक। घाम=धूप। बिसराम=विश्राम। सघन घन=अति घना।

अर्थ—जब कोई उस द्वीप के निकट जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्ग के निकट आ गया हो। उसके चारों ओर घनी अमराइयां लगी हैं वह धरती से उठकर आकाश को छूता हुआ प्रतीत होता है। वहां के सब वृक्ष मलय गिरी से लाये गये हैं। जगत में छाया उन्ही के द्वारा होती है और वे ही रात बन कर छा जाते हैं उसकी सुन्दर छाया में मलय समीर प्रवाहित होता है और उसमें ज्येष्ठ मास में भी जाड़ा लगता है। वर्षा ऋतु में जब आकाश में चहुं ओर हरा भरा दिखाई पड़ने लगता है उस समय वही छाया रात्रि जैसा अन्धकार करती हैं। धूप सह कर जब कोइ पथिक वहां पहुँचता है तो दुख भूल कर विश्राम मिलने से सुखी होता है। जिसे वह अनुपम छाया मिल जाती है फिर वह लौटकर धूप नहीं सहता?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ऐसा अति सघन आम्र कुंज वहाँ है कि मैं उसेका वर्णन करके अन्त नहीं पा सकता वह छहों ऋतुओं में फलता फूलता है मानों वहां सदैव वसन्त ऋतु ही रहती है ॥३॥

(४) फरे आंब ........ .. तार खजूरि ।

शब्दार्थ—फरे=फले हुये । कटहर=कटहल ; डार=डाल । पींड=तना,जड़ की मिट्टी(कटहल का फल उसकी जड़ में से भी निकलता है) । खिरनी=एक फल । जांबु=जामुन । भंवर=भौरा । खुरहुरी=एक प्रकार का वृक्ष । फुरी=सुशोभित । महु=महुआ । मधु=शहद । पुहुप=पुष्प खजहजा= खाने योग्य अच्छे फल रावन=राजा का रम्य । अंब्रित=अमृत । गुआ=गुवाक, एक प्रकार की सुपारी । इंविली=इमली । तार=ताड़ वृक्ष ।

अर्थ—अति सघन फले हुये आम सुशोभित हो रहे थे और वे जैसे फलते थे अधिक सिर झुका लेते थे । कटहल के वृक्ष डाल से लेकर पींड (जड़ की मिट्टी) तक फल से लदे थे, उनके बड़हल देखने में अति सुन्दर लगते थे । पकी हुई खिरनियां खांड जैसी मीठी थीं और जामनें जो पकी थीं वे भौरों से काली दिखाई देती थीं नारियल के वृक्ष और छोटे छोटे फलों वाली खुरहरी फली थी जिन्हें देख ऐसा लगता था मानो वहां साक्षात स्वर्ग पुरी सुशोभित हो । और फिर जो महुआ गिर रहा था वह शहद जैसा अधिक मीठा था और उसमें पुष्प जैसी सुगन्ध थी । और सब खाने योग्य उत्तम फल जिनके नाम भी मुझे मालूम नहीं, उन सबसे वह रमणीय अथवा राजा का बाग सुशोभित दिखाई देता था । सब वृक्षों में अमृत जैसी शाखायें लगी थी और जो चखता वही लुभा जाता था ।

गुआ नामक सुपारी, जायफल आदि सब फल वहाँ भरपूर फल रहे थे । आस पास में घने इमली के वृक्ष थे और साथ साथ घने ताड़ और खजूर के वृक्ष भी लगे थे ॥४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(५) वसहि पंख.................. कर नाउं ।

शब्दार्थ—पंखि=पक्षी । हुलास=उल्लास आनन्द । व सहि=सुगन्धि लेना । चुह् चुही+फुलसुंघनी, एक छोटी चिड़ियां प्रात काल होते ही बोलने लगती हैं । पांडुक+फाख्ता या पिड़की । सारी=सारिका मैना । सुवा=तोता । चहचह करहीं=चहचहाना; परेवा=कबूतर । करवही=खर भर की आवाज करना । पपीहा=एक पक्षी । गुडुरू=एक चिड़ियां । खीहा=खीझती है । भिगराज=भुजंगा, भृंगराज । महरि=ग्वालिन छोटी चिड़िया; हारिल=हारियल; हारा=हाल; कोराहर एक कोलाहल । दइअ=दैव, ईश्वर ।

अर्थ—अमराई में जो पक्षी रहते हैं वह अनेक प्रकार की भाषा बोलते हैं और उन शाखाओं को देखकर आनन्द मग्न होते हैं । जैसे ही प्रातः काल होता है, फूल सुंघनी फूलों की सुगन्धि लेने लगती है । पंडुक 'एकै तुही' 'एकै तुही' जैसे शब्द बोलती है । मैंना और तोते चहचहाते हैं, कबूतर ऊपर उड़ कर नीचे गिरते हैं और खरभर की ध्वनि करते हैं । पपीहा पिउ पिउ बोलना शुरू करते हैं और गुडुरु चिड़ियां तुही तुही कहकर खीझती हैं । कोयल ने कुहू कुहू की रट लगा रखी है और भृंगराज तरह तरह की बोली बोलता है । ग्वालिन चिड़ियां दही-दही की पुकार लगाती है । हरियल बोलकर अपना हाल कह रहा है । कुहकते हुए मोर अति सुहावने लगते हैं परन्तु जब कौवे बोलते हैं तो कोलाहल होता है ।

जितने पक्षियों के बारे में कहा है सब अमराई में भरे बैठे हैं । अपनी अपनी बोली में मानो वे दैव अर्थात् ईश्वर का नाम ले रहे हैं ॥५॥

विशेष:—प्रातः काल का समय ईश्वर का नाम लेने का समय होता है । पक्षियों की बोली स्वयं इस बात की द्योतक हैं मानो वे किसी न किसी रूप में ईश्वर का नाम ले रहे हैं जैसे पंडुक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


चिड़िया 'एकै तुही' जैसे शब्दों का उच्चारण करती है जिससे वह 'ईश्वर एक तू ही है' की ओर संकेत करती है। गुडुरी चिड़िया भी इसी प्रकार 'तूही तूही' कहता है।

(६) पैग पैग पर ..............आतमा भूत।

शब्दार्थ:—पैग पैग पर=पग पग पर; बावरी=बावड़ी; बैठक=जगत; कुएँ के ऊपर का स्थान; पाँवरी=सीढ़ियां, मढ़=मठ; जपा तपा=जप तप करने वाले; रिखेस्वर=बड़े ऋषि; मसवासी=मसोपवासी; एक मास तक उपवास करने वाले; ब्रह्मचर्य=ब्रह्मचर्य; आछहिं=रहते हैं; जंगम=शैवों का एक भेद; जती=यति; परखैं देवी सती=देवी की शक्ति परखना; शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार साधना करना; सती=शक्ति; सेवरा=श्वेत पट, एक जैन साधु; खेवरा=क्षपणक, एक जैन साधु; बानपरस्ती=वानप्रस्थी; अवधूत=साधु; भूत=शरीर।

अर्थ—वहाँ पर पद पद पर कुएँ और बावड़ी हैं जिनमें जगत (कुएँ के ऊपर का स्थान) और सीढ़ियां (बावड़ी में नीचे उतरने के लिए) सुन्दर बनी हुई हैं। स्थान स्थान पर अनेक कुंड बने हुए हैं, वे सब तीर्थ हैं और उनके नाम भी तीर्थों पर ही रखे गये हैं। चारों ओर मठ और मंडप सुशोभित हैं और जप तप करने वाले आसन लगाए बैठे है। कोई महाऋषि हैं; तो कोई सन्यासी हैं; कोई राम भक्त हैं, कोई महीना भर उपवास करने वाले मासोपवासी हैं, कोई ब्रह्मचर्य पथ से लगे हुये हैं। अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं, कोई डिगम्बर हैं जो नग्न रहते हैं। किसी को सरस्वती सिद्ध है कोई योगी है कोई निराश, प्रेम मार्ग पर चल कर नियोगी बन बैठे हैं, कोई महेश्वर (एक प्रकार के शैव) हैं, कोई जंगम, कोई यति है और कोई शाक्त देवी की शक्ति साधना द्वारा परखते हैं।

यहां पर श्वेत पट, क्षपणक जैन साधु, वानप्रस्थी, सिद्ध, साधक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अवधूत सब आत्मा और पंच भूतों के शरीर के साधना द्वारा जला कर आसन मारे बैठे हैं ॥६॥

(७) मानसरोदक·······················औ भूख।

शब्दार्थ—काहा=कैसा; अवगाहा=अगाध; तासू=उसका; निरमर=निर्मल; आम्रित=अमृत; आनि=अनाई=लाकर; गरेरी-सीढ़ी=चक्कर दार सीढ़ी; राता=लाल; छात्ता=छत्ता; उलथहि=उलटना; केलि=क्रीड़ा; कनक पंखि=सुनहले पक्षी; लोने=सुन्दर; फर=फल; रूख=वृक्ष

अर्थ—समुन्द्र की तरह अति अगाध भरा हुआ मानसरोवर का जल कैसा सुन्दर दिखाई देता है? उस का जल मोती जैसा निर्मल है, वह अमृत के समान है और उस में कपूर की सुगन्ध है। लंक द्वीप की शिलाएं लाकर मान सरोवर के चार घाट निर्मित किये गये हैं। खंड खंड में चक्कर दार सीढ़ी बनी हुई है जिन पर लोग चारों ओर उतरते चढ़ते हैं। सरोवर में विकसित कमल अरुण वर्ण का हो रहा था और उस में सहस्त्र सहस्त्र पंखुड़ियों का छत्ता था। सीप जल में उलटे होजाते हैं तो उन में भरे मोती बाहर निकल कर जल पर उतराने लगते हैं। हंस उन्हें चुगते हैं और क्रीड़ा करते हैं। सुनहले पंक्षी जल में तैरते हुये अति सुन्दर लगते हैं मानों सोने के संवारे हुए चित्र हैं।

चारों दिशाओं में ऊपर पाल लगे हुये हैं और सब वृक्षों में अमृत मय फल लगे हुए थे। सरोवर की शोभा देख कर भूख और प्यास मिट जाती थी ॥७॥

(८) पानि भरइ·····················केहि रूप।

शब्दार्थ—पनिहारी=पानी भरने वाली; पदुमिनी नारी=पद्मिनी जाति की स्त्रियाँ; पदुम=कमल; सिंघिनी=शेरनी; लंक=कमर; सारंग=मृग; गवन=जाना; मेघावर=बादल की घटा के समान काले; सिरतापाई=सिर से लेकर पैर तक; बीजु=बिजली;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दिपाहीं=दीप्त होना; रहस=हर्ष; कोउ=कौतुक; जासौं=जिस के सम्मुख; मैन=कामदेव; अछरीं=उपसरायें; जेन्हिकी=जिनकी।

अर्थ—मान सरोवर पर पनिहारिनें पानी भरने आती हैं जो रूप की सुन्दरी और पद्मिनी जाति की स्त्रियां हैं। उनके अंग कमल की सुवास से सुवासित हैं भौरें उनके साथ लगे फ़िरते हैं। कमल पर जिस प्रकार भौरें मडराते हैं। उसी प्रकार कमल गध से सुवासित पनिहारनों के अंग पर भौंरे भडराते है उनकी कमर सिंहिनी की भाँति, नयन मृग की भाँति' चाल हंस की भांति और वाणी कोयल जैसी है। वे झुन्ड में पंक्ति पर पंक्ति बनाकर आती हैं और चलती हुई भांति भाँति से सुहावनी लगती हैं। उनकी बादल की घटनाओं जैसे काले केश सिरे से पैर तक लहराते हैं और उनके दाँत बिजली की तरह चमकते है। उनके सोने के कलसे और चन्द्र वदन दीप्त हो रहे हैं, वे हर्ष और कौतुक से आती जाती हैं। वे नारियाँ जिसकी ओर नेत्र उठा कर देखती हैं मानों अपने बाके कटाक्षों से उसे कटारी मारती हैं।

वे सब काम की मूर्तियां जैसे अप्सराओं के समान सुन्दर हैं। जिनकी ये पनिहारिनें हैं, वे रानियां कैसे रूप की होंगी ?८॥

(९) सिंघल नगर················दरसन रूप।

शब्दार्थ—दसा=स्थिति। पंवरी=द्वार। अवासा=आवास, भवन। कबिलास=स्वर्ग। बासा=निवास स्थान। राऊ=राजा। रंक=निर्धन। चोरा=चबूतरे। मेद=एक प्रकार की विशेष सुगन्धि। ओठंधि=सहारा लगाकर, इन्द्रासन पुरी=अमरावती। ऐहिक=इस प्रकार।

अर्थ—पुनः सिंहल नगर बसा हुआ देखो। वह राजा धन्य है जिसकी ऐसी स्थिति है। वहां ऊंचे द्वार और ऊंचे २ महल हैं जिन्हें देख ऐसा ज्ञात होता है मानों इन्द्र के भवन हों। राजा और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रंक सब अपने अपने घर सुखी है जिसे देखो वही हंसता हुआ दृष्टि गोचर होता है। चबूतरे चन्दन के बनाए गए हैं तथा अगर मेद और केवड़े से पोते गये हैं। सब चौपालों पर चन्दन के खम्बे लगे हैं। सभापति जिनका सहारा टेक कर सभाओं में बैठे हैं जिनसे ऐसा ज्ञात होता है मानों अमरावती में देवताओं की जुड़ी हुई दिखाई दे रही हो। सब ही गुणी पडित और ज्ञानी हैं बात चीत में जिनके मुख से संस्कृत वाणी निकलती है।

वहां मार्ग इस प्रकार संवारे गये हैं जैसे शिव लोक में अनुपम होते हैं। सिंहल नगर में घर घर में पद्मिनी स्त्रियां अपने रूप के दर्शन से मोहित करती हैं॥६॥

(१०) पुनि देखिअ......................मूर गवाँइ ।

शब्दार्थ—हाटा=बाजार। बाटा=मार्ग। कनक हाट=सराफा। कुंह कुंह=कुंकुम। हंथोड़ा =हाथ के कड़े। रूपइ=चांदी। अनेग=अनेक। अनबन=भांति भांति। जोती=ज्योति। रूप=चांदी। पसारा=फैलाव। धवल सिरी=श्वेत खड़ियां मिट्टी से। बेना=खस। बेसाहा=मोल लेना। लाहा-लाभ। मूर=मूल।

अर्थ=फिर सिंघल का बाजार (हाट) देखने योग्य है जिसके सब मार्गों में नवों निधियों की सम्पत्ति है। कनक हाट या सराफा सब कुंकुम से लिया हुआ है जिस में सिहंल द्वीप के महाजन विराजमान हैं। वे चांदी को ढाल कर हाथ के कड़े बनाते हैं जिन में भांति २ के विचित्र कटाव (फूल पत्तियों के) अलंकृत किये गये हैं। उत्तम रत्न माणिक, मोती और हीरों के ढेर लगे हैं उनसे भांति भांति की ज्योति छिटक रही है। सोने और चांदी का सर्वत्र फैलाव फैला है। महाजन अपने घर वारों को सफेद खड़िया से पोतते हैं। कपूर, खस, कस्तूरी चन्दन, अगर आदि सब वहां भरपूर मात्रा में भरे पड़े हैं। जिसने इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हाट से कुछ मोल नहीं लिया उसे दूसरे हाट से लाभ कहां हो सकता है अर्थात लाभ तो इसी अनुपम हाट से खरीदने पर हो सकता है।

कोई मोल ले रहा था किसी की बिक्री हो रही थी कोई लाभ प्राप्त कर रहा था और कोई मूल भी गवां चला था ॥१०॥

(११) पुनि आइअ.................. बरनौं फेरू ।

शब्दार्थ:—पासा=समीप; तरहिं=नीचे, तल में; कुरुम=कर्म; कछुआ; बासुकि=सर्पराज वासुकि; डीठी=दृष्टि; खोह=खाई; काँपै जाँघि=जंघाये काँपने लगती हैं अर्थात् पैर कँपकँपाते हैं; सप्त पतारन्ह=सप्त पाताल में; पँवरी=द्वार; खंडा=मंजिल; ब्रह्मंडा=ब्रह्मांड, आकाश; कंचनकोट=सोने का परकोटा=सोने का परकोटा; कौसीसा=कँगूरे; नखतन्ह=नक्षत्रों से; दिस्टि=दृष्टि; हिय=हृदय; सुमेरु=एक पर्वत; फेरु=घेरा।

अर्थ:—फिर सिंहल गढ़ के समीप आते हैं, उसका क्या वर्णन करूं, वह तो जैसे आकाश को छू रहा हो; नीचे पाताल में वह कुर्म और वासुकि की पीठ पर स्थित है और उसने इन्द्र लोक भी दृष्टि गोचर होता है। उसके चारों ओर ऐसी बाँकी खाई खुदी है कि उसमें झाँका नहीं जाता और पैर काँपने लगते हैं। उसे अगम और असूझ देख कोई डर खा कर उसमें गिर पड़े तो सप्त पाताल में पहुंच जायेगा। उस दुर्ग में नौ बाँके द्वार हैं और नौ ही खंड या मंजिलें हैं—जो उन नवों पर चढ़ जाता है वह आकाश (ब्रह्मांड) में पहुँच जाता है। कनक के परकोटे पर कँगूरे जड़े हुये हैं, वह ऐसा प्रतीत होता है जैसे नक्षत्रों से भरे आकाश में बिजली चमकती हो। उस का गढ़ देखने में लंका से भी ऊँचा है, उसकी ओर देखा नहीं जाता, देखने पर दृष्टि और मन दोनों शिथिल पड़ जाते हैं।

दुर्ग की शोभा हृदय में नहीं समाती और न उस पर दृष्टि ही पहुँचती है। वह ऐसा लगता है जैसे सुमेरु पर्वत खड़ा हो। उसकी ऊँचाई और घेरे का कहाँ तक वर्णन करूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विशेष 'नव पँवरी बाँकी नव खंडा। नवहुँ जो चढ़ै जाइ ब्रह्मडा—का अध्यातम पूरक अर्थ भी बड़ी कुशलता से जायसी ने सिंहल द्वीप के वर्णन में समन्वित कर दिया है। जायसी के अनुसार सिंहल गढ़ और यह शरीर एक दूसरे के प्रति रूप हैं। नौ पौरी शरीर के नौ द्वार हैं। जायसी ने नौ द्वारों की कल्पना को शरीर के नौ चक्रों के साथ मिला दिया है (इन चक्रों का वर्णन हम 'कबीर' ' वें पद में कर चुके हैं) इन नौ के ऊपर दसवाँ द्वार है कहा जाता है कि सहस्रार का अमृत इसी दशम् द्वार से नीचे झरता है। अर्थात् जो साधक नव द्वारों को पार कर लेता है वह ब्रह्मांड तक पहुँच कर परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

(१२) निति गढ़.........................चढ़ै जो पार।

शब्दार्थ:—निति=नित्य; सूरू=सूर्य; बाजि=टकरा कर; वज्र=हीरा; पाजी=पैदल सैनिक; कोटवार=कोट्टपाल; भंवरी=चक्कर; चँपत=रखना; पँवरिहि पँवरि=द्वार द्वार; बनान=भाँति; जीहा=जिह्वा; कुंजर=हाथी; गुंजरि=गरज कर; बसेरे=पड़ाव; सत=सत्य।

अर्थ—सूर्य और चन्द्र भी नित्य उस ऊँचे गढ़ को बचा कर चलते हैं नहीं तो टकरा कर उनका रथ चूर चूर हो जाय। दुर्ग के नवों द्वार हीरे के बने हुए हैं और प्रत्येक के रक्षार्थ एक एक सहस्त्र पैदल सैनिक बैठे हुये हैं। पाँच कोट्टपाल उसका चक्कर लगाते हैं अर्थात् निरीक्षण के लिये घूमते हैं। उस द्वार पर पैर रखते ही काँपने लगता है। द्वार द्वार पर पाषाण के गढ़े हुए शेर प्रतिष्ठित है जिन्हें खड़ा हुआ देखकर बड़े बड़े राजा भी डर जाते हैं। वे नाहर (शेर) अनेक भाँति से गढ़े हुये हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानों वे गरज कर सिर पर चढ़ जाना चाहते हैं। वे पूंछ घुमाते और जीभ निकालते हैं, उनसे हाथी भी डरते हैं कि कहीं गरजकर पकड़ न लें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सोने की शिलायें लगाकर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गई। जो दुर्ग के ऊपर तक जगमगा रही हैं।

नवों खँडों पर नौ द्वार हैं उनमें वज्र के किवाड़ लगे हे । दु पर ऊपर तक चड़ने के लिये चार बसेरे (पड़ाव) देने चाहिये और इस तरह जो सत्य से चढ़ेगा वह पार पहूँच जायगा अर्थात ऊपर त चढ़ने में सफल होगा ॥.२॥

विशेष—जैसा कि पिछले पद में बताया गया है जायसी ने सिंहल गढ़ का ऐसा वर्णन किया है कि कहीं कहीं अध्यात्म पर अर्थ वड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त होता है। नव द्वार शरीर स्थि नौ चक्रों की ओर संकेत करते हैं। पाँच कोट्टपाल से जायसी का संके काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह पांच विकारों से है जो इन द्वारों के पार करने से रोकते हैं और दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने में बाधा डालते हैं। अन्तिम भाग में जायसी सूफी मत की साधना के चा पड़ावों का भी उल्लेख कर देते हैं। ये चार पड़ाव हैं—१ शरीअत धर्म ग्रन्थो के विधिनिषेधो का सम्यक पालन। २ तरीकत-बाह्याडम्बर का त्याग कर शुद्ध हृदय से भगवान का ध्यान। ३ हकीकत —सत्य का बोध जिससे त्रिकालज्ञ होजाता है। (४) मारफत—सिद्धा-वस्था जिससे अंत में साधक की आत्मा परमात्मा से लीन हो जाती है।

यहां जायसी बताते हैं कि शरीरस्थ नव चक्रों को भेद दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने के लिये चार पड़ाव—शरीअत, तरीकता, हकीकत और मारफत हैं। अर्थात साधक इन चा अवस्थाओं की साधना करता हुआ ही नव द्वारों को बज्र किवाड़ों भेदता हुआ पार जा सकता है।

(१३) नवौं पंवरि पर·······························गा बीति।

शब्दार्थ—दसौ=दसवां; राज घरियारु=राज द्वार पर बजने वाला घड़ियाल; यह घड़ियाल एक घड़ी बीतने पर बजाया जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



और आठ घड़ी बीतने पर वह जोर से बजाया जाता है और पहरा बदल दिया जाता है। घरी=घड़ी; घरीआरि=घड़ियाल बजने वाला; डाँड=डंडा; डाँडा=दंडित किया; निंचित=निश्चिन्त; फिरै=पूरी होना; आऊ=आयु; बटाऊ=बटोही, राहगीर; गजर=बड़ा घंटा निसोगा=शोक रहित; रहँट घरी=रहँट की घरिया या बालटी;

अर्थ—नौ द्वारों के बाद दशम द्वार है और उस पर राज घड़ियाल बजता है। घड़ियाल बजाने वाला बैठा बैठा घड़ी गिनता रहता है कि एक एक पहर की अपनी अपनी बारी लाती है। जब एक घड़ी पूरी होजाती हैं तो वह घड़ियाल बजाता है अतः एक घड़ी पर घड़ियाल बोलता है। घड़ियाल पर जो डंडा पड़ा उसने सारे संसार को दंडित कर दिया अर्थात सबकी आयु में से एक घड़ी लेली। प्रत्येक बार जैसे घड़ियाल सचेत-करता है—हे मिट्टी के बर्तन रूप शरीर तुम कैसे निश्चिन्त हो। तुम भी कच्चे हो कर उसी चाक पर चढे हो और लौट जाने के लिये ही यहां आये हो, स्थिर होकर यहां नहीं बचे रहोगे। जब एक घड़ी पूरी होजाती है तो उतनी ही तुम्हारी आयु घट जाती है अतः हे बटोही! तू कैसे निश्चिन्त होकर सो रहा है। एक एक पहर बाद नित्य गजर बोलता है जो हृदय में चिन्ता रहित होकर सोता है वह उस से भी नहीं जागता।

मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं—जीवन रूपी जल का भरना रहंट की बाल्टी के भरने की भाँति ही है जैसे वह बाल्टी भरी हुई आती है, फिर ढलकर खाली हो जाती है, ऐसे ही जन्म भी बीत जाता है ॥१३॥

(१४) गढ़ पर नीर ..............................न रोग।

शब्दार्थः—खीर=क्षीर; दुरुपदी=द्रौपदी; अँम्रित=अमृत; बिरिध=वृद्ध; जौ लहि=जब तक; बिरिख=वृक्ष; कबिलासा=स्वर्ग; फर=फल; जोबन=यौवन;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ:—गढ़ में नीर और क्षीर नाम की दो नदियाँ है। द्रौपदी के समान अपने अक्षय भंडार से वे बराबर पानी भरती रहती हैं। और मोती चूर नाम का एक कुडं है उसमें अमृत जल भरा है और कपूर की कीच है। इस कुंड का पानी केवल राजा पीता है और वह जब तक जीता है वृद्ध नहीं होता। उसके पास में एक सोने का पेड़ है मानो वह इन्द्र के स्वर्ग का कल्प वृक्ष हो, उसकी जड़ पाताल में और शाखा स्वर्ग में है। उस पर अमर बेल फैली हैं, उसे कौन पाता है और कौन चखता है? अर्थात उसका पाना और चखना कठिन है। चन्द्रमा उस वृक्ष के पत्ते हैं और तारे फूल हैं। जहां तक नगर है वहां तक उसका प्रकाश फैला हुआ है। उसके फल को तपस्या करके कोई विरला ही पाता है। यदि उसके फल वृद्ध खाले तो नव यौवन पा जाता है।

उस अमृतभोग की बात सुनकर राजा भी उसके लिये भिखारी बन गये, जिसने उसे पाया वह अमर हो गया उसे न कोई व्याधि और न कोई रोग रहा। ।१४।।

विशेष:—यहाँ पर सिंहल गढ़ का वर्णन हठयोग के विभागों के अनुसार शरीर का वर्णन है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सिंहलगढ़ और यह शरीर एक दूसरे के प्रतिरूप हैं। हठयोगी अपनी साधना के लिये शरीर के भीतर तीन नाड़ियां मानते हैं। मेरूदंड या रीढ़ की बाईं ओर इला और दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी और इन दोनों के बीच सुषुम्ना नाड़ी हैं बांयें नथनों से जो साँस आती जाती है वह इला नाड़ी से होकर और दांयें नथने से जो सांस आती है वह पिंगला से होंकर। सुषुम्ना नाड़ी के सबसे नीचे के भाग में नाभि के नीचे योगी कुंडलिनी मानते हैं इसी को जगाने का प्रयत्न करते हैं। जाग्रत होने पर कुंडलिनी चंचल होकर सुषुम्ना नाड़ी में होकर समस्त चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक चली जाती है इस अवस्था में साधक ब्रह्म के स्वरूप में मग्न होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अमर हो जाता है। उपर्युक्त पद में सिंहलगढ़ की नीर और क्षीर दो नदियां इला और पिंगला नाड़ियों के प्रति रूप हैं। मोतीचूर नामक कुंड सहस्रार का अमृत भंडार है जहां से अमृत ब्रह्मरन्ध में होकर नीचे झरता रहता है। इसके पास स्थित सोने का वृक्ष सुषुम्ना नाड़ी है। इस सोने के वृक्ष की जड़े पाताल में अर्थात नाभि कुंड के नीचे के भाग में जहाँ से सुषुम्ना नाड़ी निकलती है और शाखा स्वर्ग अर्थात ब्रह्मांड में जहाँ सहस्रार स्थित है—जायसी ने बताई हैं।

इस स्वर्ण वृक्ष के फल कोई ही पाता है—इससे स्पष्ट है कि जो योगी साधना द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के तल में स्थित कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत कर उसे ब्रह्मांड तक पहुँचा देते हैं वही महान आनन्द फल को प्राप्त करते हैं।

१५ गढ़ पर बसहि·················बारहु मास।

शब्दार्थ:—धौरहर—धवल गृह। परस पखान—पारस पत्थर। पंवरि—द्वार, ड्योढ़ी। बेरास—विलास। सारी—पांसा। खरग-दान—खंग दान। हस्ति—हाथी। घोर—घोड़ा। चोवा—एक प्रकार की सुगन्धि।

अर्थ—गढ़ के ऊपर ये चार बसते हैं—(१) गढ़पति, (२) अश्वपति (३) गजपति और (४] नरपति। सबके धवल गृह सोने से सुसज्जित हैं और अपने अपने घर में सब राजा हैं। सब रूपवान धनवान और भोग्यवान हैं पारस पत्थर उनकी ड्योढ़ियों में जुड़े हुये हैं। सदा सब भोग विलास को मान्यता देते हैं दुख और चिन्ता के [मरम] भेद को कोई नहीं जानता है। प्रत्येक महल में आगे चौपाल हैं उन पर बैठकर कुंवर पांसा खेलते हैं। पांसा फेंका जाता है और उत्तम खेल होता है। खंगदान में अथवा तलवारों की लड़ाई में इन कुंवरों की कोई समता नहीं कर सकता ' भाट लोग उनकी सुन्दर कीर्ति का बखान करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रत्येक राज मन्दिर में फुलवाड़ियां हैं जिन से चोवा और चन्दन की सुगन्धि आती है। यहां ऋतु, बारह महीने और रात दिन यहां वसन्त ही बना रहता है ॥१५॥

(१ ) पुनि चलि.................की चालि।

शब्दार्थ—दुआरू=द्वार; महि=पृथ्वी; घूंबिग्र=घूमने पर; बारू=द्वार; कवनो=कोई; रतनारे=लाल; मेघा=बादल; ठंघा=टिकाया; पव्वै=पर्वत; गहि=पकड़कर; पेलहि=फेंकना; उपारि=उखाड़कर; मात=मतवाले; निमत=जो मद के न हों! अँगवैं=शरीर पर सहना; कुरुम=कछुआ;

अर्थ—फिर आगे चल कर राज द्वार दिखाई पड़ता है। धरती पर बहुत घूमने पर भी वह द्वार नहीं मिलता। द्वार पर सिंहली हाथी बँधे हैं, मानो वह सजीव पहाड़ खडे हैं कोई सफेद, पीले और लाल वर्ण के हैं तो कोई हरे, धुमैले और काले हैं। आकाश में बादलों की तरह वे रंग रंग के हैं। ऐसा लगता है मानों उन्होंने आकाश को अपनी पीठ पर टिका रखा हो। सिंहल द्वीप के सिंहली हाथी प्रसिद्ध हैं उन में एक से एक बढ कर बली है। गिरि, पहाड़ और पर्वत पकड़कर वे फेक देते हैं और वृक्षों को उखाड़ कर मिट्टी झाड़ कर मुख में डाल देते हैं। मत वाले और बिना मद के सब हाथी बांधने पर गरजते हैं, रात दिन महावत उनके कंधे पर रहते हैं।

धरती उन हाथियों के भार को नहीं सह पाती अतः उनके पैर रखते ही हिल जाती है। उन की चाल से कछुवे की पीठ टूट गई और शेष के फन फट गये ॥१६॥

(१७) पुनि बांधे ...............कोइ चाह।

शब्दार्थ—रबवार=राज द्वार; तुरंग=घोड़े; लील=नीले रंग का घोड़ा; समुद=बादामी रंग का; हांसुल=वह घोड़ा जिसका बदन मेंहदी के रंग का हो और चारों पैर कुछ कालापन लिये हों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भवंर=मुश्की, भौरे के रंग का; कियाह=वह घोड़ा जिसका रंग पके ताड़ फल जैसा हो; हरा=सब्ज रंग का; कुरंग=जिसका रंग लाख के जैसा हो; महुग्र=महुँए के रंग का; गर्र=गर्रा जिस के वाल सफेद और लाल रंग के हों; कोकाह=सफेद रंग का घोड़ा; बंलाह=वह घोड़ा जिसकी गर्दन और पूँछ के वाल पीले रंग के होते हैं; तीख= तेज; तुखार=तुषार देश के घोड़े; चांड=चंड; प्रवल; तायन=चाबुक साँस=इशारा; सीस उपराही=सिर उठाते हैं; नैनपलक=निमिष मात्र।

अर्थ—राज द्वार पर घोड़े बांधे हुए हैं जैसे उनके रंग हैं उनका क्या वर्णन करूं। लील और समुन्द घोड़ों की चाल संसार जानता है। उनमें कोई हाँमुल, मुशकी और कियाह कहलाते है। हरे रंग के कुलंग और महुए के रंग के अनेक भांति के घोड़े हैं। तीव्र तुषार देश के घोड़े वली और बांके हैं, विना चाबुक के हांकने पर भी चलने के लिये तड़फते हैं। मन से भी आगे उनकी बागें जाती हैं उसांसे छोड़ते हुए उन का सिर आकाश में लग जाता है। थोड़ा सा संकेत पाने पर वे समुद्र पर भी दौड़ लगा सकते हैं और समुन्द्र इस तरह पार करके लौट आ सकते हैं कि उनके पैर भी न भीगे अर्थात वे पानी पर भी दौड़ लगा सकते हैं। वे घोड़े एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते क्रोध में मुंह में लगी लोहे की लगाम चबाते हैं तथा पूँछ और शीश उठा कर दौड़ लगाते हैं।

सब घोड़े ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो वे मन रूपी रथ के घोड़े हों। जहां जो कोई पहुंचना चाहता वहां ये घोड़े निमिष मात्र में पहुँचा देते हैं ॥१७॥

(१८) साजा राज मँदिर.................. खंड ऊपर जात।

शब्दार्थ—कविलास=स्वर्ग; पुहिम=पृथ्वी; फर्श; अकासू= ऊपर का भाग अर्थात छत घौराहर=धवल ग्रह; ऊँचा महल;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



गिलावा=गारा; ररेह=चित्र; उरेहे=चित्रित; उबेहे=पच्चीकारी करके जड़े हुए; अनबन=भिन्न भिन्न; आछत=रहते हुये; बेहर बेहर=अलग अलग। भाड=भाव;

अर्थ—राजा का राज मंदिर स्वर्ग के समान सुशोभित है, उसका फर्श और ऊपर की छत सब स्वर्ण मंडित हैं। राजा का ऊंचा महल (धवल ग्रह) सात खंडों से सुशोभित है। उसे इस प्रकार एक राजा ही अलंकृत कर सकता है। इस महल में हीरे की ईंटें और कपूर का गारा लगा है और रतन जड़ कर उसे स्वर्ग तक ऊंचा बनाया गया है। वहं सब प्रकार के चित्र चित्रित किये गये हैं और पच्ची कारी करके भांति भांति के नग लगाये गये हैं। भिन्न भिन्न भांति के कटाव (नक्काशी) महल में बनाये गये हैं और पंक्ति बद्ध चित्र बनाये गये हैं। उस में जो स्तम्भ लगे हैं वे मणि और माणिक्य जड़ित हैं और देखने में ऐसे लगते हैं जैसे दिन रहते हुये भी दीपक जल रहे हों। उस धवल ग्रह का प्रकाश देखकर सूर्य चांद और तारे छिप गये।

जिस प्रकार सात स्वर्ग सुने जाते हैं उसी प्रकार राज महल में सात खंड सजे हुये हैं। ऊपर चढ़ते हुये एक एक खंड में सजावट को देख कर अलग भाव जाग्रत होते हैं ॥१८॥

[१९] बरनौं राजमंदिर·············· बखानइ रूप।··

शब्दार्थ—रनिवास=अन्तः पुर। अछरिन्ह=अप्सरायें कबिलासू=स्वर्ग। पाट परधानी=पट्ट प्रधान; पटरानी। पाट=आसन। वैसि=बैठी। जोहारू=प्रणाम। सुरंगम=सुन्दर प्रथमै वैस=यौवन का नवआगमन। सरवरि=बराबरी। बारह वानी=बारह वान तक साफ किया कंचन। कुअंरि=राजकुमारी लक्खनी=लक्षण वाली।

अर्थ—जायसी कहते हैं—अब मैं राजमन्दिर में रनिवास का बर्णन करता हूं, वह अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ग सा प्रतीत होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



है। वहां पद्मनी जाति की सोलह हजार रानियां हैं जिन में से एक से एक अधिक रूपवती कही जाती है। वे अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार हैं और केवल पान फूल के आधार पर ही जीवित रहती हैं। उन सबके ऊपर चम्पावती रानी है जो महान रूपवती और पटरानी है। वह श्रृंगार किये हुये अपने आसन पर विराजती हैं और सब रानियां उसे प्रणाम करती हैं। वह नित्य नये रंग में अर्थात नये वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अति सुन्दर लगती है। प्रथम वयस अर्थात नव यौवन के आगमन पर उसकी कोई समता नहीं कर सकता। जो रानी सब द्वीपों से चुन चुन करके लाई गई हैं उनमें वह रानी खरे कंचन के समान दीप्ति वाली हैं।

बत्तीस स्त्री लक्षणों से युक्त वह राजकुमारी सब रानियों में अधिक सुन्दरी थी। सिंहल द्वीप में जितने व्यक्ति थे सब उसके रूप का वर्णन करते थे।

## आलोचनात्मक प्रश्न

प्रश्न—सिंहल द्वीप का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।

वस्तु वर्णन में जायसी को अद्वितीय सफलता मिली है। सिंहल द्वीप का वर्णन इस कथन का ज्वलन्त प्रमाण है। 'पदमावत' की वास्तविक कथा का आरंभ जायसी ने सिंहल द्वीप के वर्णन से ही किया है! सर्व प्रथम सप्त द्वीपों की गणना करते हुये जायसी ने उनमें सिंहल द्वीप की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। जायसी लिखते हैं—

'एक दीप नहिं उत्तिम, सिंहल दीप समीप'

सिंहल द्वीप का राजा गंधर्व सेन है जो भूपतियों में इस संसार में दूसरे इन्द्र के समान है; गंधर्व सेन ऐसा चक्रवर्ती राजा था कि चारों खंड उससे भय खाते थे। इन्द्र से महान राजा गंधर्व सेन का सिंघल द्वीप भी स्वर्ग की सा आभा से दीप्त रहता था। उसके चारों ओर घनी अमराइयां लगी हुई हैं जिनकी छाया अति शीतल और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मनोहारिणी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो सिंहल द्वीप में वसन्त ही छाया रहता है। इन अमराइयों में विभिन्न प्रकार वृक्ष सर्वथा फलों से लदे रहते हैं और उनमें विभिन्न प्रकार के पक्षी क्रीड़ा करते हैं और अपनी अपनी बोली में अनेक प्रकार के करते हैं जिन्हें सुनकर यह ज्ञात होता मानों सब पक्षी ईश्वर का ले रहे हों।

सिंहल द्वीप में पग पग पर कुएं, बावड़ी और सरोवर हैं अमृत मय जल से परिपूर्ण रहते हैं। चारों ओर मठ और भी सुशोभित हैं जहां ऋषि मुनि तपस्या करते हैं। सिंहल द्वीप मान सरोवर की शोभा तो अद्वितीय है। मान सरोवर पर क्रीड़ा करते हैं और नगर की सुन्दर पनिहारिनें पानी भरने हैं। यह मान सरोवर इतना सुन्दर है कि जिसे देखकर प्यास सब मिट जाती है।

सिंहल द्वीप में चारों ओर ऊंचे ऊंचे महल बने हुए हैं हाट भी यहां के देखने योग्य हैं। कनक हाट तो समस्त केसर लिपा हुआ है। उत्तम रत्न मणि; माणिक्य के चारो ओर ढेर हुए हैं और उनमे भांति भाँति की ज्योति छिटकती रहती है। सिंह गढ़ की शोभा तो अवर्णनीय है। वह इतना ऊंचा है मानो आका को छू रहा हो। दुर्ग के नव बांके द्वार हैं और नौ उसमें हैं। नौ द्वारों के बाद दशम द्वार है जिस पर सदा घड़ियाल बज रहता है। गढ़ में नीर और क्षीर नाम की दो नदियां और मोती चूर नामक अमृत कुंड भी है।

राजद्वार भी सिंहल गढ़ का अद्वितीय है जहां पर प्रकार के हाथी और घोड़े बंधे रहते हैं। राजा के राजमंदिर शोभा का तो कहना ही क्या। राजा का धवल गृह सात खंडों सुशोभित है। राजा के अन्त पुर में अत्यन्त रूपवती सोलह हज़ार रानियां हैं जिनके कारण रनिवास अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



तीत होता है। राजा की पट्टरानी चम्पावती सबसे अधिक रूपवती है जिसकी शोभा का सिंहल द्वीप का प्रत्येक व्यक्ति वर्णन करता था।

इस प्रकार जायसी ने सिंहल द्वीप का जो वर्णन किया है वह कहीं कहीं अतिशयोक्ति पूर्ण हो गया है। इसके साथ साथ यह आध्यात्मक परक होने के कारण जायसी के धार्मिक विचारों पर भी प्रकाश डालता है।

प्रश्न—२. जायसी किस परम्परा के कवि माने जाते हैं ? उनकी विशेषतायें लिखिये।

## उत्तर

प्रेम भावना के आधार पर लिखे गये आख्यानक काव्य सूफी कवियों की देन हैं और उन्हीं से हिन्दी साहित्य में प्रेम काव्य की परम्परा का सूत्रपात्र होता है। अलाउद्दीन के शासन काल में मुल्ला दाऊद ने 'नूरक और चन्दा' नामक प्रेम-काव्य की रचना की थी। इसके पश्चात् शेख बुरहान के शिष्य कुतवन कृत 'मृगावती' और मंझन कृत 'मधु मालती' मिलती है। इसी प्रेम काव्य की परम्परा में मलिक मुहम्मद जायसी आते हैं। इन्होंने प्रसिद्ध प्रेम काव्य 'पद्मावत' की रचना की। यह वह प्रतिनिधि प्रेम काव्य है जिसने जायसी को इस परम्परा के कवियों का सरताज बना दिया। इस प्रेम काव्य में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंघल द्वीप के राजा गंधर्व सेन की पुत्री पद्मावती के प्रेम का वर्णन है।

**प्रेम काव्य की परम्परा में जायसी और उनकी विशेषतायें—**

जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार उनका महान् प्रेम काव्य 'पद्मावत' है यह पहले बताया जा चुका है। जायसी वस्तुतः सारग्राही, प्रतिभा सम्पन्न और सहृदय व्यक्ति थे। प्रेम काव्य पद्मावत के रचियता के रूप में उनकी निम्न लिखित विशेषतायें हैं:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(१) 'पद्मावत' की कथा को जायसी ने दो भागों में बाँटा है—. १. पूर्वार्द्ध २. उत्तार्द्ध। पूर्वार्द्ध में रत्नसेन के विवाह तक की कथा और उत्तरार्द्ध में अलाउद्दीन के साथ संघर्ष की कथा आती है। पूर्वार्द्ध कल्पित और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है परन्तु इन दोनों के समन्वय में जायसी को अद्वितीय सफलता मिली है! कथा का प्रवाह सम्बद्ध और आकर्षक है।

(२) जायसी एक सूफी संत थे। पद्मावत प्रेम काव्य में उनकी विशेषता जो अति उल्लेखीय है वह यह है कि उनका संत रूप कथा में कहीं भी प्रच्छन्न नहीं हुआ। उन्होंने कथा में लोक-पक्ष और अध्यात्म-पक्ष दोनों का सुन्दर निर्वाह किया है।

(३) प्रतीकात्मक शैली के द्वारा उन्होंने अध्यात्म-पक्ष का निर्वाह किया है। अध्यात्म पक्ष की दृष्टि से रत्नसेन साधक पद्मावती सध्य हीरामन तोता गुरु और नागमती माया के प्रतीक हैं।

(४) जायसी ने अपने प्रेम काव्य की रचना फारसी की मसनवी शैली में की है। इस शैली के अनुसार उन्होंने पहले ईश्वर वंदना पैगम्बर बन्दना और तत्कालीन शाह की वंदना की है।

(५) दोहा चौपाइयों में लिखा हुआ जायसी का प्रेम काव्य मसनवी शैली में प्रारम्भ किया गया परन्तु उनमें चरित्र चित्रण, पर ऋतु वर्णन और बारह मासा का वर्णन भारतीय ढंग पर हुआ है। इस प्रकार जायसीं ने भारतीय और फारसी दोनों काव्य शैलियों का पदमावत में समन्वय कर दिया है।

(६) सबसे महत्त्व पूर्ण जायसी की बिशेषतः यह है कि उन्होंने विरह की पीर का बड़ा विश्व व्यापी वर्णन किया है। नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। नागमतीं के आँसुओं में सारा विश्व भीगा हुआ दिखाया गया है। बस्तुतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नागमती के रूप में जायसी की विरहिणी और प्रेममयी आत्मा का ही आर्त्तनाद है।

(७) जायसी की भाषा बोलचाल की अवधी है। ठेठ अवध का मिठास जायसी में चरम सीमा को पहुँच गया है।

प्रश्न ३—सूफी धर्म की विशेषतायें बताते हुये जायसी की धर्म भावना के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर

सूफी धर्म—आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे। दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कम्बल लपेटे रहते थे, भूख प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम मे लीन रहते थे। 'सूफ' सफेद, ऊन को कहते हैं। ये सफेद ऊन के वस्त्र पहनते थे अतः सूफी कहलाये। मुहम्मद साहब के करीब ढाई सौ वर्ष पीछे इनकी चिन्तन पद्धति का विकास हुँआ और ये इसलाम के एकेश्वरवाद से अद्वैतवाद पर जा पहुँचे। अद्वैतवाद का बीज इन्हें कुरान के वचनों से ही मिला—"अल्लाह के मुख के सिवा सब वस्तुऐ नासवान हैं, चाहे तू जिधर फिरे अल्लाह का मुंह उधर ही पावेगा;'

सूफी धर्म की विशेषतायें:—

(१) अतः सूफी धर्म की प्रथम विशेषता यह है कि वे अद्वैत वाद अर्थात आत्मा और परमात्मा की एकता में विश्वास करते हैं। सूफियों के अनुसार ईश्वर एक है जिसे 'हक' कहते है उसमें और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है आत्मा या वन्दा इश्क के सूत्र से हक तक पहुँचता है। अनलहक (मैं ब्रह्म हूं) की सूफी आवाज अद्वैत वाद की भावना को हीं अभिव्यक्त करती हैं।

(२) सूफी मजहब दस्तूर (कर्मकांड और संस्कार) आदि के सम्बन्ध में स्वतंत्र थे। वे मोक्ष के लिये पैगम्बर आदि मध्यस्थ की जरूरत नहीं बताते थे!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(३) सूफी धर्म में साधक की क्रमश: ४ अवस्थायें मानी गई हैं— (१) शरीअत—धर्म ग्रंथों के विधि निषेध का सम्यक् पालन (२) तरीकत—बाहरी क्रिया कलाप से दूर होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का भजन, (३) हकीकत—भक्ति और उपासना से सत्य का बोध जिससे साधक तत्त्व द्रष्टा और त्रिकालज्ञ हो जाता है। (४) मारफत—सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अन्त मे साधक की आत्मा में लीन हो जाती है।

ये उपर्युक्त चार अवस्थायें सूफी धर्म का प्रमाण हैं।

(४) निस्वार्थ, निष्काम प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम के नशे में ही ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है और शैतान साधक को निर्दिष्ट मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करता है। शैतान से बचने के लिये पीर (गुरु) की आवश्यकता होती है—ऐसा सूफी धर्म में माना जाता है।

सूफी धर्म और जायसी:—

जायसी सूफी संत थे यह उनकी विचार धारा से स्पष्टत: व्यक्त हो जाता है। अद्वैतवाद की झलक जायसी के काव्य में स्थान स्थान पर दिखाई पड़ती है—

आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखन हार।
आपुहि लिखनी आखर आपुहि पंडित अपार॥

जायसी जगत को ब्रह्म से अलग नहीं मानते— यह भावना सूफी धर्म के अनुसार ही है—

जब चीन्हा तब और न कोई, तन, मन जिउ जीवन सब सोई।
'हौं हौं' कहत धोक इतराही, जब भा सिद्ध कहाँ परछाहीं॥

जायसी ने सूफी धर्म के अनुसार साधक की चार अवस्थाओं को माना है। वे शरीअत को साधना की पहली सीढ़ी मानते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



साँची राह 'सरीअत' जेहि विसवास न होय।
पाँव रखे तेहि सीढ़ी, निरभय पहुंचै सोय॥

आगे सिंहल द्वीप वर्णन में भी चार अवस्थाओं की ओर जायसी ने संकेत किया है—

नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ वज्र किवार।
चार बसेरे सौं चढ़े, सत सौं उतरै पार॥

जायसी ने गुरू की सत्ता को स्वीकार किया है। पद्मावत् में स्वयं हीरामन तोता गुरू का प्रतीक है। कहीं तो जायसी ने गुरू और परमात्मा को एक कर दिया है—

जब लगि गुरू हौं अहा न चीन्हा। कोटि अन्तरपट बीचहिं दीन्हा॥
जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ जीवन सब सोई॥

इसके अतिरिक्त जायसी ने सूफियों के उदार प्रेम मार्ग के प्रति अपना अनुराग प्रगट किया है—

प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा;
सो पै चढ़ै जो सिसौं चढ़ा॥

अर्थात प्रेम के पहाड़ को चढ़नाँ उन्होंने अति कठिन बताया है इस पर पैरों से नहीं सिर से चढ़ा जाता है।

अतः स्पष्ट है सूफी धर्म भावना का पूर्ण स्वरूप जायसी की धार्मिक भावना में अभिव्यक्त हुआ है।

प्रश्न ५—जायसी के काव्य कौशल पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपने विचार सप्रमाण स्पष्ट कीजिये।

## उत्तर

प्रेम काव्यों की परम्परा में 'पद्मावत' जायसी की प्रौढ़ रचना है। ठेठ अवधि भाषा के माधुर्य और भावों की गंभीरता की दृष्टि से यह रचना निराली है। जायसी के काव्य कौशल पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने के लिये यह आवश्यक है कि हम उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भावपक्ष और कलापक्ष का विवेचन कर। नीचे जायसी के काव्य के मूल्यांकन उनके भावपक्ष और कलापक्ष के आधार पर किया जाता है—

**भावपक्ष**—भावपक्ष पर दृष्टि पात करते समय दो बातों पर मुख्यतः विचार करना पड़ता है—(१) कवि की दृष्टि कहां तक भाव और गूढ़ मानसिक विकारों तक पहुंची है, (२) भाव कितने उत्कर्ष को पहुँचा है? पहली बात में हम जायसी को अधिक बढ़ा चढ़ा नहीं पाते हैं। मनुष्य हृदय की अधिक अवस्थाओं का सन्निवेश हमें जायसी में नहीं मिलता है और भावों के भीतर संचारियों के समावेश का भी अभाव है परन्तु दूसरी बात—भावोत्कर्ष में जायसी बहुत बढ़े चढ़े हैं। पद्मावत मे रतिभाव की प्रधानता है जिसके अन्तर्गत जायसी ने संयोग और वियोग पक्षों का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु भावोत्कर्ष वियोग पक्ष में अधिक दिखाई देता है। नागमती का एकांगी विरह और रत्नसेन तथा पद्मावती का उभय पक्षी विरह बड़ा मार्मिक है। नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा एक विशेष स्थान रखता है।

वस्तुतः जायसी का हृदय प्रेम की पीर से लबालब भरा हुआ था। विरह की पीर का जैसा विश्वव्यापी वर्णन जायसी ने किया है वह हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। विरह की दशा में व्यक्ति और उसके वातावरण में पूर्ण सामंजस्य और पूर्ण विषमता दोनों बातें देखने को मिलती हैं—

**सामंजस्य**— (१) बरसै मघा झकोरि झकोरि;
मोर दुई नैन चुवै जस ओरि।
(२) तन जस पियर पात भा मोरा,
तेहि पर विरह देत झकझोरा।

**विषमता**—कातिक सरद चन्द उजियारी,
जग सीतल हौं विरह जारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इसी प्रकार 'सब कहें चन्द भएउ मोहि राहु में बड़ी मार्मिक व्यंजना है ।

कवि की भावुकता का पता तो वहां चलता है जब नागमती अपना रानीपन भूलकर असहाय ग्रामीण अबला की भांति कह उठती है —

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा । हों बिनु नाह मंदिर को छावा ॥

इस में जो दैन्य और पति की निर्भरता की व्यजंना है वह महत्त्व पूर्ण है । विरह वर्णन में कल्पना के द्वारा दूर की उड़ान अच्छी ली गई हैं । नागमती के हृदय की अभिलाषा देखिये—

यह तन जारौं छार कै, कहौ कि पवन उड़ाव ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहं पांव ॥

बिहारी के से वस्तु स्थिति में अन्तर डालने वाले स्थलों का भी जायसी में अभाव नहीं है—

जेहि पंखों के नियर होई, कहै विरह की बात ।
सोइ पंखी जाय नरि, तरिवर होय निपांत ॥

वियोग पक्ष की भांति भी जायसी का संयोगपक्ष भी सजीव है । जायसी कथा के बीच बीच में परोक्ष सत्ता की ओर इंगित करते चलते हैं जिससे लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है ।

कलापक्ष—जायसी की भाषा ग्रामीण अवधी है परन्तु ठेठ अवधी का मिठास जायसी में चरम सीमा को पहुंच गया है । पद्मावत में व्यंजना का प्रधान्य होने के कारण रूप को और अन्योक्तिओं का समावेश हुआ ही है किन्तु अलंकारों की भी कमी नहीं हैं । यद्यपि जायसी ने उपमाओं उत्प्रेक्षाओं को अनेकों वार दुहराया है तथापि उनमें मौलिकता और नवीनता है । जायसी की अलंकार योजना की भापा भं भावों के उत्कर्ष में सहायक है । साहश्य मूलक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अलंकारों का आपने अधिक प्रयोग किया है। शृंगार, वीर और शान्त रस मुख्य रूप से आपके काव्य में मिलते हैं।

प्रश्न ५... जायसी की अपेक्षा तुलसी को अपनी धार्मिक भावना के प्रचार में अधिक सफलता क्यों मिली ? तर्क पूर्ण उत्तर दीजिये।

## उत्तर

जायसी और तुलसी अपनी अपनी धारा के प्रतिनिधि कवि है, जायसी प्रेममार्गी निर्गुण धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं तो तुलसी राममार्गी सगुण धारा का। दोनों कवियों को कवि के रूप में अपने क्षेत्र में अपूर्व सफलता मिली परन्तु जहां तक जायसी और तुलसी की धार्मिक भावना के प्रचार का सम्बन्ध है; यह हम निर्विवाद कह सकते हैं कि तुलसी को जायसी के अपेक्षा अधिक सफलता मिली। इसका प्रथम कारण तो यह था कि तुलसी दास ने अपनी धार्मिक भावना के प्रचार के लिये राम के सर्वविदित और अति प्रचलित चरित्र को लिया। तत्कालीन परिस्थितियों में अशान्त और पीड़ित हिन्दू जनता को कबीर का ब्रह्मवाद और जायसी का प्रेम वाद सान्तवना न दे सका तब तुलसी ने राम के उज्जवल चरित्र द्वारा जनता की धार्मिक पिपासा को शान्त किया इसकी पृष्ठ भूमि स्वामी रामानन्द की राम भक्ति भावना द्वारा पहले ही तैयार हो चुकी थी। जायसी ने अपनी धार्मिक भावना के प्रचार के लिये राजा रत्न सेन और पद्मावती का जो चरित्र लिया वह तुलसी के राम चरित्र के सामने हलका रहा। जायसी ने लोक पक्ष और आध्यात्म पक्ष दोनों को अपनी कथा द्वारा व्यक्त किया। आध्यात्म पक्ष की दृष्टि से रत्न सेन साधक, पद्मावती साध्य, हीरा मन तोता गुरु और नागमती माया के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के कारण कथा प्रवाह कहीं २ शिथिल हो गया है। दूसरी बात यह भी है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रतीकों का वास्तविक अर्थ जन साधारण की समझ से परे की चीज़ थी जब कि तुलसी की कथा में इस प्रकार के प्रतीकों की कोई व्यवस्था नहीं हैं।

जायसी ने खंडन मंडन का मार्ग नहीं अपनाया उन्होंने केवल अपनी प्रेम भावना को व्यक्त किया परन्तु धार्मिक प्रचार के लिये इतना ही काफी नहीं था' इसके लिये तो यह आवश्यक था कि कोई ऐसा धर्म प्रस्तुत किया जाय जो विभिन्न धार्मिक भावनाओं का समन्वय कर सब को सन्तुष्ट कर सके। तुलसी के अन्दर यह समन्वय—शक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिन्होंने सगुण और निर्गुण; शैव और वैष्णव; ज्ञान और भक्ति आदि विभिन्न पद्धतियों; भावनाओं और साधन मार्गों का समन्वय कर अपना धार्मिक क्षेत्र अति विस्तृत कर लिया—यह विशेषता हम जायसी में नहीं पाते हैं।

एक तो तुलसी की सी समन्वय शक्ति जायसी में न थी दूसरे उन्होंने अपने पद्मावत में ठेठ अवधी भाषा का प्रयोग किया परन्तु तुलसी ने परिष्कृत एवं प्रौढ़ नागरिक अवधी का प्रयोग जो जन साधारण के आज भी अति निकट है। ठेठ अवधी भाषा होने के कारण जायसी के पद्मावत का अधिक प्रचार न हो सका। शैली की दृष्टि से तुलसी का सम्पूर्ण काव्य उनके युग का प्रतिनिधित्व करता है। वीरगाथा की छप्पय शैली; विद्या पति और सूर की गीत शैली, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया शैली, कबीर की दोहा शैली और जायसी की दोहा चौपाई शैली-इन सब शैलियों को तुलसी ने सफलता पूर्वक अपनाया।

तुलसी ने अपने काव्य में राम के लोक संग्रही रूप को लिया है और भगवान के निर्गुण रूप की अपेक्षा उनके सगुण रूप की भक्ति पर अधिक बल दिया है। राम की भक्ति निरूपण में ही उन्होने सब धर्मों, सब वर्णों, परिवारिक जीवन की समस्त परिस्थितियों, राजनीतिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों तथा भक्ति सम्बन्धी दार्शनिक मान्यताओं का समावेश किया है अतः तुलसी के 'राम' ने प्रत्येक हिन्दू के हृदय में अपना स्थान बना लिया जब कि इसके विपरीत जायसी के पैगम्बरी 'ईश्वर' ने हिन्दू जनता के निम्न वर्ग को ही विशेष रूप से आकृष्ट किया था।

तुलसी का शृगांर वर्णन भी बड़ा पावन और मर्यादा पूर्ण है परन्तु जायसी का शृगांर वर्णन कहीं कहीं मर्यादा का अति क्रमण कर गया है अतः धार्मिक भावना को ऐसे स्थलों पर एक धक्का सा लगता है।

प्रश्न—६ जायसी रहस्यवादी कवि क्यों कहे जाते हैं ? अपनी पाठ्य सामग्री से प्रमाण देकर उत्तर दीजिये।

## उत्तर

बाबू गुलाब राय जी कहते हैं— 'जीव की दृश्य जगत में ऊंची किसी श्रेष्ठतम सत्ता से भावमय सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा तथा उस इच्छा की पूर्ति के साधनों तथा पूर्ति व अपूर्ति से सुख दुख मय अनुभवों को रहस्यवाद कहते हैं। ये वर्णन 'गूंगे के गुड़' की भाँति भाषा की शक्ति से परे होते हैं और सैना-वैना द्वारा ही समझाये जा सकते हैं। नश्वर स्वर से अनश्वर के गीत गाना कोई सहज बात नहीं है। यह आध्यात्मिक अनुभव लौकिक अनुभव से ऊंचा होता है इस में रहस्य की भावना रहती है। जिज्ञासा से आरम्भ करके मिलन तक कई श्रेणियाँ हैं। कभी क्षणिक मिलन के सुख के पश्चात घोर विरह का सामना करना पड़ता है।"

उपर्युक्त रहस्यवाद की कसौटी पर यदि हम जायसी के काव्य को कसें तो यह पूर्णतः स्पष्ट होजाता है कि जायसी रहस्यवादी कवि थे। श्रेष्ठतम सत्ता परमात्मा से निश्छल सम्बन्ध जोड़ने उसे समझने और उसे पाने की व्याकुलता जायसी में स्पष्ट परिलक्षित होती है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल तो कहते है—"हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



और सुन्दर अद्वैतीय रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता बहुत ऊची कोटि की है। वे सूफियों की भक्ति भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप माधुर्य्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरुष' के सामागम के हेतु प्रकृति के शृंगार उत्कंठा विरह विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। "

लौकिक सिंहल द्वीप को वनस्थली का वर्णन करते हुये वृक्ष की छाया में वे प्रियतम की महान छाया देखते हैं—

ओही छाह रैनि होंई आवै। हरिअर सवै आकास दिखावै॥
पथिक जो पहुँचै सहि घामू। दुख विसरे सुख होइ विसरामू॥
... जिन्ह यह पाई छाहँ अनूपा। बहुरि न आय सही यह धूपा॥

पद्मावती, जिस को जायसी ने परमात्मा का प्रतीक उसका रूप ही सारी आख्यायिका का आधार है। कवि सिंहल गढ़ वर्णन में पनिहारियों के सुन्दर रूप की झलक दिखाकर पद्मावती के रूप के प्रति जो उत्कंठा जाग्रत करता है, यह कवि की रहस्यवादी प्रवृत्ति का परिचायक है—

मानहु मैन मुरति सब, अछरी वरन अनूप।
जेन्हि की ये पनि हारी, सो रानी केहि रूप॥

जायसी के रहस्यवाद में जीव और ब्रह्म की एकता की भी झलक मिलती है। ... एकता का साधन सिंहल गढ़ वर्णन में हट योग की कुछ क्रियायें बताई हैं—

१. नव पँवरी बांकी, नव खंडा। नवहु जो चढ़े जाइ ब्रह्मंडा॥
२. वह फर पावै तपि कै कोई। बिरिधि खाई, नव जोबन होई॥

उपर्युक्त विवेचन में अपनी पाठ्य सामग्री से उदाहरण देकर जायसी के रहस्यवाद को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया। वस्तुतः पद्मावत में अन्य अनेक ऐसे स्थल हैं जो उन के रमणीय अद्वैतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रहस्य वाद पर प्रकाश डालते हैं। उन का वर्णन करना प्रश्न की सीमा का उल्लंघन करना है अतः यहां उन की उपेक्षा की गई हैं।

प्रश्न—जायसी और तुलसी की भाषा शैली पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

जायसी की भाषा ठेठ अवधि है जिसे पूर्वी अवधी भी कहते हैं। जायसी ने अपने काव्य-सृजन में केवल इसी भाषा को अपनाया परन्तु तुलसी ने अपने समय की दोनों काव्य भाषाओं—१. अवधी और २. व्रज भाषा को अपनाया था। राम 'चरित में पश्चिमी अवधी और बरवै रामायण में पूर्वी अवधी को तथा गीतावली, कविता वली और विनय पत्रिका में व्रज भाषा को अपनाया था। अतः स्पष्ट है, तुलसी का भाषा ज्ञान जायसी से अधिक था। जायसी ने अपना 'पद्मावत' केवल पूर्वी अवधी में लिखा उन्होंने पश्चिमी अवधी का प्रयोग नहीं किया जब कि तुलसी ने दोनों पर अपना समान रूप से अधिकार प्रदर्शित किया है। जायसी की भाषा में चलती हुई पूर्वी अवधी का रूप मिलता है. तुलसी ने उसे साहित्यिकता प्रदान की। जायसी की भाषा ठेठ ग्रामीण बोल चाल की है तो तुलसी की भाषा साहित्यिक और परिमार्जित है।

जायसी ने अपना 'पद्मावत' दोहा चौपाई शैली में लिखा। परन्तु तुलसी ने विषय के अनुकूल छंद बदल कर अपने समय की सभी शैलियों को अपनाया है। प्रबन्ध काव्य के लिये उन्होंने जायसी की दोहा चौपाई-शैली की प्रतिष्ठा बढ़ाई, नीति के लिये कबीर की दोहा शैली को अपनाया। शृंगारिक और अलंकार भावनाओं के लिये रहीम के बरवै छंद को अपनाया गया। राम के यशगान के लिये भाटों की कवित्त सवैया शैली को अलंकृत किया युद्ध वर्णन में वीर गाथा काल की छप्पय-शैली को वे काम में लाये। अत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्पष्ट है जायसी की दोहा–चौपाई शैली को तुलसी ने अपनाया और अपना सब से प्रतिष्ठित ग्रंथ 'राम चरित मानस' इस शैली में लिखा। परन्तु फिर भी जायसी और तुलसी में कुछ स्पष्ट अन्तर है। तुलसी ने ८ चौपाइयों के बाद दोहा रखा है जब कि जायसी ने ७ के बाद। प्रसंगानुकूल तुलसी ने और छंदों को भी अपनाया है परन्तु जायसी ने अपने को दोहे चौपाइयों में ही सीमित रखा है।

कुछ परीक्षोपयोगी स्थल:—

निम्नलिखित पंद्याशों की विस्तृत व्याख्या कीजिये:—

१. जबहि दीप..................जानहु सदा बसन्त।

(देखो पद संख्या ३)

२. बसहि पंखि...............दइअ कार नाउं।

(देखो पद संख्या ५।)

३. पुनि आइअ.......................लगि बरनौं फेरु।

(देखो पद संख्या ११)

४. निति गढ़...............सत सौं चढ़ै सो पार।

(देखो पद संख्या १२)

५. नवौ खंड... ..........गा बीति।

(देखो पद संख्या १३)

६. गढ़ पर नीर....................न रोग।

(देखो पद संख्या १४)

# ३. भक्त सूरदास

## महाकवि सूरदास—

परिचय—यद्यपि महाकवि सूरदास को हिन्दी साहित्य का 'सूर' कहा जाता है परन्तु खेद है कि इनका जीवन वृत्त अन्धकार में है। आपके जन्म सम्वत के सम्बन्ध में अनुमान आप के ग्रंथ 'साहित्य लहरी' के निर्माण काल के बारे में दिये दोहे से लगाया जाता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्वत पेख॥

इस का अर्थ इस प्रकार लगाया जाता है—मुनि =७, रसन= शून्य ० (रस न), रस=६ दस गौरी नन्द (गणेश जी का दांत एक माना जाता है) =१। अंको की गिनती उलटी की जाती अतः साहित्य लहरी का निर्माण काल सम्वत १६०७ वैठता है।

'साहित्य लहरी' की रचना के समय ऐसा अनुमान किया जाता है कि कवि की अवस्था ६७ वर्ष की थी अतः सूरदास का जन्म सम्वत अनुमानतः (१६०७—६७=१५४०) सम्वत १५४० वैठता है।

सूरदास जी का मृत्यु सम्वत भी निश्चित नहीं है, प्रेम अनुमान से कहा जाता है कि इनकी मृत्यु सम्वत १६२० में हुई क्योंकि ऐसी किंवदन्ती है कि इन्होंने ८० वर्ष की आयु पाई था।

कुछ लोग सूर को चन्द का वंशज बताते हैं, इस प्रकार से जगात कुल के ब्रह्म भट्ट ठहरते हैं। लेकिन 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में उनको ब्राह्मण कहा गया है। श्री गुलाब राय जी का मत कि चौरासी वैष्णव की वार्ता सूरदास के सम्प्रदाय का ही ग्रन्थ है इसकी बात ही प्रामाणिक मानी जानी चाहिये। सूरदास जी अन्धे यह तो सर्व विदित तथ्य है परन्तु वे जन्मान्ध थे या बाद में अन्धे इस विषय में मतभेद है। परन्तु उनके जन्मान्ध होने की बात संदिग्ध सी ही लगती है क्यों कि यदि जन्मांध होते तो वे कृष्ण और की ऐसी बातें नहीं लिख सकते थे जो निजि निरीक्षण पर ही निर्भर रहती हैं।

"चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर ही कुछ सं गऊघाट के निकट रुनकता को सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं पर इसके विपरीत कुछ लोग दिल्ली के समीप सीही स्थान को उन जन्म स्थान का श्रेय देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


सूरदास जी वल्लभाचार्य के शिष्य थे और उनके पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित थे। वल्लाभाचार्य के पुत्र विट्ठलदास जी ने जब अष्ट छाप की स्थापना की तो कृष्ण भक्ति के आठ कवियों में सूर को प्रमुख स्थान दिया। अष्ट छाप के कवियों के नाम इस प्रकार हैं—सूर दास, कंभन दास; परमानन्द दास, कृष्ण दास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास और नन्द दास। इन में चार श्री वल्लाभाचार्य जी के और चार गोस्वामी विट्ठल दास के शिष्य थे।

साहित्यिक रचनाएँ—सूर दास जी के पांच ग्रंथ माने जाते हैं जिन मे दो अप्राप्य हैं—(१)सूर सागर (२)साहित्य लहरी ३) सूरसारवली (४)नलदमयन्ती और(५)व्याहलो। इनका प्रधान ग्रंथ सूर सागर ही है। अंतिम दो ग्रन्थ अप्राप्य हैं। साहित्य लहरों' में दृष्टि कूट पद हैं और सूर सारा वली एक प्रकार से 'सूर सागर' का सार है।

साहित्य में स्थान—सगुण कृष्ण मार्गी धारा के सूरदास प्रतिनिधि कवि हैं। सूरसागर सूरदास जी का मुक्तक काव्य का एक विशाल काव्य ग्रंथ है। इस में सूरदास ने श्री कृष्ण जन्म से उनके मथुरा गमन तक की मुख्य घटनाओं का ऐसा विस्तृत वर्णन किया है कि इस क्षेत्र में उन्होंने अन्य कवियों के लिये कुछ नहीं छोड़ा। उन का वात्सल्य वर्णन एक प्रकार बालमनो विज्ञान का माधुर्यपूर्ण अध्ययन है और इस दिशा में विश्व का कोई कवि उन की समता नहीं कर सकता है। वात्सल्य के अतिरिक्त शृंगार रस के क्षेत्र में ही सूरदास अद्वितीय हैं। सबसे पहले उन्होंने ही शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सांगोपांग वर्णन किया है।

सूरदास जी एक प्रकार से भ्रमर गीत काव्य की परम्परा के प्रवर्तक हैं। सूरदास जी का भ्रमर गीत हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठ उपालम्भ काव्य है यद्यपि बाद में नंददास रत्नाकर, सत्यनारायण आदि कवियों ने सूर के काव्य को आधार बना कर भ्रमर गीत काव्य का सृजन किया है परन्तु सूर का इस क्षेत्र में अपना अलग महान स्थान है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वास्तव में सूर का काव्य महान है वह देश काल की सीमाओं से परे हैं। समय की धारा सूर के काव्य को वहा कर नहीं ले जा सकी। हिन्दी साहित्य में उनका स्थान अमर है ।

# टीका—

## सगुणोपासना—

(१) अविगत-गति कछु............. सगुन पद गावै।

**शब्दार्थ**—अविगत=अज्ञात अर्थात निर्गुण ब्रह्म; अन्तरगत=अन्तःकरण में; अमित तोष=अपार संतोष; अगम=अगम्य, पहुंच के परे; अगोचर=जो दिखाई न दे; जुगति=युक्ति; निरालंब=निराश्रित; तातैं=इस लिये ।

**संकेत**—सूर सगुणोपासक कवि थे, कृष्ण के प्रति उनकी भक्ति सख्य भाव की थी। कृष्ण के अनन्य भक्त एवं सगुणोपासक होते हुये भी सूरदास ने निर्गुण भक्ति की प्रशंसा की है। निर्गुणोपासना से परमानन्द की प्राप्ति होती है परंतु इस की साधना अति कठिन है अतः सूरदास सगुणोपासना को ही अति महत्व देते हैं।

**अर्थ**—निर्गुण ब्रह्म की गति तो अनिर्वचनीय है, अर्थात उस की गति का वर्णन करना अति कठिन है। जिस प्रकार किसी गूंगे मनुष्य को मीठा फल दे दिया जाय तो यद्यपि वह इसके मधुर रस का स्वाद अपने अन्तः करण में अनुभव करता है और उसे सतत रूप से अपार संतोष की प्राप्ति होती है परंतु वह मधुर रस का वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ रहता है। ठीक इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म का उपासक उस परम आनन्दमय स्वरूप का अनुभव अपने अन्तः करण में करता है परंतु गूगे की तरह इस अनुभूत आनन्द का वर्णन करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है। (सत्य बात तो यह हैं कि निर्गुण ब्रह्म मन और वाणी की पहुँच से परे है और चर्म चक्षुओं से उसे देखना असंभव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



है और वे ही उसे जानते हैं जिन्होंने योग द्वारा उसे प्राप्त कर लिया है परंतु कठिनाई यह है कि वे भी गूंगे मनुष्य की तरह अपने अनुभव से किसी अन्य को उस आनंदमय स्वरूप के दर्शन नहीं करा सकते और न उनके बारे में कुछ बता सकते हैं। वस्तुत: निराकार व्यापक ब्रह्म का कोई स्वरूप, कोई आकार कोई गुण और जाति नहीं है तथा उस को प्राप्त करने की युक्तिओं से अनभिज्ञ साधक कहां जाय यह वह नहीं समझ पाता। सूरदास उस को इस लिये सब प्रकार से अगम्य अर्थात् पहुँच के परे समझ कर उस सगुण स्वरूप की ही लीलाओं का गायन करते हैं जो सरलता से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि वह निश्चित स्वरूप और गुणों से युक्त है।

भक्त वत्सलता

(२) बासुदेव की.........................जदुनाथ गुसाईं।

शब्दार्थ—बासुदेव = श्री कृष्ण; बड़ाई = महिमा; ढिठाई = ढीठता धृष्टता; भृगु = एक ऋषि जिन्होंने विष्णु की छाती में लात मारी थी; विरंचि = ब्रह्मा; उपकार = भलाई; अरि = शत्रु; अनुज = छोटा भाई; नाई = तरह; बकी = राक्षस बकासुर की बहिन पूतना; जदुनाथ = यादव नाथ श्री कृष्ण।

संकेत इस पद में सूर ने यह स्पष्ट किया है कि भगवान भक्तों से प्रेम करते हैं और भक्तों को धृष्टता की भी चिन्ता न कर उनका उद्धार कर देते हैं।

अर्थ—भगवान कृष्ण की महिमा अपार है, वे जगत के पिता स्वामी और गुरू हैं तथा अपने भक्तों की धृष्टता को भी सहन करलेते हैं। जिस समय महामुनि भृगु ने उन की छाती पर लात मारी तो उन्होंने भृगु के चरण को अपने वक्ष स्थल से न हटाते हुये सब प्रकार से भृगु को ही सुख देने वाले वचन कहे (भृगु के लात मारने पर आप ने कहा था—महामुनि आपके चरण अति कोमल हैं, मेरा वक्ष स्थल कठोर है आपके पैर में चोट लग गई होगी) इस के विपरीत भृगु के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अशिष्ट व्यवहार पर शिव और ब्रह्मा तो उन्हें मारने के लिये दौड़े थे अतः जैसा आपका स्वभाव या आप की गति है वह और किसी देवता में प्राप्त नहीं। आप तो बिना बदले की भावना रखे हुए ही दूसरों की भलाई करते हैं और आप की मित्रता स्वार्थ पर आधारित नहीं होती अर्थात आप निःस्वाथ भाव से मित्रता करते हैं। शत्रु रावण का छोटा भाई विभीषण जब आपकी शरण में आया तो आपने उसे अपने छोटे भाई भरत के समान समझ कर निःस्वार्थ भाव से भेंट की। पूतना जब छल द्वारा आपका प्राणांत करने के लिये आई तो आपने उस के साथ भी उपकार ही किया और उस राक्षसी को परम धाम स्वर्ग भेज दिया। सूरदास कहते हैं कि मेरे प्रभु यादव नाथ, सब के स्वामी ऐसे दयालु हैं कि न देने पर भी वे सब कुछ अपने भक्तों को देते हैं।

टिप्पणी—अन्तर्कथाएँ (१) भृगु—ये एक प्रसिद्ध मुनि हैं और शिव के पुत्र माने जाते हैं. महर्षि भृगु ने एक बार यह निर्णय करना निश्चय किया कि त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश में कौन बड़ा है। पहले ये ब्रह्मा और शिव के यहां गये और कुछ अशिष्टता का परिचय दिया फलतः ब्रह्मा और शिव दोनों इन्हें मारने दौड़े। सबसे बाद में ये विष्णु के पास पहुंचे जो अपनी शेषशय्या पर विराजमान थे। जाते ही भृगु ने विष्णु के वक्षस्थल पर पाद प्रहार किया। परन्तु नित्यानन्द विष्णु में रोष कहां? विप्र का चरण प्रभु ने अपने हाथों से दबाते हुये कहा—'इस कोमल पद को कष्ट हुआ होगा।' भृगु चरण चिन्ह आज भी विष्णु के वक्ष पर भूषण की तरह सुशोभित है।"

बकी—यह बकासुर राक्षस की बहिन थी जिसे पूतना भी कहते हैं। कंस ने इसे कृष्ण को मारने के लिये भेजा था। यह अपने स्तनों पर विष लगा कर आई। सुन्दर वेश में यह नंद के घर पहुँची और कृष्ण को लेकर दूध पिलाती हुई आकाश में उड़ गई। कृष्ण दूध के साथ उसका रक्त भी पी गये और मार डाला। इस प्रकार कृष्ण हाथ से मर कर स्वर्गधाम गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भगवदाश्रय—

(३) राखी पति.............................देखि उघारी।

शब्दार्थ—पति—लाज; गिरिवर=कृष्ण; गिरि—धारी=गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले; उघरत=आवरण हटना भीषन—द्रोन—करन=भीष्म पितामह; गुरू द्रोणाचार्य और महा रथी कर्ण; वदन पर=मुख पर, सामने; अपति=पतिहीन अर्थात् अनाथ; पाँडुकुमार=पांडव; महि=पृथ्वी; पैज=प्रतिज्ञा; पारथ=पार्थ, अर्जुन; धरम-सुत=धर्म राज युधिष्ठिर; धरनी=पृथ्वी, श्री नाथ—मुकुन्द—मुरारी=श्री कृष्ण; उघारी=यहां 'लाज उघारी' से तात्पर्य है अर्थात् लाज का जाना !

संकेत—भक्त को सर्वदा भगवान का भरोसा रहता है यहां पर सूर ने द्रौपदी के उस आत्म विशवास का दर्णन किया है जिस के द्वारा उसने अपनी लाज दुःशासन द्वारा दुर्योधन की भरी सभा में लुटते देख स्वामी कृष्ण का आवाहन किया था। कृष्ण ने उस समय द्रौपदी की रक्षा की थी। जिस समय दुःशासन द्रौपदी का चीर हरण कर उसे विवस्त्र करना चहता था उस समय भक्तों के रक्षक भगवान कृष्ण ने द्रौपदी का चीर इतना वढ़ा दिया कि दुःशासन भी उसे खीचंते २ थक गया परन्तु उसका पार न पा सका।

अर्थ—द्रौपदी कहती है—हे गिरि गोवर्धन को उठाने वाले कृष्ण ! मेरी लाज रखलो। हे नाथ ! अब तो लाज जाने में कुछ शेष नहीं रहा है, अनाथ द्रौपदी आपको समय पर (लांज उघरते समय) ही पुकारती है। समस्त राजाओं की सभा बैठी हुई है और इन में भीष्म पितामह, गुरू द्रोणाचार्य और महारथी कर्ण जैसे व्रतधारी भी बैठे हुये हैं लेकिन सामने कुछ भी तो कोई नहीं. कहता। ('पतितन' शब्द के यहां पर दो अर्थ लगते हैं—१. पापी २. पति—द्रौपदी पांचो पति पंच पांडव) १. वास्तव में ये सब पतित हो गये हैं और मुझे इन्हों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ने अनाथ समझ रखा है। २. ये सब राजा और व्रत धारी महापुरुष मुझे मेरे पतियों अर्थात् पंच पांडवों के होते हुये भी अनाथ समझ रहे हैं। इस समय पांडव पुत्र विवशता के कारण पवन से काप रहे हैं परंतु कुछ कर नहीं पाते। भीम ने अपनी गदा हाथ से भूमि पर पटक दी अर्जुन भी अत्याचारियों को दमन करने की अपनी प्रबल प्रतिज्ञा का पालन न कर सके क्यों कि धर्म पुत्र युधिष्ठर अपनी पृथ्वी,अपना राज और सर्वस्व जुए में हार चुके हैं। हे नाथ ! अब तो आप के बिना मेरा कोई नहीं है अतः श्री कृष्ण मेरी रक्षा करो। नहीं तो अवसर बीतने पर और मेरी लाज लुट जाने पर पछताओगे कि तुम अपने एक भक्त की समय पर रक्षा न कर सके।

विशेष—पंच पांडव दुर्योधन द्वारा बिछाये जाल में पड़ कर जुए में अपना समस्त राज्य, स्वय अपने को और द्रोपदी को हार गये थे। इस हार के कारण द्रौपदी पर भी दुर्योधन का अधिकार होगया अतः उसने भरी सभा में द्रोपदी को विवस्त्र (वस्त्र हीन) करने को आज्ञा दी। द्रौपदी को भरी सभा में पांडव के सामने दु:शासन ने विवस्त्र करना शुरू किया परंतु पांडव क्यों कि अपने को पहले ही हार चुके थे' कुछ न बोले ; अतः द्रोपदी ने कहा था—'इन पतितन मो अपति विचारी'।

भावी—

(४) भावी काहू ... ... ... ... करि सोच मरै।

शब्दार्थ—भावी=होनी, भविष्य में होने ~~वाली~~ वस्तु; राहु=एक ग्रह जो सूर्य और चन्द्रमा को ग्रस लेता है; सँजोग=सयोग; वशिष्ट=एक ऋषिजो राम के गुरू थे; रचि पचि=विचार कर, लगन=शुभ महूर्त; तात=पिता; बपु=शरीर; कोटि तैंतीसौं=तेंतीसों करोड़ देवता; मृत्युहिं=काल को; द्रुपद-सुता=द्रोपदी; हरीचन्द=सूर्यवंशी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र; नीच=निम्न जाति का डोम जिसके यहाँ राजा हरिश्चन्द्र ने दासत्व स्वीकार किया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



संकेत—सूर इस पद में यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि होनी होकर ही रहती है अतः उसके बारे में चिंतित रहना व्यर्थ है।

अर्थ—होनी होकर रहती है उसे कोई टाल नहीं सकता है, (कबीर ने भी लिखा है—'करम गति टारी नाहिं टरी') कहाँ वह राहु और कहाँ सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा के सामने राहु जो अति तुच्छ है वही संयोग पड़ने पर दोनों को ग्रस लेता है। मुनि वशिष्ट जो महान् पंडित और विद्वान थे और उन्होंने राम के राज्याभिषेक की लग्न बहुत हित चित से शोधकर निकाली थी, परन्तु होनी के वश में राज्याभिषेक तो हुआ नहीं, बल्कि राजा दशरथ की मृत्यु हुई; सीता हरण हुआ और राम बनवासी के रूप में अनेक विपत्तियाँ उठाते फिरे। रावण जिसने तेतीस करोड़ देवताओं को पराजित कर दिया था और जो तीनों लोकों पर शासन करता था, जिसने काल को बाँध कर कुए में डाल दिया था, वह भी होनी के वशीभूत हो मृत्यु को प्राप्त हुआ। अर्जुन जिसके कृष्ण स्वयं सारथी थे, उसे भी बनवास मिला। द्रौपदी जिसके पाँच पांडव रक्षक थे, उसका भरी सभा में दुःशासन ने चीर हरण किया! हरिश्चन्द्र से अधिक और कौन संसार में दानी हो सकता है परन्तु उन्हें भी नीच डोम के घर अपने जीवन के दिन भरने पड़े। होनी साथ साथ फिरती है यदि कोई घर छोड़कर अनेक देशों में चला जावे तो भी यह साथ नहीं छोड़ती। होनी के वश में तो तीनों लोक हैं इस होनी के चक्कर में पड़ देवता तक मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। सूरदास कहते हैं कि विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया है, वह तो होकर ही रहेगा अतः भविष्य की चिन्ता करके, ऐसा कौन है, जो मरेगा। अर्थात भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है।

वैराग्य—

(५) द्वै में एकौ ............... सकल मई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



शब्दार्थ—गृह सुख=लौकिक सुख; बिहाइ=व्यतीत; आनि-ठई=हो गई; अविगत=अज्ञात; बई=देव; तिय=स्त्री; खई=क्षय; नाग; दावानल=दावानल; बयारि बई=हवा चली; टेव=आदत, बेर=समय, बेला; सेये=सेवा की।

संकेत—सूर ने वैराग्यमय उस अवस्था का वर्णन किया जब मनुष्य सांसारिक विषय भोगों में तृप्ति न पाकर पश्चाताप रता है कि समस्त जीवन व्यर्थ ही गवाँ दिया !

अर्थ—दोनों में से एक भी काम तो नहीं हुआ ! जीवन व्यर्थ ही बीत गया, इसमें न तो भगवान का भजन किया और न लौकिक सुख ही प्राप्त किया ! मन में तो कुछ और ही ठान रखा था और हो कुछ और ही गया (मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है, Man Proposes God disposes) जो कुछ विधाता करता है वह समझ में नहीं आता उसकी गति अज्ञात ही रहती है। पुत्र प्रेम स्त्री और समस्त कुटुम्ब के संसर्ग में यह जीवन अनुदिन नष्ट हो जाता है। भगवान के चरण नख रूपी चन्द्रमा से विमुख होकर यह मन रूपी चकोर विषय भोगों की अंगार मयी किरणों का भक्षण करता रहता है। विषय विकारों की दावाग्नि की जल उठी है और मोह की वायु चल कर उसे और भी अधिक प्रज्वलित करती है—भटकते भटकते मैंने बहुत दुख उठाया है परंतु आज भी मैं भटक रहा हूं मेरी भटकने की आदत नहीं गई। अब पछताने से क्या होता है काफी समय जीवन का व्यतीत हो चुका है। सूरदास कहते हैं कि सम्पूर्ण सुख से युक्त भगवान की मैंने सेवा नहीं की यही महान् दुख है।

विशेष—सूर ने अन्य स्थान पर भी यही विचार व्यक्त किया है—

धोखे ही धोखे उहकायो।
समुझि न परी विषय इस गीध्यो हरि हीरा घर माँझ गँवायो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मन प्रबोध—

(६) जा दिन मन ............ ..सु जनम गवँ है।

शब्दार्थ—तरुवर=वृक्ष; कृमि=कीड़ा; विष्टा=मल; नीर =पानी; आब=इज्जत; घिनै हैं=घृणा करेंगे; सवारे=जल्दी; काढ़ौ=निकालो; प्रतिपाल्यौ=पालन पोषण किया; खोपरी बाँस दै- =शरीर की जब दाह क्रिया हो जाती है तब बहुधा शिर की हड्डियाँ ज्यों की त्यों जुड़ी रह जाती हैं तब उन्हें बाँस से फोड़कर अलग अलग कर दिया जाता है; मूढ़=मूर्ख; जन=भक्त;

संकेत—यहाँ सूरदास ने मन को समझाने का प्रयत्न किया है। संसार से विराग उत्पन्न करने कर्म से सन्यास लेने की प्रेरणा दो मुख्य उपायों से की जाती है। एक मृत्यु समय का क्लेशप्रद दृश्य दिखाकर दूसरा शरीर के वीभत्स रूप का परिचय देकर। यहां पर भी सूर इसी प्रकार से चेतावनी देते हैं।

अर्थ जिस दिन मन रूपी पक्षी उड़कर चला जायगा उसी दिन शरीर रूपी वृक्ष के समस्त पत्ते झड़ जायेंगे अर्थात् जीवात्मा के रहते ही शरीर की शोभा हैं जिस दिन यह जीवात्मा शरीर छोड़ देगा उसी इसकी समस्त शोभा जाती रहे गी। अतः हे मानव ! इस शरीर पर गर्व नही करना चाहिये, एक दिन ऐसा आवेगा जब इसे स्यार, कौवे और गिद्ध नोच नोच कर खायेंगे। और यह शरीर तीन रूपों में—या तो यह छोटे छोटे कीड़ों के रूप में, या इसे शव-भक्षी जानवरों के मल के रूपमें या धूलके रूप में परिवर्तित हो जायगा। उस समय इसकी यह प्रतिष्ठा, यह शोभा कहां रहेगी और इसका यह रंग रूप कहाँ दिखाई देगा। उस समय तो वही इसे देखकर घृणा करेंगे जिन से आज यह प्रेम करता है। मरने पर घर के ही प्रिय जन कहें गे—इसे शीघ्र घर से निकालो अन्यथा यह भूत बन कर घर को ही खा जाय गा। जिन पुत्रों के लिये यह शरीर देवी देवताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की मनौती करता है और जिन का अति प्रेम से पालन पोषण करता है वे ही खोपड़ी पर बांस का वार कर सिर को फोड़कर बखेर देंगे। अतः हे मूर्ख मनुष्य ! सत्संग कर, संतो से ही कुछ प्राप्त हो सकता है ! जो जीव मानव शरीर धारण करके भी हरि-भक्त नहीं बनता उसे यम की मार खानी पड़ती है अर्थात् नरक की यंत्रणायें सहनी पड़ती हैं। सूरदास कहते है कि बिना भगवान का भजन किये इस सुन्दर जन्म को क्यों व्यर्थ गंवाता है।

आत्म ज्ञान—

(७)आपुनियौ आपुन............... ...गुर खायौ।

शब्दार्थ—आपुनियौ=अपनापन; आत्मज्ञान; शब्द=संतों के बचन; कुरंग=हिरन; अपने ही तन छायो=अपने ही शरीर पर मुग्ध हो जाता है; नसायौ=नष्ट हो गया; हिरायौ=खो गया।

संकेत—सूर ने इस पद में अपने हृदय में ही आत्मतत्व अथवा ब्रह्म की सत्ता के प्रतिष्ठित होने की बात कही है। परन्तु इसका भ्रम के कारण बोध नहीं होता अतः भ्रम को त्याग कर आत्म साक्षात्कार करने की आवश्यकता है।

अर्थ—आत्म ज्ञान मुझे अपने आप में ही प्राप्त हुआ। सद्गुरु आत्मज्ञान का रहस्य समझाया यथा संत पुरुषों के वचनों से धीरे धीरे स्वयं हृदय प्रकाशित होगया। जैसे कस्तूरी हरिण की नाभि में रहती है परन्तु वह भ्रम वश उसे वाहर खोजता हैं लेकिन जब चैतन्य हो कर देखता है तो उसे अपने अन्दर ही जान कर स्वयं अपनी ही शरीर पर मुग्ध होजाता है, इसी प्रकार आज तक तत्व की खोजमे मैं भी बाहर भटक रहा था, परन्तु ज्ञान प्राप्त होने पर अब मुझे अपने अन्दर ही आनन्द की अनुभूति हो रही है। अपने गले का मणिमय आभूषण कहीं गिर गया—ऐसा राजकुमारी को भ्रम हुआ परन्तु जब अन्य सखियों ने उसका पता बता दिया तो उसके शरीर का सब संताप दूर होगया इसी प्रकार स्वप्न में किसी स्त्री को यह भ्रम हुआ कि उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


Sarth Narain Dub

बालक कहीं खोगया है परन्तु जागने पर उसने उसे वहीं पर देखा जहां वह था, न उसका बालक पहले कहीं गया था और न फिर कहीं से आया ही था। सूरदास कहते हैं कि समझ की यह बात है जो इसे जान लेता है वह मन ही मन आनन्दित होता है परन्तु इस आनन्द की महिमा का वर्णन नहीं किया जासकता ! यह गूंगे के गुड़ के समान है अर्थात् जिस प्रकार गूँगा गुड़ के रसास्वादन का आनन्द तो उठाता है परन्तु उसको प्रगट नहीं कर सकता, इसी प्रकार आत्मसाक्षात्कार होने पर जो आनन्दानुभूति होती है, वह भी अवर्णनीय हैं।

**विशेष**—उपर्युक्त पद में कस्तूरी, मणि भूषण, और बालक आत्मा के प्रतीक है और हरिण, राजकुमारी तथा स्त्री जीव के। जीव भ्रम वश आत्मास्वरूप की खोज मे भटकता है जब कि वह उसी के पास है —कबीर ने भी कहा है—

१. कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढे वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं दुनिया देखै नाहिं
२. मोको कहां ढूंडे बन्दे मैं तो तेरे पास में।

(८) कर पग गहि.... ...... ... .......पग पेलत।

**शब्दार्थ** – कर=हाथ; गहि=पकड़ कर; मेलत=डालते हैं; पौढ़े=लेटे; आने रग खेलति=मनमानी क्रीड़ा करते हैं; विधि=ब्रह्मा; बट=बट वृक्ष; बिडार चले= तितर बितर हो गये; दिगपति=दिक्पाल दिशाओं के स्वामी, दिग=दिशा दंतीनि=हाथी; संकेलत=एकत्रित- करते हैं; भीत=डर; भुव=पृथ्वी; सेष=शेष नाग; पेलत=फेकता है; सकट=सारा।

**संकेत**—यहाँ पर सूर ने बाल लीला का वर्णन करते हुए कृष्ण के अलौकिक स्वरूप का चित्रण किया है। ऐसे वर्णन में बाल लीला की झलक तो कम मिलती है, अलौकिक आशय ही अधिक प्रगट होता है। यहां पर कृष्ण को चरण के अंगूठे को मुख में लेकर चूसते देखकर सूर एक पौराणिक अन्तर्कथा का आश्रय लेकर समस्त सृष्टि को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रकंपमान् कर देते हैं। अन्तरकथा इस प्रकार है—

ऋषि मार्कण्डेय के तप से प्रसन्न होकर नर-नारायण स्वयं पधारे तो ऋषि ने वरदान मांगा—' मैं आप की माया देखना चाहता हूँ तथास्तु कह कर भगवान चले गये। तत्पश्चात् एक दिन सांयकाल का समय था। मुनि मार्कण्डेय नदी तट पर सन्ध्या कर रहे थे कि सहसा आँधी आई और समुद्र चारों ओर से उमड़ता दिखाई पड़ा पृथ्वी नक्षत्रादि सब जल मग्न हो गये। ऋषि मार्कण्डेय भी व्यथित होते सहस्त्रों वर्षों तक उस जल में तैरते रहे। सहसा महासागर में उन्हें एक वट वृक्ष दीख पड़ा उस वृक्ष के एक पत्ते पर उन्होने देखा कि एक ज्योतिर्मय नील कमल शिशु अपने चरण के अँगूठे को मुख में लेकर चूस रहा था! मुनि जैसे ही उस बालक के पास गये; वे श्वास के साथ विवश हो उसकी नासिका के छिद्र में खिच गये। इस शिशु के पेट में उन्होंने पूरा ब्रह्माड देखा और वहाँ वे सहस्त्रों युगों तक घूमते रहे और पुन: शिशु के श्वास से निकल कर सागर में गिर पड़े और फिर वट वृक्ष, शिशु; सागर सब कुछ तिरोहित हो गया। वे उसी नदी तट पर थे। उन्होंने भगवान की माया का दर्शन कर लिया था।

सूर ने प्रस्तुत पद में भगवान् कृष्ण को पालने में झूलते समय जब अपना पैर का अगूंठा मुह में देते देखा, तो उन्होंने उसी प्रलय काल की कल्पना में सबको भयभीत दिखाया है जिसके शिकार मार्कण्डेय मुनि हुए थे।

अर्थ—श्री कृष्ण हाथ से पकड़े हुऐ अपने पैर का अगूठा मुंह में दे रहे हैं और अकेले पालने में लेटे हुए हर्ष मग्न मन मानी क्रीड़ाओं में लीन हैं! उन्हें मुह में पैर का अगूठा देते देख सब प्रलय काल की कल्पना करते हैं स्वयं शिव और ब्रह्मा सोच मग्न दिखाई देते हैं। सागर के बढ़ते हुए जल को वट वृक्ष भी सहन कर रहा है। प्रलय समझ कर बादल भी तितर बितर हो गये और दिकपाल दिशाओं के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


हाथिओं को दिशाओं की रक्षा के लिये एकत्रित करते हैं। मार्कण्डेय मुनि स्वयं इस दृश्य को देख कर भयभीत हो गया पृथ्वी कांपने लगी और शेष नाग जिस पर यह पृथ्वी टिकी है वह भी अपने हजारों फनों को शंकित होकर बार बार फेंकता हैं। परन्तु ब्रजवासी इस बात से बिल्कुल परिचित नहीं वे तो समझते हैं कि कृष्ण अपने पैर से उनकी जीवन रूपी गाड़ी को ठेल रहे हैं अर्थात् कृष्ण अपनी लीलाओं से उनका जीवन सफल कर रहे हैं।

गौ चारण—

(९) आजु मैं.......................... अपनी टेक

शब्दार्थ—कर=हाथ; जनि=मत, नहीं; बारे=बालक; भीति=भित्ति; हैसियत; ह्वै है राति=रात्रि हो जायगी; घामहि=धूप मांझ=में; टेक=आग्रह

संकेत:—अत्यन्त छोटे होने पर भी कृष्ण का गो चरण के लिये मचल जाना—इस पद का मार्मिक आधार है। माता अपने इतने छोटे शिशु को कैसे वन में भेज दे? परन्तु टेक बालक की ही रही।

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं—आज मैं गाय चराने वन में जाऊँगा! वृन्दा विपिन में लगे हुए विभिन्न प्रकार के फल मैं स्वय अपने हाथों से खाऊँगा! माता कहतीं है—हे बाल कृष्ण! ऐसी बात मत कहो प्रथम अपनी अवस्था तो देखो। प्रातःकाल ही ग्वाल गाय चराने के लिए ले जाते हैं और सन्ध्या समय लौटकर आते है। वहाँ की धूप में धीरे धीरे चलने से तुम्हारा कमलवत् कोमल शरीर कुम्हला जायेगा। तब बाल कृष्ण माता की सौगन्ध खाते हुए कहते हैं, माँ मुझे धूप नहीं लगती और मुझे नेक भी भूक नहीं है! सूरदास कहते हैं कि कृष्ण माता का कहना नहीं मानते और अपनी हठ पकड़े रहते हैं!

मुरली माधुरी—

(१०) जब हरि मुरली.........................सुखहि लहत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**शब्दार्थ**—थिर=स्थिर; चर चलने वाले; खग=पक्षी; मृग=जूथ=हरिणो के समूह; छरत=छलती है; सुरभी=गायें; विथकित=चकित हो कर चुप होजाना; शिथिल होना; तृन=घास; सुक=शुक देव मुनि; सनकादि=सनक आदि; लहत= प्राप्त करते हैं

**संकेत**— सूर ने कृष्ण की वंशी की मोहिनी शक्ति का इस पद में गान किया है। इस प्रसंग को लेकर सूर ने अनेक पदों की रचना की है।

**अर्थ**—अपने अधरों पर रख कर जब श्री कृष्ण मुरली बजाते हैं। उस समय चलने वाले उस की ध्वनी से स्तब्ध होकर जड़ हो गये। जड़ पदार्थों में चेतना की स्फूर्ति हो गई अतः वे अचल से चल बन गये। पवन स्वयं शिथिल पड़ गई और यमुना का जल बहना बन्द हो कर शान्त होगया। मुरली नाद ने पक्षियों को मोहित कर लिया, हरिणों के समूह को उनके तन बदन की सुधि भुलादी। मुरली वादन के समय कृष्ण की काम देव जैसी शोभा देखने मात्र से ही छल लेती है। मुरली की ध्वनि सुन कर पशु भी मोहित हो गये हैं गायें चकित होकर शान्त रह गई है और अपने दांतों में घास के तिनके पकड़े ही रह जाती हैं। शुक देव सनकादि समस्त मुनि इस प्रकार विमोहित हैं कि एक पल के लिये भी ध्यान नही लगा पाते। सूरदास जी कहते हैं कि वे महान सौभाग्य शाली है जो इस मुरली सुनने का आनन्द को प्राप्त करते हैं।

**विशेष**—सनक ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में एक हैं।

**रूप वर्णन**

(११) देखो भाई.........................पचि हारि।

**शब्दार्थ**—नागर=चतुर; अंबुनिधि=समुद्र; कटि–पट पति =कमर से लहराता पीताम्बर; चितवत=दृष्टि पात करते हुए; रूचि=शोभा; मकरा कृत=मछली के आकार के; सरि=समान; सुभग भुजंग=सुन्दर सर्प; मुक्ता माल=मोतियों की माला; द्वै=दो;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सुरसरि=गंगा; खचित=जड़े हुए; स्रमकन-पसीने की बूदें; जल निधि=समुद्र, श्री=लक्ष्मी; प्रेम पचि हारि=प्रेम के कारण और भी शिथिल होकर बैठी रही।

संकेत—इस पद में सूर दास ने श्री कृष्ण को सुन्दरता का सागर कह कर सुन्दर रूपक बांधा है।

अर्थ—हे भाई ! सौन्दर्य के सागर श्री कृष्ण को देखो। बुद्धि, ज्ञान और बल से भी इस सुन्द्रता के सागर का पार नहीं पाया जा सकता और चतुर मन पूर्णतः इस में निमग्न होजाता है। कृष्ण का श्याम शरीर नील वर्ण का अथाह सागर है जिस में पीत पट की तरंग उठ रही है अर्थात श्री कृष्ण जी की कमर पर शोभित पीताम्बर जब लहराता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सुन्दरता के सागर में तरंगे उठ रही हों। जब वे चलते हैं उस समय दृष्टि पात करने से शोभा और भी वढ़ जाती है, मानों कि उस सुन्दरता के सागर में भंवर उत्पन्न हो गई हों क्यों कि चलने पर शरीर हिलता डुलता है। मीन वत नेत्र और मछली के आकार के उनके कुंडल है और भुजायें सुन्दर सर्प के समान हैं। कृष्ण चन्द्र मोतियों की जो दुलड़ी माला पहने हैं वह मानो दो गंगायें एक साथ ही उस सुन्दरता के सागर से मिल रही हों। स्वर्ण के मणिजटित आभूषण और मुख पर पसीने की बूंदे अत्यन्त सुख दायक हैं जो ऐसे लगते हैं जैसे समुद्र मंथन से चन्द्रमा; लक्ष्मी और सुधा निकल कर एक ही में एकत्र हो गये हों अर्थात् श्री कृष्ण का मुख चन्द्र वत्, स्रम सीकर सुधावत् और मणि जटित स्वर्ण आभूषण लक्ष्मीवत् हैं। श्री कृष्ण के स्वरूप को देख कर समस्त गोपियां विचार विचार कर रह जाती हैं परन्तु फिर भी वे उस शोभा के सागर को तैर नहीं सकी अर्थात उनकी सम्पूर्ण छवि को अपने हृदयों में न उतार सकीं तथा प्रेम के कारण और भी शिथिल होकर बैठ रही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


**नेत्र अनुराग—**

(१२)अंखियां हरि........................ पतियाति ।

शब्दार्थ—मृदु=मीठी; इनि=इनको; भांति=व्यवहार; ढरि=ढर कर; आसक्त होकर; अनत=अन्य; पति याति=विशवास करना ।

संकेत—सूर ने इस पद में विरहिणी राधिका की मानसिक दशा का चित्रण किया है। दुख तो यह है कि अपनी आंखें भी अब अपनी नहीं रहीं।

अर्थ—राधा कहती हैं—ये आखें भी हरि के हाथों बिक गई हैं। यह सुन कर और भी पश्चाताप होता है कि ये अमूल्य आखें केवल उनकी मृदुल मुस्कान में बिक गईं। अब तो इनका व्यवहार ही कुछ और प्रकार का हो गया है अब वे मेरे वस में कैसे रह सकती हैं। अब तो मेरी आंखें मुझे देखने से लज्जा सी करती हैं और कृष्ण के साथ एक पंक्ति मे जा बैठती है अर्थात् कृष्ण के रँग में पूर्णतः रगी हुई हैं और उनके साथ ही लगीं रहती हैं और मेरे वश मे बिलकुल नही हैं। मेरे से उन का मिलना स्वप्नवत् है, जिस प्रकार स्वप्न में आई गई वस्तु का पूर्णतः ज्ञान नही होता इसी प्रकार उनकी गति विधि के बारे में मैं पूर्णतः अनभिज्ञ हूं। व्यंजना द्वारा इस का अर्थ यह भी हो सकता है—ये आंखें प्रिय की उपस्थिति या अनुपस्थिति में सदैव उनके साथ लगी रहती हैं अतः उनके पास रहने की चर्चा स्वप्न मात्र है। सूरदास कहते हैं—ये आंखें नन्द नन्दन पर आसक्त हो गई हैं अब इन्हे अन्य किसी का विश्वास नहीं होता।

टिप्पणी—आसक्ति पूर्ण नेत्रों पर अधिकार होना कठिन है, रसखानि भी इसके समर्थक हैं—

मोहन छवि'रसखान' लखि अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचें आवत धनुष से, छूटे शर से जाहिं॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



गोपी विरह—

(१३) देखियत कालिंदी·························भई हमारी।

शब्दार्थ—कालिन्दी=यमुना (यमुना कलिन्द पर्वत से निकली हैं अतः कालिन्दी या कलिन्दजा कहलाती हैं); भई विरह-जुर जारी =विरह के ज्वर में जल गई है विरह ज्वर से संतापित है। गिर-पर्यंक=परवत रूपी पलंग; धरनि=पृथ्वी; तरंग तलफ तन भारी= शरीर में तरंग रुपी भारी तड़पन हो रही है; बारू=बालू; उपचार चूर=उपचार अथवा इलाज के लिये चूर्ण; प्रस्वेद=पसीना; पनारी =धारा; विगलित=शिथिल, बिखरे हुए; कच=केश,बाल; कुस कांस =कुश और कांस नामक घास; काजल सारी=काली साड़ी; पंक= कीचड़; अनुहारी=समान अवस्था;

संकेत—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर व्रज में गोपियां अति विरह व्याकुल रहती हैं। व्रज में अपनी विरह दशा का वर्णन करती हुई गोपियां उपर्युक्त पद में मथुरा जाने वाले किसी पथिक को सम्बोधित करती हुई कहती हैं। इस पद में गोपियां यमुना को भी कृष्ण के विरह में व्यथित औ· ज्वर ग्रस्त बताती हैं तथा अपनी उससे तुलना करती हैं।

अर्थ—यमुना अत्यन्त काली दिखाई दे रही हैं। हे पथिक तुम श्री कृष्ण से जाकर कह देना कि वह उनके विरह ज्वर में जल रही हैं अर्थात् विरह ज्वर से अत्यन्त संतापित हैं: हे पथिक, देखो यमुना में उठती तरगें उस के ज्वर ग्रस्त शरीर की भारी तड़पन को व्यक्त करती हैं और इस तड़पन में वह पर्वत रूपी पलंग से गिर कर पृथ्वी में धस गई हैं। किनारे पर पड़ी हुई बालू ही मानो उस विरहिणी का उपचार चूर्ण है और जल पूर्ण जो धारा बह रही है वह मानो उसके पसीने की पनारी है। तट पर उगे हुए कुश और कांस ही मानो उसके बिखरे हुये बाल हैं और कीचड़ ही इसकी काली साड़ी है। भौंरें जो चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं वे मानो उस दीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दुखी यमुना की दिसि दिसि विचलित गति के परिचायक हैं। दिन रात चकई जो पिय पिय की पुकार लगाती हैं वह मानो यमुना की सी विरहावस्था में दुखी है अर्थात् चकवी की सी विरहावस्था यमुना की है। आगे गोपियां कहती हैं, हे प्रभू! जो यमुना की गति है वही हमारी भी गति हो रही है।

विशेष—उपर्युक्त पद में सूरदास ने यमुना को विरहिणी का रूपक देकर गोपियों की विरहावस्था का अति कुशलता के साथ चित्रण किया है। यहां साँग रूपक अलंकार है।

(१४) सखी री चातक ........... ...पराए आवत।

शब्दार्थ—चातक=एक पक्षी, जो दिन रात पीऊ पीऊ की पुकार लगाता है और केवल स्वांति नक्षत्र का जल दान करता है, इसे पपीहा भी कहते हैं; सुकंठ=सुन्दर अर्थात् मधुर कंठ; दाह=अग्नि विरहाग्नि; तारू=तालू; पराये=दूसरे।

संकेत—विरहिणी राधा अपनी सखियों से कहती हैं कि इस विरहावस्था में भी उनके जीने का कारण पपीहा है, जो अपने मधुर कंठ से 'पी पी' की पुकार लगाकर अमृत रस पिलाता रहता है।

अर्थ—राधा कहती है—हे सखी। चातक ही मुझे इस विरहावस्था में जीवन दान दे रहा है। जिस प्रकार मैं रात भर 'पीय' 'पीय' रटती रहती हूँ उसी प्रकार यह भी फिर पीऊ पीऊ की रट लगाता है। जिस समय प्रियतम की वियोगाग्नि में तप्त होकर कंठ सूख जाता है और यह जिह्वा तालू से भी नहीं लग पाती, उस समय यह अपने मधुर कंठ से पीऊ पीऊ की पुकार लगाता है और इस प्रकार स्वयं तो अमृत रस का पान करता ही है परन्तु बार बार बोल कर मुझे भी अमृत रस का पान कराता है। यदि मुझ विरहिणी की यह चातक इस प्रकार सहायता न करता तो यह प्राण महान् कष्ट पाते। सूरदास कहते हैं जगत में उसी का जीवन सफल है जो दुख में दूसरों के काम आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


कृष्ण वचन—

(१५) ऊधो इतनी·················तबहीहियौ सिराई

शब्दार्थ—जनि=मत; धाइ=धात्री; विलग मान्यौं=दुख माना; पय=दूध; हियौ=हृदय; सिराइ=शीतल होगा; धौरी गाइ=श्वेत गाय; धुमरि=धुएं के रंग की, मटमैली।

संकेत—ऊधौ के हाथ कृष्ण माता यशोदा और नन्द बाबा को संदेश भेजते हुये, यहां पर कहते हैं। यहां पर उन्होने यशोदा को धैर्य्य बधाया है। पिता नंद को कुछ काम सहेजा है तथा मथुरा के वैभव की अपेक्षा व्रजवासी लोगों से भेंट करना अधिक सुखदायक बताया है। यह पद वस्तुतः भक्तों की सांत्वना का आधार है।

अर्थ—श्री कृष्ण कहते हैं—हे उद्धव ! तुम इतना जाकर कह देना, कि हम दोनों भाई (बल राम और कृष्ण) शीघ्र आवेंगे, माता व्यर्थ व्याकुल न होवें। माता यशोदा से यह भी कहना कि उन्होंने जो अपने को धाय कहला कर भेजा था उस का हमने बहुत बुरा माना है, क्या हम उनके उन गुणों को भूल सकते हैं जब उन्होंने हमें दूध पिला पिला कर बड़ा किया था (माता यशोदा ने पहले माता देवकी के नाम यह सदेश भेजा था—"संदेसों देवकी सों काहियौ। हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियौं"। इस तरह यशोदा ने जो अपने को'धाय' कहलाकर भेजा था—यह कृष्ण को अति बुरा लगा क्यों कि वे यशोदा को मा से भी बढ़ कर मानते थे) और हे ऊधौ। जब तुम नन्द बाबा सें मिलो तो उन से समझा कर कहना कि जब तक मै नहीं आँऊ दे धौरी और धमरी गायों का ध्यान रखें जिस से उन्हें दुख न हो। और कहना कि यद्यपि यहां अनेक प्रकार के सुख हैं परन्तु फिर भी बिना व्रज वासियों के यहां नहीं रहा जाता। जब तक मैं व्रज वासियों को नही देख लूँगा तब तक मेरा हृदय शीतल नही होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उद्धव गोपी संवाद—

(१६) सुनौ गोपी ..........................विनु पानी

शब्दार्थ—अन्तरगति=हृदय; विरह तरौ=विरह से तर जाओगी; दुसह=असह्य; बूड़ति=डूबति; घट=शरीर;

संकेत—उद्धव व्रज में आकर गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना का संदेश देते हैं। उद्धव और गोपियों का यह संवाद 'भ्रमर गीत' के नाम से प्रसिद्ध है! गोपियो को उद्धव की वातें बिल्कुल नही रूचतीं।

अर्थ—उद्धव जी कहते हैं—"गोपियों तुम कृष्ण का संदेश सुनो! उनका यह उपदेश है कि मेरी याद छोड़ कर तुम समाधि लगाकर हृदय में उस ब्रह्म का ध्यान करो जो अज्ञात, अमर और पूर्ण है तथा घट घट में समाया हुआ है! वेद पुराण भी कहते है कि विना तत्व ज्ञान प्राप्त किये संसार से मुक्ती नही मिल सकती। इस लिये तत्व ज्ञानी वनने के लिये सगुण रूप को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म की एकाग्र चित्त और मन से आराधना करो। इस साधन के द्वारा तुम विरह से तर जाओगी अर्थात् तुम्हारी दुखदायक विरहावस्था समाप्त हो जाय गी और ब्रह्म स्वयं तुम्हारे समक्ष प्रकट हो जायगा।" श्री कृष्ण का यह असह्य सदेश सुनकर गोपियां व्याकुल हो उठीं। सूरदास कहते हैं कि उस समय उनके विरह वर्णन की क्या चलती है, वे तो ऐसी होगईं मानो विना जल के ही डूब गई हों।

(१७) ऊधौ। तुम व्रज.................दूसरो भावै।

शब्दार्थ—जोग-कथा=योग साधन की कहानी; कथा बिस्तारौ=कथा कहौ; माधौं=कृष्ण; केतिक बीच=कितना अन्तर परमारथ=ब्रह्म ज्ञान; किधौं=क्या; परवीन=प्रवीण; चतुर; अवलंब=आश्रय; फेन=जल में उठने वाले झाग; चितवनि=दृष्टि; कमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri


नयन=कृष्ण; निरगुन=निर्गुण ब्रह्म; सो भजन बहाऊँ=उस गीत को हम बहा देंगी उस गीत को हम नहीं सुनेंगी।

**संकेत**—इस पद में गोपियां अपनी सगुण के प्रति अटल भक्ति का परिचय देती हैं और उद्धव की सहानु भूति को, यह कहकर कि 'हे उद्धव तुम ही व्रज की दशा देख कर विचार करो" जाग्रत करती हैं।

**अर्थ**—गोपियां कहती हैं—ऊधौ ! तुम ही व्रज की दशा पर वचार करो, तत्पश्चात् यह अपनी योग कहानी और सिद्धि का वर्णन करना, और उधौ अपने हृदय में तनिक विचार कर तो देखो कि श्री कृष्ण ने तुम्हें किस लिये यहां भेजा है ; क्या तुम नहीं जानते कि ब्रह्म ज्ञान और विरह में कितना अन्तर है ? अर्थात गोपियां इस प्रश्न के द्वारा उद्धव को यह बताना चहती हैं कि (विरह-व्यथा) में शान्ति ब्रह्म ज्ञान से नहीं मिल सकती क्यों कि इन दोनों का कोई साम्य नहीं। पुनः गोपियाँ कहती हैं—हे उधौ तुम तो अति प्रवीण और कुशल हो और संत पुरुषो के संपर्क में रहते हो परन्तु फिर भी तुम बार बार यह कैसे कहते हो कि जल में डूबने वाला फेन का आश्रय पा कर बच सकता है अर्थात् हम जो विरह समुद्र में डूब रही हैं वे तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म रूपी फेन के आश्रय से कैसे बच सकती हैं। हम श्री कृष्ण की मुसकान और हृदय ग्राही दृष्टि को अपने हृदय से कैसे बिसार सकती हैं तुम्हारे योग की युक्तियां और मुक्ति रूपी परम सम्पत्ति को तो हम अपने इष्ट देव की एक मुरली पर ही न्यौछावर कर सकती हैं। जिन हृदयों में कमल-नयन कृष्ण बसे हुए हैं वहां तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म कैसे समा सकता है। हम तो उस गीत को नहीं सुनेंगी जिस में हमारे कृष्ण की भावना न हो।

(१८) ऊधौ ! हमहि.................व्रज अइयै !

**शब्दार्थ**—जोग=योग; नेम=नियम; कुसुम भाई गूंदे=पुष्पों से सुसज्जित कर गूंथा था; आपुन आप लखैयै=अपने आप अपने को प्रेम मगन देख कर; नवौ निधि=नौ निधियों के स्वामी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**संकेत**—इस पद में गोपियां उद्धव से उस व्रत नियम साधन की बात पूछती हैं जिससे श्री कृष्ण मिल जावें।

**अर्थ**—गोपियाँ कहती हैं—हे ऊधौ हमें योग साधना मत सिखाओ। हम को तो उन नियमों और व्रतों पर उपदेश दीजिये जिनसे हमें श्री कृष्ण मिल जावें। इस मुक्ति के उपदेश को लेकर तो तुम अपने घर ही बैठे रहो क्यो कि निर्गुण भक्ति की बात सुन कर हमें अत्यन्त दुख होता है। अपने शीश मंडित जिन केशों को हमने पुष्पों से सुसज्जित कर गूथा था उन पर अब हम तुम्हारे योग साधना के अनुसार धूल कैसे चढ़ा सकती हैं? अर्थात यह हमारे लिये असंभव है। इस प्रकार कहती हुई गोपियां स्वयं एक दूसरे को देख कर तथा श्री कृष्ण के प्रेम में मग्न जान कर हर्पित ही गई। और श्री कृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहने लगी—हे नव निधियों के स्वामी! फिर इस व्रज की ओर अब कब आओगे?

## आलोचनात्मक प्रश्न—

**प्रश्न. १** सूरदास जिस सम्प्रदाय में दीक्षित थे उस की विशेषतायें लिखिये।

## उत्तर

सूर दास जी वल्लभ समप्रदाय में दीक्षित थे। ये वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे—

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायौ॥

अतः यह स्पष्ट है सूर दास जी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और इसके सिद्धान्तों से ही अधिकाँश में प्रभावित थे। वल्लभ सम्प्रदाय की विशेपतायें निम्नाँकित हैं :—

१ वल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुमार ब्रह्म में सत् चित और आनन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ब्रह्मा की पत्नी शारदा; सची=इन्द्र की पत्नी; सरूपताई=सुन्दरता; बड़ाई=प्रशंसा; निकाई=शोभा, सुन्दरता।

संकेत—सीता के सौन्दर्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है।

अर्थ—शिव पार्वती को, ब्रह्मा शारदा को और इन्द्र अहिल्या को देखकर उनकी प्रशंसा नहीं करते (क्योंकि सीता के रूप के समक्ष सबका रूप फीका है) सीता के स्वरूप को देख शिव अपनी पत्नी पार्वती, ब्रह्मा अपनी पत्नी शारदा और इन्द्र अपनी पत्नी सची के सौन्दर्य की सुधि भूल गये और अपनी ऋद्धियां तथा सिद्धियां एवं समाधि को भी सुधि न रही अर्थात सब बिसार दी। सेनापति कहते हैं कि यदि राम एक नारी व्रत के धारण करने वाले हैं सो इसमें राम के धैर्य की कुछ बड़ाई नहीं है। जिस सीता के रूप पर अज्ञानी देवताओं ने अपनी नारियां न्यौछावर करदीं —ऐसी अपार महिमा सीता रानी के सौन्दर्य की है अर्थात सीता के महान सौन्दर्य को देखकर देवता भी अपना ज्ञान खो बैठे ऐसा अपार सीता का लावण्य है।

अंगद की टेक—

(१०) धरयौ है........ ...................रोपि कै।

शब्दार्थ—दससीश=रावण; ईस=आशीर्वाद; गरब सब लोपि के=अहंभाव को भुलाकर अर्थात सरल स्वभाव से; चकचूर=चकनाचूर; गुमान=गर्व; ओपि=चमक; सुभटाई=वीरता, तरजि डराकर, भयभीत कर; रोपि कै=जमा कर।

संकेत—श्री राम के दूत रूप में अंगद की रावण के दरवार में उपस्थिति का चित्रण कवि ने किया है।

अर्थ—लंका के राजा के शीश पर भी अंगद ने अपना पैर जमा दिया, भाव यह है कि रावण की भरी सभा में सबको चुनौती देते हुये अंगद ने अपना पैर रोप दिया। भगवान राम के आशीर्वाद को ध्यान में रख और अहंभाव को भुलाकर पैर रोपने के पश्चात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अगद ने कहा—राजा राम की दुहाई है अर्थात् मै राजा राम की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मै तेरे लका के दुर्ग को तोड़ दूंगा और अपने क्रोध से ही लंका को चकना चूर या चूर चूर कर दूंगा। जिसे अपनी भुजाओं के बल पर गर्व हो, वह आकर मेरे पैर को उठावें और अपनी बीरता को अच्छी तरह चमका कर या प्रकाशित करके, वीरता की ज्योति को और भी ज्योतित करें ये शब्द महान बलवान बलि पुत्र अंगद ने अपना पैर रावण की सभा में जमाकर बैरियों को भयभीत करते हुये, अपनी भृजाओं को ठोकते हुये, घोर गर्जन करते हुये कहे।

युद्ध में राम की मुद्रा—

(११) काढ़त निषग ........... .. ..........देखियत है।

शब्दार्थ—काढ़त=खींचना; निषंग=तरकश; सरानन=धनुष; पेखियत है=दिखाई पड़ता है; स्रवन=कान; कुंडलाकृति=कुंडल अर्थात् मंडल की आकृति का गोल; इकचक=अचल, स्थिर लेखियत है=दिखाई पड़ता है: ऐन=आगार, घर; ओप=दीप्ति, कान्ति; सबर दल=शंबर नामक दैत्य को मारने वाला; मैंन=काम देव; बिसेखियत=विशेष; नत=झुका हुआ; अंग ऊपर कौ=सिर; संगर=सग्राम, युद्ध;

अर्थ—राम बड़ी तीव्र गति से युद्ध कर रहे हैं—यह दिखाई नहीं पड़ता कि वे कब तरकश से तीर खींचते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते है और कब धनुष की प्रत्यंचा खींच कर बाण चलाते हैं। धनुष को खींचकर कानों तक आया हाथ और खिचकर मंडलाकार धनुष के बीच में राम का सुन्दर शरीर अचल सा दिखाई पड़ता है। भावार्थ यह है कि वे इतनी तीव्र गति से धनुष पर तीर चढ़ाते और फिर तीर छोड़ते हैं कि यह व्यापार तो दिखाई ही नहीं पड़ता बस वे तो कान तक हाथ के द्वारा प्रत्यन्चा खिचें हुये मंडलाकर धनुष को लिये हुये अचल दिखाई पड़ते हैं। सेनापति कहते हैं—राम के अरुण नेत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



क्रोध के कारण युद्ध भूमि में दीप्ति अथवा कान्ति के आगार हो रहे हैं और उनकी छवि शंबर का दलन करने वाले काम देव से भी अधिक है। संग्राम में उनका शीश कुछ झुक कर रह गया है अर्थात कुछ झुके हुये शीश के साथ राजा राम युद्ध में चित्र लिखित से दिखाई दे रहे हैं।

पृष्ठ—८६

राम नाम का महत्व—

(१२) सिव जू.............................जान्यौ है।

शब्दार्थ—निद्धि=निधि, नौ निधियाँ; समृद्धि=सम्पन्नता; बालमीकि=एक महा मुनि जिन्होंने वाल्मीकि रामायण की रचना की; विधि=शास्त्रोक्त विधान; जज्ञ=यज्ञ; सिंगार=शृंगार, शोभा सनकादि=सनक आदि ब्रह्मा के पुत्र! मुकति=मुक्ति; निधान=भंडार; निदान=आदि कारण; कामधेनु=एक गाय का नाम जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है; रसना=जिह्वा;

संकेत—राम नाम का क्या महत्व है—इसका स्पस्टीकरण इस पद में किया गया है।

अर्थ—बाल्मीकि ऋषि ने इस बात का वर्णन किया है कि राम का पावन नाम, शिव जी की नव निधियों, हनुमान जी की समस्त सिद्धियों और विभीषण की सम्पन्नता का कारण हैं। सनक आदि ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने हृदय में यह बात बिठा ली है कि राम नाम समस्त शास्त्रों के विधानों का आधार है, चारों वेदों का सार है और जप तथा यज्ञ आदि की शोभा का शृंगार है। सेनापति ने भी पूर्णतः पहिचान लिया है कि राम नाम अमृत के समान गुण कारी है, भोग और मुक्ति का भंडार है और महान कल्याण का जगत में आदि कारण है। जगत यह जानता है कि राम नाम समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु वत् है जिह्वा का विश्राम है अर्थात् राम नाम लेने से ही वाचाल जिह्वा को विश्राम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मिलता है और यह धरम का धाम है अथवा राम का नाम लेने से समस्त धर्मों का फल मिलता है।

राम भजन का प्रभाव—

(१३) चाहत है.................... कौंन फल हैं।

शब्दार्थ—सेउ=सेवा कर, सिया रमन=राम, अविचल=अचल; ज्यायौ=जीवित कर दिया, साखामृग=वन्दर जो है=दर्शन कर; कोसल नगर=अयोध्या नगर; धौं=न मालूम

संकेत—राम के भजन से सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

अर्थ—यदि तू धन की प्राप्ति चाहता हैं तो श्री राम की सेवा कर जिनकी कृपा से विभीषण ने अटल राज्य प्राप्त किया। यदि तू निरोग रहना चाहता है, तो एक उसी राम का भजन कर जिन्होंने मृत बन्दरों के दल को पुन: जीवित कर दिया। यदि तू मुक्ति की कामना करता है तो स्वामी रघुनाथ का दर्शन कर जिन्होंने समस्त अयोध्या वासियों को मुक्ति प्रदान की। सेना पति कहते हैं कि यदि ऐसे राम को भी छोड़ कर, तू और का भजन करता है सो उसका तो न जाने क्या फल होगा।

भगवदाश्रय—

(१४) तुम करतार... ................ काहे के ?

शब्दार्थ—करतार=विधाता, करने वाले, रच्छा=रक्षा पुजवन हार=पूर्ण करने वाले; दाहे=दग्ध, जला हुआ; सुकृति=पुण्य कर्म; लाहै=लाभ; हौं=मैं

संकेत—इस पद में भक्त सेना पति तार्किक के रूप में आते हैं वह कहते है—यदि यही वात निश्चित रही कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है तब तो हम स्वयं विधाता हैं तुम विधाता कैसे रहे।

अर्थ—हे विधाता ! तुम जन जन की रक्षा करने वाले हो और जो चित्त में जैसी इच्छा करता है उसको तुम पूर्ण करने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


हो। यह अपने हृदय में समझ कर सेनापति तुम्हारी शरण में आया है, मैं महान् पाप और दैहिक दैविक, भौतिक तापों से दग्ध हूँ आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। यदि आप यह कहें–कि तेरे कर्म ऐसे नहीं हैं जो तुझे शरण में लिया जाय, हम तो ऐसे व्यक्तियों के ग्राहक हैं अर्थात् ऐसे व्यक्तियों को शरण में लेते हैं जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं और भक्ति रस लाभ किया हैं या भक्ति रस का आस्वादन किया है। यदि मैं अपने कर्मों द्वारा ही अपना निर्बाह कर ले जाऊंगा, तब तो मैं ही करतार हो जाऊंगा, फिर तुम करतार किस प्रकार से हो ?

पृष्ठ—९०

अनन्य रक्षक—

(१५) अरि करि ........................ के नख हैं।

शब्दार्थ—अरि=शत्रु; करि आंकुस=हाथ का अँकुश, नख: विदारयो=विदीर्ण कियो, फाड़ डाला; हरष=प्रसन्न होकर; कुलिस=वज्र; करेरे=कठोर; नमक=तीव्रता, तरेरे=कुपित दृष्टि से देखना, दरेरे के=रगड़ कर, चूर्ण कर कलमष=पाप वर=उत्तम अनियारे नुकीले नरसिंह जू=नृसिंह भगवान

अर्थ—हिरण्याकश्यप शत्रु को जिन्होंने हाथ के अंकुश अर्थात नाखूनो से फाड़ डाला और जो प्रसन्न होकर भक्तों को मंगल प्रदान करते हैं कठोर वज्र की भी अपनी तीव्र कुपित दृष्टि से तोड़ देते हैं दुखों को चूर्ण कर नष्ट कर देते हैं और पापों को हर लेते हैं। सेना पति कहते हैं कि मनुष्य जिन की कृपा से निर्भय होते हैं उनसे तू भय मत कर, वे तो उत्तम करूणा की वर्षा करने वाले हैं। अत्यन्त नुकीले, चन्द्र की कला से भी उज्जवल, मेरी रक्षा करने वाले तो वही भगवान नृसिंह के नाखून हैं।

बिशेष—भक्त प्रहलाद की पुकार पर उसके अत्याचारी पिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हिरण्याकश्यप का भगवान ने नृसिंह अवतार धारण कर के अपने नख से वध किया था !

अशरण शरण—

(१६) द्रौपदी सभा...................... ... .... ... समान ही।

शब्दार्थ—हठ करि=बल पूर्वक; लच्छक=लक्षक, जता देने वाला; पति लागी पतता नहीं=पतियों को अपने पतिपन का थोड़ा भी ध्यान न रहा, पति होते हुये भी उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन कर द्रौपदी की रक्षा न की; हरे !=हरि का सम्बोधन सूचक शब्द; पीत-बास=पीत वस्त्र धारी श्री कृष्ण; हरे पीत बास !=हे श्री कृष्ण !; निदान=अन्त में; वसन=वस्त्र।

संकेत—अशरण के भगवान ही शरण हैं। भरी सभा में द्रौपदी की पुकार किसी ने न सुनीं तो अशरण शरण स्वयं रक्षक हुये।

अर्थ—बल पूर्वक कौरव पति दुर्योधन ने द्रौपदी को सभा में बुलाकर खड़ा कर लिया और क्रोध मग्न वह किसी का कहना नहीं मानता। (द्रौपदी को विवस्त्र करने की आज्ञा उसने दे दी). सब जता देने वाले अनेक राजा वहाँ थे परन्तु द्रौपदी की रक्षा के लिये कोई नहीं उठा। द्रौपदी पर जो उस समय विपत्ति पड़ी उसमें उसके पंच पति उपस्थित होते हुये भी अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके क्योंकि वे अपने को पहले ही हार चुके थे (देखो सूरदास पद संख्या ३ का अर्थ)। अन्त में जब लाज जाते देखकर द्रौपदी ने 'हे ! अनन्त श्याम सुन्दर, पीत वस्त्र धारी कृष्ण' कह कर पुकार की, सेनापति कहते हैं कि मेरी समझ में वही हरि नाम जिसका उच्चारण द्रौपदी ने किया था अनन्त हरिनाम के समान अर्थात हरिनाम जिसका आर पार ज्ञात नहीं उसके सदृश ही अनन्त वस्त्रों में परिवर्तित हो गया।

विशेष—'लच्छक नरेश ......... पतता नहीं'——यही भाव सादृश्य सूर में भी मिलता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषन द्रोन करभ व्रत धारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतिनन मो अपति विचारी॥

शिव वंदना—

(१) सोहात उत्तङ्ग........ ............फल फूल है।

शब्दार्थ – उत्तङ्ग=उच्च श्रेष्ठ; उत्तमङ्ग=उत्तम अंग वाली गौरी अरधड़=शिव; अनंग=काम देव; चाम शारदूल+शेर का चर्म रिद्धि=समृद्धि लहै=प्राप्त करै; अगाऊ=अग्रिम, पेशगी।

अर्थ—अति श्रेष्ठ, उत्तम अग वाली गंगा चन्द्रमा के साथ काम देव के शत्रु शिव के शीश पर सुशोभित होता है। ये शिव समस्त देवताओं के आधार हैं, सेनापति के सर्वदा अनुकूल रहते हैं, कमर पर शेर का चर्म या बाघ छाला बांधे रहते हैं और सदा हाथ में त्रिशूल रखते हैं। सेनापति कहते हैं—अरे मन! तू क्यों भटकता है, उस शिव से क्यों नहीं प्रीति लगाता जिससे तू अष्ट सिद्धि और नव निधि और समृद्धि प्राप्त कर लेगा। जो चढ़ावे का एक बेल पत्ता ही स्वीकार कर लेता है उसे तू अग्रिम हाथ से एक के स्थान पर चार फल फूल क्यों नहीं चढ़ाता। ।

पृष्ठ ६१

गंगा स्तुति—

(१८) काल तैं ............................सीस में।

शब्दार्थ—कराल=भयंकर; कालकूट=विष; व्याल=सर्प; आगि भाल सब ही समैं=सर्वदा मस्तक पर आग मुख त्रिनेत्र स्थित रहता है; अर्थात शिव का तृतीय नेत्र जो अग्निमुख है सर्वदा मस्तक पर स्थित रहता है; अरंग=विघ्न बाधाये; बकसीस=दान, पारितोंषिक; रह्यौ आधौ ..........बकसीस में=आधा शरीर शिव जी का पार्वती को अर्द्धांगिनी के रूप में मिल चुका है; वस्तुतः भगवती पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने पारितोषिक रूप में अपना आधा शरीर पार्वती को भेंट कर स्वयं अर्धनारीश्वर हो गये। बिजात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



=विलीन होना, समाप्त होना; वार=देर; पैयती=प्राप्त होता सहस बानी=सहस गुने प्रभाव वाला।

**संकेत**—गंगा की महिमा का वर्णन करते हुए कवि उन्हें शिव की रक्षिका तक कह दिया है।

**अर्थ**—काल से भी भयंकर विष शिव जी कंठ में सुशोभित है और उनके वक्षस्थल पर सर्पों की माला, तथा मस्तक पर अग्नि मुख त्रिनेत्र सदा विराज मान रहते हैं। इस प्रकार शिव जी के आधे शरीर में व्याधियों द्वारा उपस्थित विन्घ व्याप्त हैं और आधा शरीर पारितोषिक रूप में पार्वती जी का हो चुका है। ऐसी विषम परिस्थिति मे शिव के शरीर का तिल भर भाग भी बाकी न प्राप्त होता और समस्त शरीर के विलीन होने में कुछ भी देर न लगती यदि उनके शीश पर सुधा से भी सहस गुने प्रभाव वाला गंगा जी का जल न होता—यह सेनापति अपने हृदय में पूर्णतः समझता है।

**विशेष**—कवि ने गंगा महात्मय का वर्णन यहाँ पर खूब बढ़ा चढ़ा कर अत्युक्ति पूर्ण किया है, परन्तु वह इतना स्वभाविक है कि है कि तत्काल हृदय को स्पर्श करता है।

**आलोचनात्मक प्रश्न**—

**प्रश्न**—१ सेनापति किस काल के कवि माने जाने हैं और क्यों ?

## उत्तर

कविवर सेनापति का रचना काल रीति काल के प्रारम्भ में पड़ता है। उन्होंने संवत १७०६ में अपनी फुटकर रचनाओं को 'कवित्त रत्नाकर' में संगृहीत किया। यद्यपि सेनापति ने रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया है अर्थात भाव विभाव अनुभाव रस अलंकार आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया गया हैं परन्तु इन पर रीति कालीन प्रभाव प्रचुरता से पाया जाता है, संभव है सेनापति की दूसरी कृति 'काव्य कल्पद्रुम' में इस परिपाटी का अनुसरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



किया गया हो, परन्तु यह कृति दुर्भाग्य से अप्राप्य है। अतः हम यह कह सकते हैं कि सेनापति रीतिकाल के कवि हैं परन्तु ये घनानंद की की तरह रीति मुक्त कवि थे।

यह सिद्ध करने के लिये कि सेनापति रीति काल में क्यों आते है हम उन पर पड़ा हुआ रीतिकालीन प्रभाव का विवेचन करेंगे:—

जैसा ऊपर कहा जा चुका है सेनापति का रचना काल रीतिकाल के अन्तर्गत पड़ता है, दूसरी बात यह हैं कि रीतिकालीन परिपाटी से प्रभावित थे अतः उनको रति काल के अन्तर्गत लेना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। इसके अतिरिक्त सेनापति पर अलंकारों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वास्तव में ये अलंकार वादी थे और रस सम्प्रदाय से भी प्रभावित हुये थे परंतु अधिक नहीं। स्वयं कवि ने कवित्त रत्नाकर की पहली तरग में अपनी श्लिष्ट रचनाओं को सगृहीत किया है और उसका नाम 'श्लेष-वर्णन किया है—यह उनकी अलकार वादिता का प्रमाण है। 'कवित्त रत्नाकर' में शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शान्त रस सम्बन्धी रचनाऐं पाई जाती हैं स्वभावतः अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का अधिक विस्तार है। शृंगार रस के आलम्बन नायक और नायिका हैं। नायिकाओं में 'मुग्धा', 'खंडिता के वर्णन किये हैं। उद्दीपन विभाव की दृष्टि से नखशिख वर्णन पर कुछ छंद पाये जाते हैं।

सेनापति का ध्यान संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार की ओर अधिक गया है। रीति काल की परम्परा के अनुसार विरह व्यथा को उद्दीप्त करने के लिये कवि ने ऋतुवर्णन की भी सहायता ली है। सेनापति में विरह की मानसिक स्थिति के निरीक्षण का अभाव मिलता है, दूसरी बात यह भी है कि उनकी अलंकार प्रियता के कारण भी उनके विरह वर्णन को क्षति पहुँची है।

सेनापति की भक्ति भावना पर दृष्टिपात करने से सिद्धान्त की दृष्टि से कुछ लोग सेनापति को गोस्वामी जी परम्परा में रखते हैं परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रीति का प्रभाव उन पर इतना स्पष्ट है और उनकी रचना भी रीतिकाल में हुई है अतः हम निःसंकोच सेनापति को रीतिकाल के अन्तर्गत ही ले सकते हैं।

प्रश्न २—सेनापति की अलंकार एवं रस योजना पर अपने विचार स्पष्ट कीजिये।

## उत्तर

**सेनापति की अलंकार योजना:**—सेनापति अलंकार वादी कवि थे वे कविता में चमत्कार लाने के लिये अलंकारों का समावेश अनिवार्य समझते थे। सेनापति का ध्यान शब्दालंकारों की ओर ही अधिक था इसी से कवित्त रत्नाकर में उनकी भरमार है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलकारों की ही अधिकता पाई जाती है। इन्होंने भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक; व्यतिरेक तथा प्रतीप आदि का बाहुल्य है। नखशिख वर्णन में प्रतीप का वर्णन उपमा से भी अधिक हुआ है।

शब्दालंकारों में श्लेष तथा अनुप्रास सेनापति को बहुत ही प्रिय थे 'कवित्तरत्नाकर' की पहली तंरग तो श्लेष वर्णन के आधार पर ही रचित हैं। सेनापति में अभंग और सभंग दोनों प्रकार के श्लेष वर्णन हैं। सभंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण देखिये—

और है न रस ऐसौ सुनि सखि साँची कहौं
मोतिन के देखिबे कौं जैसे कछू रस है।

इस कवित्तांश में 'मोतिन के' को 'मो तिनके' कर देने से दूसरे पक्ष को सूचना मिलती है। नायिकी अपनी सखी से कहना चाहती है कि मुझे कृष्ण के दर्शन से जेसा आनन्द मिलता है वैसा और किसी बात से नहीं। परन्तु वह मोतियों की प्रशसा करती हुई श्लिष्ट वर्णन द्वारा गुप्त रूप से अपने हृदय की बात लज्जा वश कृष्ण का नाम न लेकर तिनके द्वारा स्पष्ट करती है। इस ढंग के संभग पद श्लेष सेनापति की अपनी चीज है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सेनापति की रस योजना—सेनापति के 'कवित्त रत्नाकर' में शृंगार, वीर, रौद्र भयानक तथा शान्त रस संबंधी रचनायें पाई जाती हैं। सेनापति में अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस का अधिक विस्तार है। शृंगार में भी संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार की ओर सेनापति का ध्यान अधिक है। उनका वियोग शृंगार विरही का अत्युक्ति पूर्ण चित्रण कम करता है, लम्बी चौड़ी उड़ान वाले कवित्त थोड़े हैं। विरह से उत्पन्न व्याकुलता का स्वरूप देखिये—

"प्रीतम के परदेश चले जाने पर—

कागहि उड़ावै कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहूँ फेरि के कै पढ़ति कौहू
प्रीतम को चित्र में सरूप निरखत है।

विरह व्यथा को उद्दीप्त करने में कवि ने ऋतु वर्णन से विशेष सहायता ली है। सेनापति ने विरह वर्णन में मानसिक स्थित का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया है। उनकी अलंकार प्रियता के कारण विरह वर्णन को क्षति पहुंची। 'रामायण' के प्रसंग में वीर रस की भी सुन्दर योजना सेनापति ने की है। सेनापति को हम युद्ध का वर्णन करने में उतना तत्पर नहीं पाते हैं जितना युद्ध की तैयारी के वर्णन में। राम का सेना एकत्र करना, हनुमान को सीता की खोज में भेजना, सेतु बांधने का आयोजन करना आदि विषयों का कवि ने अधिक वर्णन किया है, इसी कारण उन की रचनाओं में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

प्रश्न—३- सेनापति के प्रकृति वर्णन में आपको क्या विशेषतायें मिलती हैं ? आलोचनात्मक दृष्टि से उत्तर दीजिये।

## उत्तर

प्रचलित परम्परा के अनुसार सेनापति का प्रकृति चित्रण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उद्दीपन के रूप में मिलता है। उनके बारह मासे के कवित्त अधिकांश उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखे गये हैं। परन्तु सेना पति का षटऋतु वर्णन देखने से ज्ञात होता है कि प्रकृति के प्रति हृदय में विशेष अनुराग था। सेना पति ग्रीष्म ऋतु से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं कवि ने कैसी काव्योचित भावुकता के साथ ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया है—

वृष को तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छांह को पकरि पंथी पंछी बिरमत हैं॥
सेना पति नैक दुपहरी के ढरत; होत,
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं
घरी एक बैठि कहूँ घामै वितवत है॥

असह्य उमस से संसार को व्याकुल देख कवि कल्पना करता है मानों पवन भी ग्रीष्म के भीषण ताप से त्रस्त हो कर, किसी स्थान में बैठ कर थोड़ा विश्राम कर रहा है। इससे स्पष्ट है कि सेना पति ने प्रकृति का निरीक्षण किया था।

एक बात विशेष सेनापति के ऋतुवर्णन के बारे में यह है कि इनका ऋतु वर्णन सामाजिक परिस्थिति से बहुत प्रभावित है। सेना पति के ऋतु वर्णन में प्रत्येक वस्तु में राज महलों की स्थिति विशेष के वर्णन पाये जाते हैं। जेठ के निकट आते ही खस खानों और तहखानों की मरम्मत होने लगती है, और ग्रीष्म के ताप से बचने के लिये शीतोपचार के उपायों की चिन्ता होती है, किन्तु इस ऋतु वर्णन में कवि की दृष्टि राज महलों तक ही सीमित नहीं रही है! कभी २ आग जला कर अलाव तापते हुए साधारण स्थिति के मनुष्यों पर भी पड़ गई है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


धूम नैन बहै, लोग अगि पर गिर रहै
हिये सौं लगाइ रहैं नैक सुलगाइ कै।
मानौं भीत जानि, महा सीत तें पसारि पानि
छतियाँ की छांह राख्यौ पाउक छिपाइ कै॥

सेना पति की सूक्ष्म दृष्टि ने प्रकृति का चित्रण करने में शब्दों का चयन भी बड़ा उपयुक्त किया है। देखिये क्वार के बादलों का स्वरूप ज्यों का त्यों आंखों के सामने आ जाता है—

खंड खंड सब दिग मंडल जलद सेत,
सेना पति मानौं सृंग फटिक पहार के।
सलिल सहल मानों सुधा के महल नभ,
तूल के पटल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत है, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के॥

अनुप्रास की छटा ने तो यहां बादलों के चित्रण को और भी मनमोहक बना दिया है।

प्रकृति चित्रण में कवि अधिकतर वस्तु परिगणन शैली का सहारा लेकर चलते हैं परन्तु सेनापति ने वस्तुओं के नाम नहीं गिनाये उन्होंने तो वस्तुओं की सहायता से एक दृश्य का पूरा चित्र खड़ा कर दिया है। उन्होंने काव्य ग्रँथों में पाये जाने वाले ऋतु वर्णनों के आधार पर अपना प्रकृति चित्रण नहीं किया है।

प्रश्नः—४—सेनापति और घनानंद की रचनाओं पर तुलात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

सेना पति और घनानंद दोनों रीति मुक्त धारा के कवि हैं दोनों ने कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा परन्तु एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सेना पति रीतिकालीन परिपाटी से पूर्णतः प्रभावित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



थे। परन्तु घनानंद प्रेम के उन्मुक्त गायक थे वे पूर्णतः रीति मुक्त कवि थे।

दोनों ही वैष्णव भक्त कवि थे। उनके भक्त हृदय की छाप उनकी रचनाओं पर स्पष्ट है। घनानंद के इष्ट देव राधा कृष्ण थे तो सेनापति के सीता राम। घनानंद की कविता का थीम है 'विरह निवेदन'; परन्तु इस वियोग शृंगार के चित्रण में उनकी राधा और गोपियां वासना की मूर्ति प्रतीत नहीं होती। उनकी रचना में प्रेम की पीर इतनी घनीभूत है कि प्रत्येक शब्द में वेदना, कसक और टीस भरी हुई हैं परन्तु उनका शृंगार वर्णन लौकिक न हो कर अलौकिक ही है। इसके विपरीत सेनापति अपने शृंगार वर्णन में पक्के शृंगारिक कवि के रूप में आते हैं परन्तु भक्तिपूरक रचनाओं में उनकी भक्ति भावना की भी तल्लीनता पाई जाती है।

सेना पति चमत्कार वादी कवि थे अपनी भाषा को अच्छी तरह सजाने की ओर इनका विशेष आग्रह था—

राखति न दोषैं पोषैं पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कवि कं जो उपकंठ वसति है।
अच्छर हैं विशद करति उषैं आप सम
जाते गत की जड़ताऊ विनसति है।
मानौ छबि ताकी उदवत सविता की सेना-
-पति कवि ताकी कविताई विलसति है।

उपर्युक्त पद सेनापति की कवित्त रचना के ढंग पर प्रकाश डालता है। ये लग कर कवित्त बनाते थे परन्तु घनानंद को इस प्रकार काव्य रचना के लिये प्रयत्न शील नहीं होना पड़ा उन्होंने तो स्पष्ट कह दिया—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत!

घनानंद के जीवन का आधार उनकी कविता थी परन्तु सेनापति की कविता का आधार उनका जीवन था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सेनापति अलकार वादी थे और घनानंद ने भी अलंकृत शैली का ही प्रयोग किया है। सेनापति को अपनी क्षमता पर गर्व था और वे पांडित्य प्रदर्शन मे विश्वास रखते थे, उन्होने पाँडित्य प्रदर्शन के लिए ही द्विअर्थी कविता का निर्वाह किया था—

सेवक सियापति कौं सेना पति कवि सोई,
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की।

परन्तु घनानद में पांडित्य प्रदर्शन की रुचि नाम मात्र को भी नहीं थी उन्होंने तो अलंकारों की सहायता से अपने भावों को अधिक मार्मिक बनाया है और इसके लिये विरोधाभास की अधिक सहायता ली है, यद्यपि उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि भी उनके प्रिय अलंकार हैं।

घनानंद ने कवित्त और सवैया दोनों छंदों में रचना की है परन्तु सेनापति ने विशेषत: कवित्त छंद का ही अपनी रचना में प्रयोग किया है। घनानंद की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। सेनापति की भाषा भी व्रज ही है जो अत्यन्त सुव्यवस्थित परिमार्जित है इसी कारण श्लिष्ट काव्य लिखने में उन्हें सफलता मिली हैं। घनानद में भाव और भाषा का सामजस्य अपूर्व हैं।

प्रश्न:—५. सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति गोस्वामी जी की परम्परा में आते है— इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

## उत्तर

श्री उमाशंकर शुल्क का कथन है— सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति गोस्वामी जी की परम्परा मे आते हैं। शुक्ल जी का कथन एक सीमा तक सत्य है क्योंकि गोस्वामी जी की तरह सेनापति राम उत्कृट भक्त थे पर कृष्ण तथा शिव से भी उन्हें विशेष स्नेह था और तदनुसार उन्होंने उनका भी गुणगान किया है।

गो स्वामी तुलसीदास जी की तरह सेनापति ने राम के नारायणत्व का प्रतिपादन किया है उन्होंने राम को पुर्ण अवतार मान कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उनके लोक कल्याणकारी गुणों का वर्णन सविस्तार किया है—

जग अभिराम, लोक वेद जाकौं नाम महा-
राज मनि राम, धाम सेनापति सुख कौं !
तेज पुंज सूरो, चद सूरो न समान जाके,
पूरौ अवतार भयौ पूरन पुरुष को !!

निश्चित ही सेनापति तुलसी की तरह राम भक्त हैं—

वेद में बखानी, तीनि लोकन की ठकुरानी
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की ;
देख दुखदंडन, भरत सिर मंडन, वे
वंदौं अघ खंडन खराऊँ रघुराइ की।

राम की चरण पादुका के प्रति सेनापति के हृदय की श्रद्धा उमड़ा पड़ रही है। राम भक्त कवि तुलसी की तरह सेनापति में दैन्य भावना भी पर्याप्त देखने को मिलती है। अपने इष्ट देव के अपार गुणों को देख कर अपने लघुत्व का अनुभव होना अनिवार्य है। सेनापति के 'राम रसायन' में दैन्य की भावना सर्वत्र पाई पाई जाती है। रामनाम के महत्व को सेनापति खूब जानते थे—

[१] सुधा के समान, भोग मुकति निधान, महा,
मंगल निदान, 'सेनापति' पहिचान्यौ है।
कामना कौं कामधेनु, रसना कौं विसराम,
धरम कौं धाम राम नाम जस जान्यौ है ॥

[२] चाहै जो मुकति, जोहै पति रघुपति, जिन
कौसल नगर किनौ मुकत सकल है।
'सेनापति' ऐसे राजा राम कौ विसार जो पै,
और को भजन कीजै, सौं धौं कौन फल है ॥

राम रसायन के अन्य कवित्तों के देखने से यह निश्चित हो जाता है सेनापति भगवान के सगुण स्वरूप के उपासक थे। उन्होंने निर्गुण और सगुण का विवाद ही नहीं उठाया। उन्होंने तो राम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रमायन के पहले कवित्त में ही भगवान के निर्गुण तथा सगुण स्वरूपों को स्वीकार कर लिया है—

दृगन सौं देखे विस्वरूप है अनूप जाकौं
बुद्धि सौं विचारै निराकार निरधार।

अन्त में तुलसी की तरह उनकी दास्य भावना पर एक उद्धरण और देकर इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। यह उद्धरण इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सेनापति सिद्धान्त से तुलसी की परम्परा में आते हैं। वे कलि काल को फटकारते हुए कहते हैं—

ए रे कलिकाल ! मोहिं कालौं न निदरि सकै,
तू तौ मति मूढ़ अति कायर गंवार को ?
सेनापति निरधार, पाइपोस बरदार,
हौं तो राजा रामचन्द्र जू के दरबार को ?

सेनापति राम के दरबार का सेवक है अतः वह कलियुग से नहीं डरता।

अतः सेनापति अपनी भक्ति, दैन्य और सेव्य-भावना से सिद्धान्त रूप में गोस्वामी जी की परम्परा में आते हैं।

प्रश्न ६ सेनापति की भाषा और शैली पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपने विचार व्यक्त कीजिये।

## उत्तर

सेनापति की भाषा व्रज भाषा है। सेनापति ब्रजभाषा लिखने में बहुत दक्ष थे। भाषा के साधार. से साधारण शब्द को लेकर उन्होंने सुन्दर रचना की। व्रज भाषा से पूर्णत परिचित होने के कारण ही उन्हें श्लिष्ट काव्य लिखने में अपूर्व सफलता मिली है। सेनापति की भाषा में यथा स्थान संस्कृत के तत्सम रूपों का भी सफल प्रयोग मिलता है—

देव दुख दंडन, भरत सिर मंडन, वे।
वंदौ अघ खंडन, खरांऊ रघुराइ की॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri


तत्कालीन राजनीतिक वातावरण के कारण अरबी फारसी के शब्दों का उन दिनों खूब चलन हो गया था। सेनापति ने भी अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है। अरबी के शब्द—अरस, लिबास, इतवार, महल आदि और फारसी के शब्द—फानुस, पाइपोस, बरदार, आसना, गरद, रुख-आदि आदि सेनापति की रचनाओं में मिलते हैं। सेनापति की भाषा में खड़ी बोली के कुछ रूपों का प्रभाव भी लक्षित होता है।

सेनापति की भाषा में प्रसाद और ओज गुण प्रधानता से पाये जाते हैं। प्रसाद गुण उनकी श्लिष्ट रचनाओं को छोड़ कर सर्वत्र ही प्राप्त होता है। सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है उसमें शब्दों के विकृत रूप अधिक नहीं मिलते हैं।

सेनापति ने कवित्त शैली को अपनाया है उनके कुछ को छोड़ कर समस्त पद कवित्त छंद में ही मिलते हैं। सेनापति के कवित्त अलंकृत शैली में लिखे गये हैं। इन पर अलङ्कार सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था। अलङ्कारों की प्रधानता के कारण उनका रसोत्कर्ष की ओर अधिक ध्यान नहीं गया था, फिर भी शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक और शांत रस सम्बन्धी उनकी रचनायें अच्छी बन पड़ी हैं। ये पांडित्य प्रदर्शन में विश्वास करते थे इसलिये इन्होंने श्लिष्ट शैली को अपनाया है। कवित्त रत्नाकर की पहली तरंग में समस्त पद श्लिष्ट शैली में लिखे गये हैं।

प्रश्न—७ सेनापति के काव्य की विशेषतायें बताते हुये हिन्दी साहित्य के कवियों में उनका स्थान निरूपित कीजिये।

## उत्तर

सेनापति के काव्य की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

(१) सेनापति ने, रीतिकालीन कवि होते हुए रीतिबद्ध रचना नहीं की अर्थात् लक्षण-उदाहरण वाली रीतिकालीन परिपाटी पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रचना नहीं की यद्यपि उन पर रीतिकालीन परिपाटी का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

(२) काव्य के भाव पक्ष के आन्तरिक स्वरूप की दृष्टि से सेनापति के दो रूप सामने आते हैं— (१) शृंगारी कवि (२) भक्त कवि। आपने काव्य में शृंगार वर्णन में तत्कालीन लोक रुचि और साहित्यिक परम्पराओं का पूरे उत्साह के साथ निर्वाह किया है। साथ साथ सेनापति ने राम काव्य की भी रचना की है जिसके कारण सिद्धान्त की दृष्टि से वे गोस्वामी जी की परम्परा में आते हैं।

(३) सेनापति अलंकार वादी कवि थे। उनके काव्य में अलंकारों की छटा और उनकी पांडित्य प्रदर्शन की रुचि यत्र तत्र सर्वत्र मिलती है। कहीं कहीं उन्होंने गर्वोक्तियां भी की हैं।

(४) सेनापति ने अपनी रचनाओं में विशेषत: कवित्त छंद का प्रयोग किया है।

(५) सेनापति की काव्य भाषा ब्रज भाषा है, जिस पर उनका पूरा अधिकार है इसी कारण वह अत्यन्त सुव्यवस्थित, परिमार्जित प्रसाद तथा ओज गुण युक्त है!

हिन्दी साहित्य के कवियों में सेनापति का श्लाघनीय स्थान है। उन्होंने अपने में शृंगारी और भक्त कवि का इतना समुचित समन्वय किया है कि उनका स्थान स्वयं अति ऊंचा हो गया है; सिद्धान्त की दृष्टि से वे गोस्वामी तुलसीदास की परम्परा में आते हैं और काव्य की दृष्टि से तो वे रीति काल के एक प्रतिष्ठित कवि हैं ही क्योंकि रीतिमुक्त धारा का अनुसरण करते हुए भी वे रीति कालीन प्रभाव से मुक्त नहीं हैं। उनका प्रकृति का स्वतन्त्र निरीक्षण हिन्दी साहित्य में अपूर्व स्थान रखता है!

कुछ परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल —

निम्नलिखित पद्यांशों की संप्रसंग व्याख्या कीजिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(१) वृष को ........................ वितवत है ।

(देखो पद संख्या– २)

(२) सीत कौं ........................ छिपाई कै ।

(देखो पद संख्या– ५)

(३) सिसिर तुषार ........................ फिरि के ॥

(देखो पद संख्या– ६)

(४) सुर तरु ........................ रघुराई की ।

(देखो पद संख्या– ७)

(५) मोहिनी कौं ........................ निकाई की ।

(देखो पद संख्या– ९)

(६) सिव जू ........................ जग जान्यौ है ।

(देखो पद संख्या- १२)

(७) तुम करतार ........................ तुम काहे के ।

(देखो पद संख्या- १४)

(८) द्रौपदी सभा ........................ समान ही ।

(देखो पद संख्या- १६)

(९) सोहति उतङ्ग ........................ फल फूल है ।

(देखो पद संख्या- १७)

(१०) काल तैं ........................ सोम में ।

(देखो पद संख्या- १८)

# नव: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृष्ठ–९२

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—

परिचय—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया। वे आधुनिक युग के आधार थे उन्होंने गद्य की भाषा को परिमार्जित कर हिन्दी साहित्य को एक नये मार्ग पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



लाकर खड़ा कर दिया। भारतेन्दु की जन्म तिथि सितम्बर सन् १८५० ई० तदनुसार भाद्रप्रद शुक्ल ऋषि पंचमी संम्वत्१९०७ हैं। ५ वर्ष की आयु में आप मातृविहीन हो गये और १० वर्ष की आयु में इनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। इतनी छोटी अवस्था में ही भारतेन्दु को विमाता और घर के हितेच्छुकों का समाना करना पड़ा वैष्णव संस्कार इनको पिता और परिवार से ही मिले थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बचपन से हीं बड़े चंचल और प्रतिभा शाली थे। इन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में अपने पिता को जो स्वयं एक कवि थे, स्वनिर्मित एक दोहा सुन कर अत्यन्त प्रसन्न किया था—

लै ब्योड़ा ठाड़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
वानासुर की सैन को, हनन लगे वलवान॥

ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही इनकी स्कूली शिक्षा समाप्त हो गई। १४ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया था। ये स्वभाव के बड़े उदार और शहखर्च थे; इन्होंने अपने धन को दोनो हाथोंसे उलीचा ये बड़े स्वदेश प्रेमी थे, स्वदेश प्रेम के नाते इन्होंने कई सार्वजनिक संस्थायें खोलीं और पत्रपत्रिकाओं की स्थापना की जिनमें 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' प्रमुख है। केवल ३४ वर्ष जीवित रहने पर भी आपने हिन्दी की जो सेवा की, इससे प्रसन्न होकर ही तत्कालीन हिन्दी संसार ने आपको 'भारतेन्दु' की पदवी दी थी। भारत का यह इन्द्र ६ जनवरी सन १८८५ (माघ कृष्ण ६ सं० १९४१ वि०) को अस्त हो गया।

साहित्यिक रचनायें--हरिश्चन्द्र जी की प्रतिभा बहुमुखी थी, अतः उनके ग्रंथों की संख्या भी अधिक है। वे कवि 'नाटककार' इतिहासज्ञ और निबन्धकार, इन चारों रूपों में हमारे सामने आते हैं। भारतेन्दु जी ने १४ नाटक लिखे हैं जिनमें ५ अनुवादित और शेष ९ मौलिक हैं इनके नाटकों में 'भारत दुर्दशा' 'चन्द्रावली नाटिका' 'अंधेरनगरी' 'नील देवी' 'सत्यहरिश्चन्द्र' आदि प्रसिद्ध हैं। आपने काश्मीर और उदयपुर के छोटे पूरे इतिहास भी लिखे। आपकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कविताओं का संग्रह भारतेन्दु ग्रंथावली भाग २ में निकल गया है वैसे आपने कुल मिलाकर १७५ ग्रंथ रचे। ३४ वर्ष की अल्प अवस्था पाकर भी आपने जितनी साहित्यिक सर्जना की उतनी कोई असाधारण पुरुष ही कर सकता है।

हिन्दी साहित्य में स्थान—भारतेन्दु जी हिन्दी के युग निर्माता कहे जाते हैं वर्तमान हिन्दी की उन्होंने इतनी उन्नति की, कि यदि उनको इसका जन्मदाता भी कहें तो अत्ययुक्ति न होगी। राजभाषा के पद पर हिन्दी को आसीन कराने के लिए आपने महान् परिश्रम किया तथा आपने अनेक लेखकों को प्रोत्साहन देकर हिन्दी साहित्य के भंडार को भरापूरा करने का प्रयत्न किया। उनके प्रभाव से अनेक लेखकों हिन्दी के क्षेत्र में आये। वस्तुतः भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य को एक मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। आप युग प्रवर्तक के रूप में हिन्दी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे और हिन्दी साहित्य सदैव आपका ऋणी रहेगा।

# टीका

## पृष्ठ ९२

### यमुना छवि—

प्रस्तुत यमुना छवि वर्णन भारतेन्दु लिखित 'चन्द्रावली नाटिका' से उद्घृत है। इसमें यमुना की शोभा का मनोहर वर्णन है।

(१) तरनि-तनूजा.................सुख लहत।

शब्दार्थ—तरनि—तनूजा=सूर्य की पुत्री, यमुना; तमाल—तरुवर=तमाल के सुन्दर वृक्ष; कूल=किनारा; परसन=स्पर्स; किधौं=अथवा; मुकुर=दर्पण; प्रनवत=प्रणाम करते हैं; आतय=धूप; बारन=निवारण या दूर करना; हरि सेवा हित=कृष्ण की सेवा के लिये; नै=झुक;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—यमुना के किनारे जो तमाल के वृक्ष खड़े हुए हैं, उनका वर्णन कवि करता है—यमुना जी के किनारे पर बहुत से तमाल के सुन्दर वृक्ष छाये हुए हैं, वे किनारे पर इस प्रकार झुके हुए हैं मानों जल के स्पर्श करने को झुके हुए हैं या वे जलरूपी दर्पण में उझक उझक कर अपनी अपनी शोभा देख रहे हैं अथवा वे यमुना जल को परम पवित्र जान कर और फल के लोभ से प्रणाम कर रहे हैं, अथवा वे किनारे की गर्मी (धूप) के निवारणार्थ सिमिट सिमिट कर छाये रहते हैं अथवा वे श्री कृष्ण की सेवा के लिये झुक रहे हैं, भाव यह है कि यमुना का वर्ण श्री कृष्ण के वर्ण से मेल खाता है अत; यमुना में श्री कृष्ण की आभा देख कर उनकी सेवा के हेतु झुक रहे हैं और इस शोभा को देख नैन और मन में सुख प्राप्त कर रहे हैं।

'निरखि नैन मन सुख लहत'—का अर्थ प्रेक्षक (देखने वाले) के पक्ष में इस प्रकार लिया जा सकता है—यमुना के किनारे ऐसे तमाल वृक्षों को देखकर मन और नेत्र सुख प्राप्त करते हैं।

(२) तिन पै ·· ·········· नभ तीर की.

शब्दार्थ—छिन = क्षण; राका-निसि = पूर्णिमा की रात्रि; नभ अवनी लौं = आकाश से लेकर पृथ्वी तक;तान = वितान;जुड़ावत = शांत होना, शीतल होना; ओभा = शोभा; अवनि = पृथ्वी, अम्बर = आकाश।

अर्थ—यमुना जल पर जिस समय पूर्णिमा की रात्रि को चन्द्रमा की ज्योति पड़ती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों चन्द्रमा की किरणों ने यमुना जल से मिलकर आकाश से पृथ्वी तक एक वितान तान दिया हो। उस समय जल की छटा एक उज्जवल दर्पण के समान मालूम होती है और उस सुंदर शोभा को देख कर तन; मन और नेत्र सबको शांति मिलती है। उस समय के यमुना जल की शोभा का वर्णन कर सके; ऐसा कौन कवि है अर्थात् उस सयय की शोभा का वर्णन करना कवि की शक्ति के बाहर है। उस समय ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


प्रतीत होता था मानो आकाश और पृथ्वी मिल रहे हों; आकाश से लेकर यमुना किनारे की शोभा एक सी दिखाई देती है।

(३) परत चंद प्रतिबिम्ब.............. लखात है।

शब्दार्थ—चंद्र प्रतिबिम्ब=चंद्रमा की परछाई; मधि=मध्य; लोल=चंचल, रास रमन=रास क्रीड़ा; आभा=छटा, जलउर=जल में; लखात है=दिखाई देता है।

अर्थ—कहीं चन्द्रमा की परछाई जल में चमकती हुई दिखाई देती है और जल की चचल लहारों का साथ पाकर कभी चंद्रमा जल में नृत्य करता दिखाई देता है, यह दृश्य अत्यन्त मनोहारी होता है। चंद्रमा की शोभा ऐसी लगती है, मानों हरि के दर्शनों के लिए चंद्र जल में निवास करता हुआ सुशोभित हो रहा हो (विष्णु का निवास जल में है तभी तो वे नारायण (नार+अयण) अर्थात नार=जल में जिसका घर हो कहलाते हैं) अथवा ऐसा प्रतीत होता है मानों यमुना ही तरंग रूपी हाथों में सुंदर दर्पण लिए सुशोभित हो रही हो। और अपनी छटा बखेर रही हो। अथवा रासक्रीड़ा के समय श्री कृष्ण के मुकुट की छटा जल में दिखाई पड़ रही हो अथवा ऐसा लगता है कि जल में ही हरि की मूर्ति निवास करती है उसी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता हो।

(४) कबहु होत.............. जल आवती।

शब्दार्थ—सत=सैकड़ों; दुरि=छिपकर; गवन-बस=चलने के कारण; हिंडोरनि=पालने में; किलोलें—क्रीड़ा; गुडी=पतंग; अवगाहत=स्नान करती हुई;

अर्थ—लहरों के कारण कभी जल में सैकड़ों चंद्रमा दिखाई देते है, जो कभी प्रकट हो जाते हैं और कभी छिप जाते हैं। हवा के चलने के कारण जल में चंद्रमा के प्रतिबिम्ब के अनेक रूप जल में शोभा देते हैं जो ऐसे मालूम होते हैं मानो चंद्रमा प्रेम में भरकर यमुना के जल में लोटता फिरता हो अथवा तरंग रूपी रस्सियों की गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पर, चंद्रमा पालने में क्रीड़ा कर रहा हो, अथवा किसी बालक की पतंग आकाश में इधर उधर उड़ती शोभा पा रही हो, (यहां जल को आकाश रूप माना है और चद्र-प्रतिविम्व को पतंग) अथवा कोई व्रज की स्त्री जल में स्नान करती हुई इधर उधर डोल कर आ रही हो।

पृष्ठ ९३

(५) मनु जुग.....................कसरत करत;

शब्दार्थ—जुग पच्छ=दोनों पक्ष; कृष्ण तथा शुल्क पक्ष प्रतच्छ –प्रत्यक्ष; प्रगट; लुकत=छिपना, अविकल=पूर्ण; कालिंदी=यमुना; रजत चकई;=चांदी की वनी चकई; निसि-पति=चंद्रमा; मल्ल=पहलवान;

अर्थः—लहरों में चन्द्रमा ऐसा प्रतीत होता है मानों वह कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंका एक साथ रूप धरता हो क्योंकि कभी तो वह प्रत्यक्ष हो जाता है और कभी यमुना के जल में विलीन हो जाता है। अथवा पूर्ण चन्द्रमा तारा गणों को उगने के लिए अर्थात् भ्रम में डालने के लिये छिपता और प्रगट होता हो। अथवा यमुना का जल जितनी तरंगें उत्पन्न करता है, चन्द्रमा भी उनसे उतने ही रूप धारण कर उनसे मिलने के लिए दौड़ता हों, अथवा जल के अन्दर अनेक चांदी की चकई घूमती हों या जल के फुहार उठ रहे हों, या चन्द्रमा रूपी पहलवान अनेक प्रकार से उठ वैठ कर कसरत कर रहा हो।

(६) कूजत कहुं .................जिय धरत ।

शब्दार्थ:—कूजत=कूंज रहे; कल=सुन्दर; मज्जत=स्नान करना; पारावत=कबूतर; कारंडन=एक पक्षी; जलकुक्कुट=जल मुर्गा, चक्रवाक=चकवा चकवी; वक=बगुला; भ्रमरावलि=भौरों की पंक्तियां; रोर=शोर।

अर्थः—(यहां पर कवि ने यमुनातट के पक्षियों का वर्णन किया है) यमुना तट पर कहीं सुन्दर हंस कूंज रहे हैं। कहीं कबूतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्नान कर रहे हैं। कहीं कारंडव पक्षी उड़ता है और कहीं जल मुर्ग दौड़ रहे हैं। कहीं चकवा और चकवी विश्राम करते हैं, कहीं बगुले ध्यान लगाये बैठे हैं, कहीं पर तोता और कोयल जल पीते हैं तो कहीं भौरों की पंक्तियां गुंजार करती हैं। कहीं किनारे पर अनेक मोर नाचते हैं और कहीं अनेकों प्रकार के पक्षी शोर करते हैं। सब पक्षी जलपान करके और सुख पूर्वक स्नान करके यमुना की तट शोभा को हृदय में धारण करते हैं।

गंगा स्तुति—

(१) गंगा पतितन.................. निगम पुकार।

शब्दार्थ:—पतितन=पापियों का; कलि-काल=कलियुग; परस=स्पर्श; हरिचरनारविंद - मकरंदी=विष्णु भगवान के चरण कमल का पराग; अवगाहत=स्नान करते हैं; अस्तुति=स्तुति; निगम=वेद;

अर्थ:—गंगा पापियों की जीवन धार है, यह तुम को कलियुग के कठिन सागर से पार कर देती है अर्थात् भवसागर से पार लगाती है दर्शन स्पर्श और जलपान करने मात्र से ही हजारों लोक गंगा कृपा से तर गये. भगवान विष्णु के चरण कमल के पराग रूप में अथवा भगवान विष्णु के चरण कमलों से निकल कर इसकी सुन्दर धारा सुशोभित हो रही है मनुष्य, देवता, सिद्ध पुरुष और मुनि इस में स्नान कर बार बार स्तुति करते हैं। हरिश्चन्द्र कहते हैं—गंगा मनुष्यों को तारने वाली देवी है- यह वेद पुकार पुकार कर गाते हैं।

भगवदाश्रय—

(२) सम्हारहु अपुने......................की बारी।

शब्दार्थ:—गिरिधारी=गोवर्धन उठाने वाले श्री कृष्ण; पाग=पगड़ी; पेंच=लपेट; अलक=केश; हलकत=हिलती हुई; चक्रदिकन=चक्र आदि शस्त्रों को; निवारी=दूर दूर करदो; फंसन=बंधन;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पियरो पट=पीतवस्त्र; परिकर=समूह; बानो=पहनावा; जुगग्रो= संचित करो।

संकेत—हरिचन्द्र की भक्ति भावना इस पद पूर्णतः अंकित हुई हैं। हरिश्चन्द्र जी का अपने इष्ट कृष्ण से विनय निवेदन है कि हे भगवन! मेरे तारने के लिये आपको विशेष तैयारी करनी होगी क्योंकि मेरे जैसे पापी का उद्धार करना अन्य पापियों की तरह सरल नहीं है।

अर्थः—हे गिरधर गोपाल। आप अपने को भली प्रकार से सम्हाल ले क्योंकि अब आपको मुझ जैसे महापापी को तारना है। शीश पर मोर मुकुट और अपनी पगड़ी को लपेट कर खूब कस लो और अपनी केश राशि को सम्हाल लो, वक्ष स्थल पर हिलती हुये वनमाला को ऊपर उठा लो मुरली को भी अधरों से उतार कर रख दो अपने चक्र आदि अस्त्र शस्त्र पर भी शान चढ़ा कर रख लो और कंकड़ों के बन्धन को भी दूर कर दो। अपने पायल ऊंचे चढ़ाकर करधनी खींच कर पूरी तैयारी कर लो। हे बनवारी! अपना पीत वस्त्र समूह कस कर कमर से बाँध लो हम उन में से नहीं हैं जिनका तुमने सरलता से उद्धार कर दिया अब तो आप अपनी ठीक बेशभूषा एकत्र कर लो, क्योंकि यह हरिश्चन्द्र के उद्धार की बारी हैं।

हरि कृपा—

(३) हस्तिन करुना..................उमगि हरवाई।

शब्दार्थ—जन=भक्त, उमगि चली=उमड़ चली; गाढ़ी =विकट; कूल=किनारे; मरजादा=मर्यादा; न्याव कराव=न्याय रूपी कगार; गहि=पकड़ कर; गन=समूह; बोरेडुवो दिये; बेग= प्रवाह; हलोरे=तरंगित कर दिये; तीनहु ताप=दैहिक दैविक और भौतिक तीन ताप; हरबाई=तीव्रता से।

संकेत—भगवान भक्त और दीन जनों पर अकारण करुणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वश दया करते है तथा उनके पाप कर्मों पर भी ध्यान देकर भव सागर से तार देते हैं

अर्थ—अपने भक्तों को दुखी और निरुपाय देखकर हरि के हृदय में करुणा की नदी वढ़ चली और अत्यन्त विकट रूप में उमड़ चली; मर्यादा के दोनों किनारे इसने तोड़ दिये और न्याय के कगारे भी गिरा दिए अर्थात् भक्त जनों को दुखी देख भगवान ने अपनी मर्यादा और न्याय अन्याय का भी ध्यान न रखा; भक्तों के कर्मफल रूपी यत्र तत्र स्थित वृक्षों के समूह को भी जड़ से तोड़कर वहा दिया और अटल यश के गम्भीर भंवर में अपने जनों के महान पाप समूह पकड़ कर डुबा दिये, तात्पर्य यह है कि भगवान के हृदय में जब करुणा जाग्रत होती है तो वे अपने जनों के पाप कर्म फल पर ध्यान न देकर बल्कि उनको समूल नष्ट कर देते हैं, उनका यश ही पतित पावन के रूप में फैला हुआ है अतः वे पाप समूह का नाश कर देते हैं, उसह्य वेग के साथ उनकी करुणा रूपी वायु चलती है जो बड़े वेग के साथ महान दीन जनों के हृदय को आनद से तरगित कर देती है। अपने भक्त जनों का हृदय रूपी सरोवर करुणा सरिता जल से भर कर दैहिक, दैनिक और भौतिक तीनों तापों को बुझा देती है। हरिश्चंद्र कहते हैं कि यह करुणा सरिता बड़े वेग के साथ भगवान के यश समुद्र में जाकर मिल जाती है।

शरद ऋतु—

(४) अहो ! यह ………………… दरसाई।

शब्दार्थ—शम्भु=शिव; तासों=उससे; रंजित=सुशोभित; घन-पटली=बादलों की पट्टी; धवलाई=उज्जवलता।

संकेत—कवि शरदऋतु का वर्णन शिव रूप में करता है।

अर्थ—यह शरद ऋतु आज तो शिव के रूप में आई है। काँस के पुष्प जो चारों ओर विकसित हो रहे हैं वह मानों शरीर पर भस्म लगा रखी है। चंद्रमा जो उदय हो रहा है वह मानो शिव के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मस्तक का चंद्र आभूषण जिसकी छटा अति सुहावनी लगती है। चंद्र कांति से सुशोभित बादलों की पट्टी ही मानों उनकी बाघ छाला है। पुष्पित कुसुम मानों शिव की मुंडमाला है जो अत्यंत उज्जवलता के साथ शोभाय मान हो रही है। गजहंसों की शोभा ही मानो शिव जी के हास विलास के रूप में चहुँ ओर दिखाई दे रही है।

विशेष—रूपक अलंकार है

विरह वेदना—

( ) गोपिन की बात.................. जायगो,

शब्दार्थ—बखानौं = वर्णन करूं; गो = गया; विथा = व्यथा; प्रलय पयोधि = प्रलय सागर; बूड़ि = डूब, बिलायगो = विलीन हो जायगा, पौंड़त = तैरना, बट = वट वृक्ष,

संकेत—गोपियों की विरह-व्यथा का अतिरंजित वर्णन भारतेन्दु जी ने इस पद में प्रस्तुत किया है।

अर्थ:—हे नंदलाल ! तुमसे गोपियों की बातों का क्या वर्णन करूं, बस तुम्हारा रूप उनके रोम रोम में समा गया है। विरह की दारुण व्यथा से सब सदा दुःखी रहती हैं, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि उनकी दशा का कौन वर्णन कर सकता है ? अर्थात् उनकी व्यथा का वर्णन करना सबकी शक्ति से बाहर है। हे कृष्ण ! जब तुम उनके आंसुओं से निर्मित प्रलय सागर में डुबकी लगाओगे और जब समस्त ब्रह्मांड भी डूब डूब कर उसमें विलीन हो जायगा, उस समय तुम जल बीच इधर उधर तैरते फिरोगे, जब गोपियों की जलती हुई विरह उसासों से वट वृक्ष भी जल जायगा अर्थात तुम निराधार रह जाओगे अतः गोपियों की विरह व्यथा को दूर करो।

विशेष:—वटवृक्ष की अन्तंकथा के लिये सूरदास बाल चरित्र-पद संख्या ८ की अन्तंकथा विषयक टिप्पणी पढ़िये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri


पृष्ठ-६५

(२) इन दुखियान ........................ ...रहि जायेंगी।

शब्दार्थ—औध=अवधि; जौन जौन=जिस जिस;

संदर्भ संकेत—यह पद 'चन्द्रिवली नाटिका' से उद्धृत है। विरह व्याकुल चन्द्रावली इस पद में अपनी आंखों को सम्बोधित करती हुई अपनी श्री कृष्ण वियोग-जनित वेदना को प्रकट करती है।

अर्थ:—इन दुःखिनी आँखों को तो कभी स्वप्न में भी सुख नहीं मिला, इस कारण ये सदा इसी प्रकार व्याकुल होकर अकुलाती रहेंगी। प्यारे कृष्ण के आने की अवधि व्यतीत होते जान के ये प्राण चाहें चले जांय, परन्तु ये प्राणों के साथ नहीं जायेंगी। हे कृष्ण! तुम्हें एक बार भी इन्होंने जी भर कर नहीं देखा, इस कारण जिस जिस लोक में भी ये जायेंगी, ये सदा पछताती ही रहेंगी। हे प्राण प्रिय कृष्ण? विना तुम्हारे दर्शन प्राप्त किये, देख लेना, मरने पर भी ये आंखें (आपके दर्शन हेतु) खुली ही रह जायेंगी अर्थात् मरने पर भी इन आंखों की आपके दर्शन की लालसा ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।

वृन्दावन शोभा—

(३) वृन्दावन सोभा........................ .......परत सो।

शब्दार्थ:—मोपै=मुझ पर; गंधवाह=सुगंध को प्रसारित करने वाला पवन; जिय तपाहि=हृदय की ताप; तरें=नीचे; हरिचंद=कवि का नाम, ('हरि' चन्द करके अर्थ लिया जायेगा, जिसमें 'हरि' कवि के लिये और चन्द्र 'चन्द्रमा' के लिये है); बगरत=फैलना, लहराना; मान के=मान किये हुए, रूठी हुई; पायन=पैर।

अर्थ:—हरिश्चन्द्र कहते हैं— वृन्दावन की शोभा का मुझसे वर्णन नहीं किया जाता, जहाँ पर कि यमुना का जल लहराता हुआ सुशोभित होता है। फूल चारों ओर विकसित हो रहे हैं जिनकी सुगन्ध में लिपटा हुआ मंद पवन हृदय के ताप को हर लेता है। चांदनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



छिटकी हुई है, जिसमें कमल की कली (रात्रि में कमल का संपुट वंद हो जाता है और सूर्य के प्रकाश में विकसित होता है) के नीचे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में इधर उधर लहराता है मानों कि प्रेमी चन्द्रमा अपनी मान किये हुए बैठी नवल वधू-कमल कली को मनाने के हेतु उसके पैरों में पड़ रहा हो।

**पावस ऋतु—**

(४) चपला की………… …… …..आयो है।

**शब्दार्थ**—चपला=विजली; चहूँधा=चारों ओर; चिनगी =चिनगारी; चिलक=चमक, पटबीजना=जुगनू; हेती=घायल; बगमाल=बगुलों की पंक्ति; बादर=बादल; बीर बधू=वीर बहूटी, एक लाल रंग का कीड़ा जो बरसात में होता है; भुव=पृथ्वी, दादुर मेंढ़क, दाहन=जलाने के लिये; पावस=वर्षा ऋतु; मसान=श्मशान; मरघट।

**अर्थ**—बिजली की चमक रूप में वर्षा ऋतु ने चारों ओर चिता सुलगा दी है और पटबीजना की चमक ही मानों चारों ओर चिता से चलती हुई चिनगारियाँ हैं। इस पावस ने तो बगुलों की पंक्तियों को घायल कर काले बादल सी काली भूमि को भी वीर वधूटी रुपी रक्त की बूंदों से युक्त कर दिया है। [वर्षा ऋतु में जल की अधिकता और गंदे हो जाने से बगुले आदि जल–पक्षी भी व्याकुल हो जाते हैं, उसी को लक्ष्य करके कवि ने बगुलों को घायल करने का वर्णन किया है] हरिश्चन्द्र कहते हैं कि जहां जल की धारा आंसुओं की तरह बरसती हैं और मेढ़कों के शोर की तरह व्यथित वियोगिनी आर्तनाद करती हैं। ऐसे में भी यह पापी पावस वियोग दुःख से भरी हुई दुखियाओं को जलाने के लिये श्मशान बन कर आ गया है।

**आलोचनात्मक प्रश्न———**

**प्रश्न**— १ हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु-युग नव जागरण का युग क्यों माना जाता है? सप्रमाण उत्तर दीजिऐ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri


## उत्तर

भारतेन्दु —युग (सन १८५०—१९०० ई०) में साहित्य का निर्माण भारतेन्दु और उनके इष्ट मित्रों द्वारा ही विशेष रूप से सम्पन्न हुआ। वह एक प्रकार का गोष्ठी-साहित्य था। भारतेन्दु इस गोष्ठी के केन्द्र थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लगभग आधी शताब्दी के हिन्दी साहित्य की भिन्न भिन्न प्रवृतियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि इन पचास वर्षों को स्वभावतः उन्ही का युग कह दिया जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का सबसे पहला युग यही 'भारतेन्दु युग' (सन् १८५०-१९०० ई०) है। यह 'भारतेन्दु युग' हिन्दी साहित्य के इतिहास में नव जागरण का युग है। भारतेन्दु ने स्वयं हिन्दी भाषा; हिन्दी कविता, हिन्दी नाटक, हिन्दी कथा-वार्ता सब में नये प्राण डाल दिये वास्तव में भारतेन्दु जी हिन्दी गद्य के प्रवर्तक थे।

भारतेन्दु जी ने गद्य की भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने के साथ पद्य की व्रज भाषा का भी संस्कार किया, भाषा ही साहित्य की आधार शिला है भारतेन्दु ने भाषा को नव शक्ति प्रदान कर अपने युग में साहित्य जागरण का प्रशंसनीय कार्य किया सबसे महत्व पूर्ण कार्य भारतेन्दु जी ने यह किया कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नये नये विषयों की ओर मोड़ दिया अतः ये साहित्य में नव युग के सूत्रधार हुए अब तक साहित्य और समाज में जो विच्छेद पड़ा हुआ था उसे उन्होंने भरने का प्रयत्न किया शिक्षा प्रसार से इस समय समाज तो जाग्रत हो रहा था परंतु साहित्य अभी तक वही लकीर का फ़कीर चला आ रहा था भारतेन्दु जी ने देशभक्ति और समाज सुधार को काव्य का विषय बनाकर साहित्य और समाज के संबंध को दृढ़ किया, आपने अपने युग के अन्य लेखकों को भी प्रोत्साहन दिया,

भारतेन्दु युग विशेष रूप से कविता और गद्य दोनों क्षेत्रों का पूर्णांत नेतृत्व करता है भारतेन्दु जी ने कृष्ण भक्ति को काव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विषयरत्नाकर प्राचीन काव्य धारा की सरिता बहाई तो दूसरी ओर हिन्दी गद्य को विकसित करके उसमें नाटक, लेख, उपन्यास आदि का सूत्रपात कर साहित्य में नव जागरण के युग का सूत्रपात किया, भारतेन्दु जी और उनके सहयोगियों ने अनेक पत्र पत्रिकाये निकाल कर हिन्दी प्रचार का कार्य भी जोरों से किया, भारतेन्दु जी ने स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधनी' नामक एक पत्रिका भी निकाली,

नाटक का क्षेत्र जो हिन्दी साहित्य में शून्य पड़ा उसे भी भारतेन्दु जी ने अपनी प्रतिभा से सम्पन्न किया उपन्यास का तो अब तक हिन्दी में पता भी न था भारतेन्दु जी ने स्वयं तो कोई उपन्यास नहीं लिखा परंतु उन्होंने अपने सहयोगी विद्वानों को इस अभाव की पूर्ति में भी सँलग्न किया निबधों का आरम्भ भी भारतेन्दु के समय से ही हुआ, भारतेन्दु जी ने स्वयँ निबंध लिखे और इनके मित्रों ने भी इसमें खूब सहयोग दिया भारतेंदु युग क प्रमुख लेखक हैं— पं० प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, ठा० जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास, अम्बिकादत्त व्यास आदि आदि,

अत: स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग के साथ हिंदी साहित्य में नव जागरण का युग आया, क्या भाषा, क्या साहित्य, क्या गद्य क्या पद्य प्रत्येक क्षेत्र भारतेन्दु युग के उत्साही लेखकों की प्रतिभा से आलोकित हो उठा, भारतेन्दु जी के बारे में श्रीधर पाठक ने ठीक ही लिखा है—

'नित चंद सूर सम सुमिरिहैं, हरिश्चंद हु सज्जन सकल'

**प्रश्न २-** "भारतेन्दु की कविता रीति कालीन परम्पराओं से प्रभावित होने पर भी आधुनिक प्रवृतियों से अनुप्रमाणित है" इस कथन पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri


## उत्तर

भारतेन्दु दो युगों की संधि पर खड़े हैं उनकी भावधारा और विचार धारा में बहुत कुछ प्राचीन है परंतु नवीन भी कम नहीं हैं भारतेन्दु की शक्ति संबंधी रचनाओं के बाद उनकी रीति शैली की रचनाओं का स्थान है अन्नय भक्त होंने के साथ वे अन्य रसिक भी थे उनकी अनेक रचनाएं तो ऐसी हैं जो प्रत्यक्षतः रीति शैली के अन्तर्गत श्रृंगारिक रचनायें प्रतीत होती हैं हरिश्चंद्र को रीतिकाल की परम्परा में रखते हुए ब्रजभाषा की महिमा का गान करते हुए श्री सत्य नारायण कविरत्न ने लिखा है—

केशव अरु मतिराम विहारी देव अनूपम ।

हरिश्चंद्र से जासु कूल कुसुमित रसाल द्रुम ॥

उपर्युक्त कथन इस बात का साक्षी है कि भारतेन्दु रीति कालीन परम्पराओं से प्रभावित थे यद्यपि भारतेन्दु की रचनाओं में राधाकृष्ण तथा सामान्य नायक नायिकाओं की केलि क्रीड़ा पर आधारित संयोग वियोग पक्ष अथवा नायिका भेद का वर्णन हुआ है जैसे खंडिता; कृष्णाभिसारिका; अभिसारिका वासक सज्जा आदि नायिकाओं क वर्णन हैं तो भी उन्होंने न तो नायक नायिका भेद पर कोई लक्षण ग्रंथ लिखा और न रस, अलंकार और पिंगल पर वास्तव में भारतेन्दु रीति- कालीन कवियों की आचार्य परम्परा में न होकर केवल प्रेमकी परिपाटी ग्रहण करने वाले रसिक कवियोकी परम्परा में से थे। भाषा की दृष्टि से उन्होंने कवियों का अनुसरण नहीं किया। यद्यपि खोजने पर भारतेन्दु जी की रचनाओं में ऐसे कुछ उदाहरण भी यत्र-तत्र मिल जायेंगे जिनमें उन्होंने भाषा चमत्कार उत्पन्न करने की चेष्टा की है परंतु यह उनकी प्रमुख प्रवृत्ति न थी। वास्तव में भारतेन्दु जी रीतिकालीन परम्पराओं से प्रभावित तो थे परंतु वे एक नवीन युग के निर्माता होने के कारण आधुनिक प्रवृत्तियों से अनुप्रमाणित थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भारतेन्दु जी का ध्यान जहां एक तरफ मध्ययुगीन उपादानों की ओर गया; वहां उन्होंने मौलिक उद्‌भावनाओं को जन्म दिया। देश की नव जागृति; नवीन आकाँक्षाओं और नवीन चेतना की ओर भी आप का ध्यान गया। आपने साहित्य को लोक जीवन के समीप लाकर खड़ा कर दिया—आपने अपने देश के जीवन को देखा और समस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के नवीन रूपों पर दृष्टिपात कर उनका समावेश साहित्य में किया परन्तु भारत के प्राचीन गौरव को भी आपने न भुलाया। आपने सरकारी निरंकुशता का बराबर विरोध किया; इसके साथ आलसी, निरुद्यम कलहप्रिय और पतनोन्मुख देशवासियों को जीवन की चौमुखी उन्नति का संदेश सुनाया। वे सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों और कुप्रथाओं को मिटा देना चाहते थे। भारतेन्दु जी की राष्ट्रीयता का आधार हिन्दी भाषा की उन्नति थी—वे कहते थे—'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल'।

अतः स्पष्ट है कि भारतेन्दु की आधुनिक प्रवृत्तियों से भी अनुप्रमाणित थे।

प्रश्न ३—भारतेन्दु की हिन्दी सेवाओं के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कीजिये।

## उत्तर

भारतेन्दु जी हिन्दी के नवयुग के निर्माता थे। आपने हिंदी की जो सेवा की वह साहित्य के इतिहास में सदैव अमर रहेगी आपने हिन्दी को लोक जीवन के बराबर लाकर खड़ा कर दिया। आपके अविर्भाव के समय समाज तो आगे बढ़ रहा था परन्तु हिन्दी अपनी पुरानी चाल पर ही चल रही थी। आपने उस समय हिन्दी भाष को नवीन प्रवृत्तियों से अनुप्रमाणित कर उसकी साहित्यिक प्रगति का द्वार खोल दिया। सर्व प्रथम आपने बंगला साहित्य से प्रेरणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


पाकर सन् १८२५ में 'विद्यासुंदर' नाटक का बंगला से अनुवाद किया। इस अनुवाद में ही आपने हिंदी गद्य को बहुत हीं सुडौल रूप दिया। इसी वर्ष आपने 'कविवचन सुधा' पत्रिका निकाली जिसमें पुराने कवियों की कविताओं का प्रकाशन होता था; पीछे गद्यलेख भी छपने लगे। सन् १८३० में 'हरिश्चंद्र मैंगजीन' जो आगे चलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के नाम से विख्यात हुई, पत्रिका आपने निकाली। हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप इसी 'चंद्रिका' में सर्वप्रथम पकट हुआ 'चंद्रिका' में स्वयं लिख कर भारतेंदु जी हिंदी की सेवा करते थे परंतु वे अनेक नवीन लेखकों को भी उत्साह देकर तैयार करते थे आपसे प्रभावित कतिपय लेखक ये हैं, जो हिंदी साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं—

बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बाबू तोता राम, मोहनलाल विष्णुलाल पंडा, राधाचरण गोस्वामी, बदरी नारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास आदि।

अपनी सेवाओं से भारतेंदु जी ने हिन्दी में नाटक, कविता एवं गद्य इन तीनों क्षेत्रों में नवयुग ला दिया यद्यपि सबसे अधिक रचना आपने नाटकों की ही की थी पर हिन्दी साहित्य के सर्वतोमुख विकास की ओर भी आप बराबर दत्तचित्त रहें। अपने पिछले दिनों में आप उपन्यास लिखने की ओर प्रवृत्त हुए थे, पर चल बसे। आप सिद्ध वाणी के अत्यंत सरस हृदय कवि थे। आपके कवित्त और सवैए आपके जीवन काल में ही चारों ओर लोगों के मुंह से सुनाई पड़ने लगे और दूसरी ओर स्वदेश प्रेम से भरी हुई कविताऐं चारों ओर देश के मंगल का मंत्र सा फूंकने लगी। वास्तव में भारतेंदु ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से हिंदी में नवयुग का सूत्रपात किया। मातृभाषा हिंदी के आप सबसे बड़े समर्थक थे। आपका कहना था—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन; रहत हीन के हीन ॥

× × ×

निज भाषा उन्नति अहै सब उनति को मूल।
विन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥

यह आपकी हिन्दी सेवा का सबसे बड़ा प्रमाण है कि आपने ३५ वर्ष की अल्पायु पाने पर भी करीब १७५ ग्रंथों का प्रणयन किया और आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य के तो आप जन्म दाता माने जाते हैं। वास्तव में आपने जो हिंदी सेवा की उसी के फल-स्वरूप हिंदी संसार ने आपको भारतेंदु' की उपाधि दी।

प्रश्न—४. पठित सामग्री के आधार पर भारतेन्दु के प्रकृति चित्रण की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

भारतेन्दु जी के जीवन और उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनका मन भारतीय मानव में ही रमा हुआ था। प्रकृति की ओर उसका विशेष ध्यान नहीं गया था। उनकी रचनाओं में विशुद्ध प्राकृतिक वर्णनों का सर्वथा अभाव मिलता है। अपनी पुस्तक 'चयनिका' में भारतेन्दु द्वारा लिखित 'यमुना छवि' के अन्तर्गत भी प्रकृति का चित्रण परम्परा युक्त ही दिखाई पड़ता है। उसमें उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार है, जिससे ऐसा लगता है कि मानों कवि का मन प्रस्तुत प्राकृतिक वस्तुओं पर रमता नहीं था, हट हट जाता था, जैसे—

तरनि-तनूजा तट तमाल-तरवर बहु छाये।
झुके कूल सो जल परसन हित मनहु सुहाये ॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज शोभा
कै प्रनवत जल, जानि परम पावन फल लोभा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


यहां पर हमें उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की छटा बिखरी हुई दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार वृन्दावन की शोभा का चित्रण करते हुए भी आप ने वहाँ की प्रकृति की ओर अधिक आकृष्ट न होकर कल्पना का सहारा लेकर उत्पेक्षा अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

वृन्दावन शोभा कछु वरनि न जाय मोपे।
नीर जमुना को जहँ सोहे लहरत सौं॥
चाँदनी में कमलकली के तरें बार बार
'हरिश्चन्द्र' प्रतिबिम्ब नीर माहि बगरत सो।
मान के मनाइवे को दौरि दौरि प्यारो आज
नवल बधू के मानो पायन परत सो।

बाबू हरिश्चन्द्र का प्रकृति चित्रण रीति कालीन परम्परा के अनुसार उद्दीपन के रूप में मिलता है। वैसे तो उन्होंने अधिक प्रकृति का वर्णन किया भी नहीं, परन्तु जहां भी किया है वह स्वतंत्र न होकर उद्दीपन मात्र है। पावस ऋतु का चित्रण भी उद्दीपन के रूप में करते हुए आप पावस को 'मसान' ही बना देते हैं और बिजली की चमक को 'चिता' के रूप में देखते हैं—

चपला की चमक चहूंधा सो लगाई चिता
चिनगी चिलके पटवीजना चलायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरे हूँ यह,
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

इसी प्रकार शरद ऋतु के चित्रण में शरद की विशेषताओं और विकसित प्रकृति पर दृष्टिपात न कर आप शरद की उपमा शिव से देने में ही अपनी प्रतिभा व्यय कर देते हैं। अत; हम कह सकते हैं कि यद्यपि आपने प्रकृति के चित्र उतारे तो हैं परन्तु इसमें आपको विशेष सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता है कि मानव प्रकृति से वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इतने अधिक प्रभावित थे कि नैसर्गिक शोभा की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया और यदि गया भी, तो उन्होंने उसके अन्तर्गत भी मानव प्रकृति का ही चित्रण किया।

प्रश्न—५. भारतेन्दु की काव्य-साधना की विशेषतायें बताइये।

## उत्तर

भारतेन्दु जी की काव्य साधनों में हमें निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टि गोचर होती हैं—

(१) भक्ति और रीति काल के प्रभावों के साथ आपने ईशभक्ति और समाज सेवा के नए द्वार खोले। वास्तव में आप के विस्तृत काव्य की चार धारायें हैं—(१) भक्ति प्रधान (२) शृंगार प्रधान (३) देश प्रेम प्रधान और (४) सामाजिक समस्या प्रधान कृष्ण भक्ति काव्य के जितने भी अंग है, उन सब पर आपने कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। इस सम्बन्ध में उनके लगभग ड़ेढ़ हजार पद मिलते हैं शृंगार प्रधान रचनायें कवित्त और सवैयों में पायी जाती हैं जिनमें उनके हृदय की सरसता भरी हुंई हैं। इस दृष्टि से आप पदमाकर, घनानंद और रसखान की श्रेणी में आते हैं। आधुनिक प्रवृत्तियों से अनुप्रमाणित आपका साहित्य देश प्रेम और समाज सुधार से भरपूर हैं।

(२) आपने पद्य के साथ गद्य को पर्याप्त रुप में अपनाया और अपने विचार प्रकाशन के लिये नाटकों का सृजन किया। गद्य की भाषा का तो आपने पूर्ण रुप से परिष्कार किया। आप की भाषा न तो लल्लूलाल का ब्रज भाषापन आने पाया न मुन्शी सदासुख में पंडिताऊपन, न सदल मिश्र का पूरबीपन, न राजा शिव प्रसाद का उर्दूपन। इतने पनों से एक साथ पीछा छुड़ाकर आपने गद्य की भाषा का संस्कार कर नवयुग का सूत्रपात्र किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(३) भारतेन्दु जी ने कविता के लिये साहित्यिक ब्रजभाषा को ही अपनाया किन्तु कुछ कविता उर्दू और खड़ी बोली में भी की ब्रज भाषा में से आपने अप्रचित शब्दों को निकाल कर बोल चाल के शब्दों को स्थान दिया। आपके काव्य का विषय था राधा कृष्ण का प्रेम। आपने प्रेम के सयोग और वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण किया है।

(४) आपके काव्य में संगीत का भी सुन्दर समावेश हुआ हैं।

[५) भारतेन्दु जी का ध्यान शब्द वैचित्रय की ओर अधिक रहा उनको उर्दू की जबां दानी से प्रेम था।

(६) भारतेन्दु जी आशु कवि थे। एक एक दिन में वे पुस्तक लिख डालते थे, इससे उनकी उत्सुकता और उत्साह का पता चलता है।

(७) आपके काव्य में प्रेमतत्व की प्रधानता मिलती है। इनकी कतिपय गीत पुस्तकें 'प्रेम फुलवारी' 'प्रेम तरंग' आदि प्रेम रस से परिपूर्ण हैं लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम का आपने बड़ा नर्म स्पर्शी वर्णन किया हैं। 'बिना प्रान प्यारे भये दरस तिहारे हाय। देख लीजो आंखें ये खुली ही रहि जायेंगी'—आदि पंक्तियों से इनके प्रेम की पराकाष्ठा का आभास मिलता हैं।

(८) आपने राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति का उपर्युक्त सांमजस्य साहित्य द्वारा किया। आपका 'भारत दुर्दशा' नाटक आपकी राष्ट्रीय भावना का ज्वलंत उदाहरण है 'नील देवी' लिखकर आपने जातीय भावों की उत्कृष्टता का परिचय दिया और भारतीय रमणियों की चतुरता प्रमाणित की।

प्रश्न ६ 'भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी साहित्य के बैकल्पिक थे'—इस कथन को सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

## उत्तर

'भारतेंदु आधुनिक हिंदी माहित्य के वेतालिक थे' इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कथन को सिद्ध करने से पूर्व वैतालिक' शब्द का अर्थ समझ लेना आवश्यक है: वैतालिक' वंदीजन या भाट को कहते हैं जो राजा महाराजाओं का यशोगान करते हैं। भारतेंदु किसी राजा महाराजा के वैतालिक नहीं थे. वे तो हिंदी साहित्य के नव युग के वैतालिक थे उन्होंने साहित्य का मधुर गान इतने उच्च स्वर से किया कि जनता और साहित्य सेवियों में नव जागृति की लहर दौड़ गई। आपका युग हिंदी साहित्य में नव जागरण का युग माना जाता है और 'भारतेंदु युग' के नाम से ही प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात प्रथम प्रश्न का उत्तर पढ़िये जो इस बात को सिद्ध करता है 'भारतेंदु युग' हिंदी साहित्य के नव जागरण का युग था इस युग के सूत्रधार भारतेंदु होंने के कारण हम उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का वैतालिक निःसकोच कह सकते हैं।

प्रश्न ७ भारतेंदु की भाषा और शैली के सम्बंध में आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उतर

भारतेंदु जी ने काव्य भाषा को सुव्यवस्थित शिष्ट और निखरा हुआ रूप दिया। उनके समय तक के कविगण प्राचीन परम्परा गत काव्य की जिस ब्रजभाषा को अपनाते चले आते थे, उसमें कितने ही शब्द अपभ्रंश काल के भी प्रयुक्त किये ज.ते थे जिनका बोल चाल में से प्रयोग बिल्कुल उठ गया था। भारतेंदु जी ने ऐसे पड़े खड़े शब्दों को बिल्कुल निकाल बाहर किया और इस प्रकार काव्य भाषा को परिमार्जित कर उमें चलता हुआ रूप दिया। भारतेंदु जी की भाषा में स्वच्छंदता तथा सजीवता विशेष रूप से पाई जाती है। भाषा पर भारतेंदु जी का अधिकार भी खूब बढ़ा चढ़ा हुआ था इनकी प्रायः सभी कविता ब्रजभाषा में हैं इनकी भाषा मे मुहाविरों का बहुत प्रयोग है भाग भर्ती के शब्द अपनी कविता में नहीं लाये हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भाषा को सुव्यवस्थित करने का तो इन्होंने बीड़ा ही उठाया था; तब वे अपनी भाषा को कैसे अव्यवस्थित होने देते।

खड़ी बोली की ओर भी आप झुके, पर उसमें ये अपना काव्य कौशल नहीं दिखा सके, हां गद्य में इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग किया और उसका स्वरूप भी विकसित किया। गद्य का प्राचीन स्वरूप जो पंडिताऊपन से युक्त था उसका आपने परिष्कार किया, उन्होंने संस्कृत शब्दों का योग करके भी भाषा को सुबोध रखा और अरबी, फारसी के शब्दों के आने पर भी उर्दू पन न आने दिया। उनका भाषा संस्कार शब्दों की कांट छांट तक ही नहीं रहा, वाक्य विन्यास में भी वे सफाई लाये। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आप आधुनिक हिंदी गद्य के भी निर्माता थे।

आपकी शैली भाव के पीछे २ चलती है। सामान्य विवरणात्मक शैली के अतिरिक्त आपकी शैली प्रधान रूप से दो प्रकार की मानी जा सकती है। पहली भाषा शैली तो विवेचनात्मक है जिसके द्वारा आपने गवेषणापूर्ण और सामान्य गंभीर विषयों का निरूपण किया। उनके ऐतिहासिक अथवा पुरातत्व सम्बन्धी ग्रंथों तथा लेखों में इस प्रकार की भाषा शैली के दर्शन होते हैं। दूसरे प्रकार की शैली भावावेश पूर्ण है जिसके उदाहरण हमें उनकी नाटकीय कृतियों में मिलते हैं। चन्द्रावली तो भावावेश पूर्ण शैली में लिखी ही गई है परन्तु अन्य नाटकों में भी इस शैली के बराबर उदाहरण मिलते हैं। इन दो प्रधान शैलियों के अतिरिक्त उनकी हास परिहास पूर्ण व्यंग्यात्मक और कवित्व पूर्ण अथवा आलंकारिक शैलियों के भी दर्शन होते हैं।

कुछ परीक्षोपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये—

(१) तरनि तनूजा.................नैनमन सुख लहत।

(देखो यमुना छवि-पद संख्या १)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(२) कबहुँ होत सत ...................... जल आवता।

(देखो यमुना छवि पद संख्या ४)

(३) सम्हारहु अपने ........ ..... हरिचंद की बारी।

(देखो भगवदाश्रय पद संख्या २)

(४) हरितन करुना ........ .......... उमगि हरनाई।

(देखो हरिकृपा पद सख्या ३)

(५) इन दुखियान को ........................ रहि जायंगी।

(देखो विरह वेदना पद संख्या २)

(६) वृंदावन सोभा ......................... परत सो।

(देखो वृन्दावन की शोभा पद संख्या ३)

(७) चपल की चमक .................. बनि आयो है।

(देखो पावस ऋतु पद संख्या ४)

## दसः अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

पृष्ठ—६७

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

परिचय—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सं० १९२२ में आजमगढ़ जिले के निजामाबाद गांव में हुआ। मिडिल पास करने पर, यद्यपि आपने काशी के क्वीन्स कालिज में अध्ययन प्रारम्भ किया पर स्वास्थ ठीक न रहने के कारण आपको अध्ययन छोड़ना पड़ा और घर पर ही संस्कृत, फारसी और बंगला का अध्ययन किया। इसी समय निजामाबाद के एक प्रतिष्ठित नानक पंथी साधु बाबा सुमेर सिंह से आपका सम्बन्ध हो गया। उनके संपर्क में आकर आप कविता लिखने लगे। सच पूछां जाय तो बाबा सुमेर सिंह ही आपके कविता गुरू थे। प्रारम्भ में आपने अध्ययापन कार्य किया और फिर कानूनगो की परीक्षा पास कर आप कानूनगो हो गये। स० १९८० में आपने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



महामना मालवीय जी के अनुरोध से हिन्दू विश्व-विद्यालय में हिन्दी के अध्यापक होकर चले गये। इस पद पर आपने सं० १९९८ तक कार्य किया। आपका देहान्त स० २००३ में हुआ।

उपाध्याय जी का कविता का नाम 'हरिऔध' था। आपकी रचनाओं पर मुग्ध होकर हिन्दी संसार ने आपको 'कवि सम्राट' की उपाधि से विभूषित किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपके 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य पर मंगला प्रसाद पारितोषिक भी प्रदान किया।

रचनायें— पद्य—

(अ) खड़ी बोली में— (१) प्रिय प्रवास (२) वैदेही वनवास (३) पारिजात (४) पद्य प्रमोद।

(ब) बोल चाल की भाषा में—(१) बोल चाल (२) चुभते चौपदे (३) चोखे चौपदे।

(स) ब्रजभाषा में—(१) रस कलश (२) फुटकर रचनायें।

गद्य

(१) ठेठ हिन्दी का ठाठ (२) अधखिला फूल (३) वेनिस का बांका (अनुदित) (४) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास।

साहित्य में स्थान—हरिऔध जी द्विवेदी युग के प्रमुखतम कवि हैं। प्रिय प्रवास की रचना करके आपने आधुनिक हिन्दी का प्रथम महाकाव्य दिया। आपका शब्द ज्ञान बड़ा विस्तृत था ऐसा अनुमान किया गया कि आधुनिक हिन्दी लेखकों में आपने जितने शब्दों का प्रयोग किया है उतने शब्दों का और किसी ने नहीं किया। आपकी मौलिकता एवं प्रतिभा उच्च कोटि की है। हिन्दी साहित्य में आपका विशिष्ट स्थान है और हिन्दी प्रेमियों के लिये आप अत्यन्त आदर के पात्र हैं। आपकी कवित्व शक्ति महान थी जिसके कारण हिन्दी संसार में आपका स्थान अद्वितीय है। आपकी महानता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



परिचय आपको प्रदान की गई कवि सम्राट उपाधि से पूर्णतः मिलता है।

## टीका

पृष्ठ ६७

भारत गौरव— (रस कलस से)

(१) कैसे सुर सरि.................. बसुन्धरा।

शब्दार्थ—सुर सरि = गंगा; सुर = देवता; कासी = काशी; मेदिनी = पृथ्वी; अरुचिर = असुन्दर; दारु = काठ देवदारु; चारु-चंदन = सुन्दर चदन; कंचन = स्वर्ण, सोना; कलेवरा = शरीरवाली; सैल = पर्वत; हिमालय. सुता = पुत्री; सिता = चांदनी, सुधारस सहोदरा = अमृत रस की बहन; बसुधा = पृथ्वी; बसु या धन देने वाली; बसुन्धरा = पृथ्वी; सिद्ध-भूमि = वह भूमि जहाँ शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।

अर्थ—कवि भारत की पृथ्वी का गौरव गान करता हुआ कहता है—यदि भारत भूमि शीघ्र ही सिद्ध दाता न होती—तो इस बसुधा का यह गुण कैसे ज्ञात होता कि यह वास्तव में बसु या धन, रत्न धारण करने वाली है, तो कैसे इस भूमि पर बहने वाली गंगा राक्षसों को भी देवता बना देती और काशी किस प्रकार से मनोहर और मुक्ति दाता पृथ्वी बनती असुन्दर काठ भी सुन्दर चन्दन के रूप में कैसे परिवर्तित हो जाता और कांच से युक्त भूमि भी किस प्रकार स्वर्ण शरीर वाली बन जाती, 'हरि औध' कहते हैं—कि हिमालय किस प्रकार पार्वती सी पुत्री प्राप्त करते और चाँदनी भी कैसे अमृत रस की बहिन के रूप में सुशोभित होती अर्थात् अमृत की सी शीतलता को धारण करने वाली चांदनी इस भूमि के कारण ही सुशोभित होती है, भूमि के अभाव में वह अपनी शोभा कहां बखेरती ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**आकाश के तारे—**

(२) किधौं है अनंत············ ···नभ तारे हैं।

शब्दार्थ—किधौं=अथवा, या; अनंत=आकाश; लोचन=नेत्र; नंदन-विपिन=इन्द्र का स्वर्ग स्थित उपवन, दिव्य=सुन्दर; कल्प पादन=कल्प वृक्ष; पुंज=समूह; पतंगय=पतंगे, पसारे=फैले।ये 'पारे=चाँदी के समान चमकने वाली एक प्रसिद्ध तरल धातु जिसे अंग्रेजी में 'Mercury' कहते हैं; अनल=अग्नि; पिंड=गोल टुकड़े।

संकेत—कवि आकाश के तारों का वर्णन करता है—

अर्थ—या तो ये आकाश में उनके उड़ते हुए वायुयान हैं, अथवा प्रकृति वधू के नेत्रों के तारे हैं. अथवा ये नंदन वन के वृक्षों के सुन्दर फल हैं अथवा कल्प वृक्ष के अत्यंन्त प्रिय पुष्पों के समूह हैं, अथवा ये देवताओं के सुदंर विमान हैं, या अनेक उड़ती हुई पतंगे हैं, या ये सब पतंगों के समूह उड़ रहे हैं, अथवा ये अनेक बिखरे हुए रत्न हैं या पारे के सुंदर सजे हुए गोलाकार टुकड़े हैं या अग्नि के अंगारे हैं या इन सबसे न्यारे ये आकाश के तारागण ही हैं।

**आकाश दर्शन—('पारिजात से')**

(१) होता ज्ञात नहीं ······················ क्रोश के।

शब्दार्थ—अविज्ञात=जो ज्ञात न हो; विस्तार-निस्तार=आर पार; दहले=भयभीत हो; केतु=तारे; कोटिश:=करोड़ों; क्रोश=कोस

संकेत—कवि यहां पर 'पुच्छलतारों का वर्णन करता है। पुच्छलतारे से एक विशेष प्रकार के तारे का बोध होता है जिसके पूँछ होती है। यह पूंछ करोड़ों मील लम्बी होती हैं।

अर्थ:—ये तारे भी अति विचित्र हैं जिनकी पूछ करोड़ों कोस लम्बी होती हैं। ये अविज्ञात, से है क्यों कि इनका भेद आज तक किसी को पूर्णत: ज्ञात नहीं हुआ। कोई भी इनकी गति और इनके आर पार का पता नहीं मालूम कर सका है। इनको देख कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



क्यों न चित में उत्कंठा जाग्रत हो और क्यों न चित्त भयातुर हो? अर्थात् इनका विचित्र स्वरूप देख कर स्वतः चित भयभीत हो जाता है और इनके प्रभाव को जानने की एक उत्कंठा जाग्रत हो जाती है।

विशेषः- पुच्छल तारों का प्रकट होना अशुभ माना गयाहै इसी कारण इन्हें देख कर मानव भयातुर और उत्कंठित हो जाता है।

पृष्ठ-६८

(२) क्रीड़ाये................ .... दृश्यावली।

शब्दार्थः—अवलोक=देखना; अनल=अग्नि; कला की कला तेज के कौतुक; ज्योतिभूति=ज्योति का वैभव; लोचन=नेत्र; मुग्धता=मुग्ध होने का भाव; उल्का=टूटता हुआ तारा; कल केलि=सुन्दर क्रीड़ा; व्योम तल=आकाश; दिव्य=सुन्दर, अलौकिक;

संकेतः—इस पद्यांश में कवि उल्का सौन्दर्य का वर्णन करता है।

अर्थः—अनेक क्रीड़ायें भी देखीं और अग्नि के तेज के भी अनेक कौतुक देख लिये। प्रकाश का वैभव भी देखा परन्तु कहीं भी ऐसी शोभा नहीं देखी जो उल्काओं में दृष्टिगोचर होती है। ऐसे कौन से नेत्र हैं जो इन उल्काओं को देख कर मुग्ध नहीं होते। उल्काओं की सुन्दर क्रीड़ायें आकश में अलौकिक दृश्य उपस्थित करती हैं। अतः इनको देख कर सब के नेत्र मुग्ध हो जाते हैं।

राम की शोभा—(वैदेही वनवास से—)

(१, २) जय जय .......... ......अति अभिराम।

शब्दार्थः— लोक ललाम=संसार के आभूषण अर्थात् संसार को अलंकृत करने वाले; नीरद=बादल; शुक्ति=सीपी (जिसमें से मोती निकलता है); सृजन करना=निर्माण करना; न्याय-मुक्ता-दाम=न्याय रूपी मोतियों की माला; दाम=माला; द्युति=आभा;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दिवसनाथ = सूर्य; भुवन = जगत; भाल = मस्तक; अभिराम = सुन्दर ।

अर्थ:—नवल श्यामल मेघ के समान समस्त संसार को अलंकृत करने वाले राम ! तुम्हारी जय हो जय हो ।

सिर पर शक्ति का प्रतीक मणि मुकुट धारण करने वाले राजा राम की नीति सीपी के समान है जो मन को हरने वाली न्याय रूपी मोतियों की माला का सृजन करती है तात्पर्य यह है कि राम की राजनीति न्याय का सृजन करती है ।

सूर्य के समान अलौकिक आभा से देदीप्यमान होता हुआ राम का अत्यन्त सुन्दर उन्नत मस्तक है । यह संसार के समस्त अन्धकार एवं अज्ञान के लिये कालवत् है ।।

मुद्रण शुद्धि—'शिरमणि मुकुट के' के स्थान पर 'शिरमणि मुकुट की' छपना चाहिये ।

(३, ४) गंड मडल ·· ··· ············ संग्राम ।

शब्दार्थ:—गड मंडल = कनपटी; बिलम्बित = लटकते हुए; कान्त = सुन्दर; केश कलाप = केश राशि; उरग = सर्प; उरग गति = वक्र-गति; मति-कुटिलता; = कुटिल बुद्धि; शमन = दमन; दाम = जाल फन्दा; कलंक कदन = कलंक का नाश करने वाली; भ्रू = भौंएं; अवलोक = देख कर; शामित = शान्त;

अर्थ:—भगवान राम की कनपटी पर सुन्दर बालों की राशि लटकी हुई है । ये केश राशि सर्प के समान टेढ़ी चाल चलने और कुटिल बुद्धि वालों का दमन करने के लिये दृढ़ जाल रूप है ।

अनेक कलंक अथवा पापों को नष्ट करने वाली, धनुष के समान टेढ़ी भगवान राम की भौंओं को देखकर हृदय में मद और मोह दल में होने वाला युद्ध सर्वदा शान्त हो जाता है ।।

(५, ६) कमल से··· ·· ········ ··· परिणाम ।

शब्दार्थ:—अनुराग रंजित = प्रेम में रंगे हुए; करुण कटाक्ष = करुणा भरी चितवन; प्रपंची = छली; विश्रान्त = थके हुए;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थः भगवान राम के नेत्र कमल के समान लाल प्रेम में रंगे हुए हैं। (प्रेम का रंग लाल होता है) उनके इन नयनों की करुण चितवन् इस छली संसार के छलों से थके हुये मनुष्यों के लिये एक विश्राम स्थल के समान है।

किन्तु भगवान राम स्वयं अपने नेत्रों से प्रबल अत्याचार करने वालों को देख लेते हैं और उस समय उनके नेत्र पापिओं को पाप का परिणाम देने वाले बन जाते हैं।

(७,८) हैं उदार.......................ललित निकाम।

शब्दार्थ—उदार प्रवृति रत=उदार स्वभाव वाले, अनुरक्त=लीन; युगल=दो; लसित=सुशोभित; श्रुति=कान: सरस=सुन्दर; प्रफुल्ल=विकसित; दृग विकासक=नेत्रों को प्रसन्न करने वाले; निकाम=बहुत अधिक।

अर्थ—राम के शोभा के भंडार दोनों कान सुंदर दो कुंडलों से अलंकृत होकर सर्वदा उदार प्रवृत्ति के कार्यों में लीन रहते हैं और दूसरे का दुख सुनने में लीन रहते हैं।

भगवान राम के सुन्दर कपोल गुलाब के फूल के समान विकसित रहते हैं, वे नेत्रों को आनद देने वाले हैं अपूर्व वैभव से मंडित हैं और अत्याधिक सुंदर (ललित) हैं।

पृष्ठ ६६

(९.१०) उच्चता है.......................अविराम।

शब्दार्थ—निरत=लगी हुए; आरक्त=लाल; अनुरक्ति=प्रेम अविराम=निरंतर।

अर्थ—भगवान राम की नासिका निष्काम भाव से श्वाँस रक्षा के कार्य में लगी रहती है और स्वयं ऊंची रह कर उनके हृदय की उच्चता को प्रकट करती है।

भगवान राम के अधर लाल हैं क्योंकि उनमें प्रेम भरा हुआ है और जो निरंतर बचनों द्वारा मधुर रस की वर्षा करते रहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(११,१२) दंत पंक्ति ............ बसुयाम।

शब्दार्थ—मुक्तावलि=मोतियों की पंक्ति; दिव्य=सुंदर; चमत्कारक=चमत्कार पूर्ण; वदन=मुख; अरविन्द=कमल; इन्दु=चन्द्रमा, बसुधाम—दिन रात।

अर्थ—अमूल्य मोतियों की पंक्ति की समान भगवान राम की सुन्दर दतावलि हैं। ये दांत अत्यंत चमत्कार पूर्ण कार्य करते हुए सदा चमकते रहते हैं।

भगवान राम का मुख सुन्दर कमल के समान भव्य है जिस की आभा चद्रमा जैसी है। उनकी कोमल या मधुर हंसी दिन रात अमृत की वर्षा करती रहती है।

(१३,१४) हैं कपोत समान.............अमर आराम।

शब्दार्थ—कपोत=कबूतर; कम्बु=शंख; वरद=बर देने वाले, शुभ, सुख=सुन्दर ध्वनि; विधि=विधाता; वाम=विरुद्ध; पूत=पवित्र; दिव=स्वर्ग; अमर=देवता।

अर्थ—भगवान राम का कंठ कबूतर के समान है; परन्तु वह शब्द करने में शंख के समान है। उनके कंठ के मधुर शब्द जो सुन लेता है उसके विधाता यदि विरुद्ध भी होता है तो वह भी शुभ बन जाता है।

भगवान राम का अति पुष्ट विशाल वक्ष स्थल है जो अत्यंत प्रशंसित और पवित्र भी है। यह वक्ष स्थल उनके स्वर्ग के समान शरीर में देवताओं को आराम या सुख देने वाला है भाव यह है कि देवता भगवान राम के पुष्ट वक्ष स्थल को देख आनद मग्न होते हैं क्योंकि उन्हें इस बात का दृढ़ विश्वास है कि भगवान राम अपनी शक्ति से अवश्य दानवों का विनाश कर सकते हैं।

(१५-१६) विपुल वल ...... ...अदभुत नाम

शब्दार्थ—आजानु=घुटनों तक आने वाली, गुण-ग्राम=गुणों के समूह, उदात्त=उद्धार; मय=मुख,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ - घुटनों तक आने वाली सुंदर बाहें अत्यंत बल या शक्ति का अवलम्ब हैं अर्थात शक्ति को धारण करने वाली हैं इन बाहुओं के गुण समूह अत्यंत वैभव के आधार हैं अर्थात अनेक गुणों से युक्त भगवान राम की भुजाएं महान वैभव का अर्जन करती हैं।

समान न्यूनता (कमी) की पूर्ति करने वाला राम का उदार भावों में पवृत्त सुंदर मुख है यह सरसता से परिपूर्ण करता है इसी सरसता को ग्रहण करने वाला संस्थान उदर नाम की अपूर्व संज्ञा को ग्रहण किये हुए हैं।

(१७,१८) है सरोरुह.............................. हैं राम

शब्दार्थ—सरोरुह=कमल; रुचिर=सुंदर; निलय=घर; मूर्तिमत=साकार, मंजुता=सुंदरता, अवलम्ब=आश्रय, कंदप= कामदेव, कमनीयतम=सबसे अधिक सुन्दर।

अर्थ—आपका मुख कमल सा सुन्दर है और यही भक्तों का सब कुछ है, यह अत्यंत पवित्र और उन्नति का आगार है। हे साकार देव राम! आपके चरणों को बार २ प्रणाम प्रस्तुत है।

भगवान राम संसार को मोहित करने वाले हैं और सुन्दरता के आश्रय हैं, वे करोड़ों कामदेवों से भी अधिक सुन्दर हैं।

लोक-सेविका राधा— (प्रिय प्रवास से)

प्रारम्भिक संदर्भ संकेत—जब श्री कृष्ण मथुरा चले जाते है तो गोकुल में गोप तथा गोपियों और नंद और जशोदा की विरह

नित्य प्रति बढ़ती जाती है। राधा की भी विरह वेदना कम नहीं थी परन्तु वे सहिष्णु बन कर सब विरह व्यथित जनों को धैर्य बधाती हैं और जन जन की सेवा करती हैं। कवि ने यहाँ पर राधा का वही लोक सेविका का रूप प्रस्तुत किया गया है।

[१] राधा जाती.............................वितातीं।

शब्दार्थ - नंदांगना=नंद की स्त्री—यशोदा; बोध=चेतना; विपन्ना=दुखी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अर्थ—राधा प्रति दिन माता यशोदा के पास जाती थी और अनेक प्रकार की धीरज बंधाने वाली बातें कह कर उन्हें चेतना, प्रदान करती थी। यदि कृष्ण के विरह में वे कभी अत्यन्त व्याकुल मूर्च्छित या दुखी हो जाती थी तो राधा आठों पहर उनकी सेवा में ही व्यतीत करती थी।

पृष्ठ—१००

(२) घंटो लेके……………… …..पोंछ देती।

शब्दार्थ— जतन=प्रयत्न; युगल दृगके=दोनों आंखों के; वारि=पानी।

अर्थ—राधा कृष्ण की माता यशोदा को घंटो गोद लेकर बैठि रहती थी और उन्हें शोक मग्न जानकर अनेक प्रयत्न करती थी—कभी धीरे धीरे उनके चरणों को सहलाती थीं और कभी कभी उनके मन की पीड़ा को दूर कर अपने हाथों से उनकी दोनों आँखों से बहते हुये जल को पोंछ देती थी।

(३) हो उद्विग्ना परम………………कैसे तजेंगें।

शब्दार्थ—उद्विग्ना परम=अत्यन्त व्याकुलता; जीवनाधार =जीवन के आधार; विनीता=विनम्र;

अर्थ—जब अत्यन्त व्याकुल होकर यशोदा यह पूंछती थी कि मेरे प्राणों के आधार कृष्ण क्या कभी व्रज लौटकर नहीं आवेंगे तो राधा अत्यन्त नम्रता के साथ धीरे धीरे अपने मधुर स्वर में यशोदा से कहती थी– हां, कृष्ण अवश्य आवेंगे; श्याम व्याकुल व्रज का त्याग कैसे कर सकते हैं।

(४) आता ऐसा कथन…………. …न बेटी।

शब्दार्थ—वारि=जल; खिन्न=दुखी।

अर्थ—यह कहते कहते, यदि राधा की आँखों में आंसू भर आते और बूंद बूंद करके वे कपोलों पर टपक पड़ते तो यशोदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



राधा की आंखों से प्रकट दुख को देख पाने स्वयं धीरे से कहती थी—'हे बेटी' ! तू इस प्रकार दुखी मत हो" ।

(५) होके राधा........................दृगों में ।

शब्दार्थ—युगल=दो; पुलक=रोमांच; चारू=सुन्दर; बारि=पानी ।

अर्थ—राधा तब अति विनम्र होकर कहती थी—मैं रो नहीं रही हूँ, मेरे दोनों नेत्रों में आनन्द जल भर आता है। आपकी सुख दायिनी सेवा करके जो मुझे रोमाँच होता है, वही नेत्रों में जल द्वारा अभिव्यक्त हो जाता है ।

(६) वे थीं प्राय:........................सुनातीं ।

शब्दार्थ—व्रज नृपति=नंद; उत्कंठ=उत्सुक; स्वकर=अपना हाथ; कलांतियाँ=शिथिलता, विभवजग—साँसारिक वैभव या ऐश्चर्य;

अर्थ—राधा बहुधा अत्यंत उत्सुकता के साथ राजा नन्द के पास जाती थी और अपने हाथों से ही उनकी अनेक सेवायें करके उनकी शिथिलता को दूर करती थी। बातों ही बातों में वे नंद को इस साँसारिक ऐश्वर्य की तुच्छता समझाती थी और यदि वे कृष्ण के विरह में अति व्याकुल होते, तो फिर राधा अनेक शास्त्र पढ़कर नँद को सुनाती थी।

(७) होतो मारे........................भूरि गंभीरता से ।

शब्दार्थ—किम्वा=अथवा, चलत=यत्न पूर्वक, भूरि=अत्यन्त ।

अर्थ—यदि कहीं पर गोपों की कोई टोली अपने मन को मारे हुई बैठी होती अथवा कोई गोप ही विरह व्यथित, राधा को दिखाई देता, तो यत्न पूर्वक राधा उनको अनेक कार्यों में संलग्न करने का प्रयत्न करती थी और अत्यन्त गंभीरता के साथ ये बातें कहती थी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(८) जी से.............. ........ प्रेमिकों के।

शब्दार्थ—प्राणेष=प्राणों के ईश-कृष्ण, भू=पृथ्वी, खिन्न=दुखी, उद्योगी=कर्म शील।

अर्थ—यदि प्राणेश श्री कृष्ण को आप हृदय से प्रेम करते हैं, तो इस पृथ्वी पर मनुष्य का शरीर पाकर इस प्रकार खिन्न होकर बैठ जाना उचित नहीं है। आप सबको कर्म शील बनना चाहिये, और अत्यन्त रुचि के साथ उन कार्यों को पूरा कीजिये जो विश्व में परम प्रिय कृष्ण के प्रेमियों को प्यारे लगते हैं।

पृष्ठ १०१

(९) जो वे होता... .. ........तद्गता हो।

शब्दार्थ:—मलिन=खिन्न; लखती=देखती; रचित=बनाये हुए, तद्गता=तद्रूप, उसी में लीन हो कर।

अर्थ:—यदि राधा गोप-बालकों को कृष्ण के विरह में खिन्न होते हुए देखती, तो उन्हें पुष्पों द्वारा निर्मित अत्यन्त मुग्ध करने वाले खिलौने देती थी और अनेक प्रकार की शिक्षा देकर उनसे कृष्ण की लीलाओं का अभिनय कराती थीं। तथा आप स्वयं अत्यन्त रुचि के साथ उन लीलाओं को बड़ी तन्मयता के साथ बैठी बैठी घंटो देखा करती थी

(१०) पाई जाती... .......... बोध देती।

शब्दार्थ:—गोपांगना=गोप स्त्रियाँ, गोपियां; स्वप्रितम=अपने प्यारे, कृष्ण; वेणु-वीणा=बंशी, बोध=ज्ञान, चेतना।

अर्थ:—जितनी भी गोपियां कृष्ण के विरह में दुखी पाई जातीं उन सब को राधा यथा-विधि सुखी बनाती थी। वे अपने प्रियतम कृष्ण की लीलाओं को गा गा कर बंशी बजाती थी और अनेक प्रकार के प्रिय वचन कहकर उन दुखी गोपियों को वे चेतना प्रदान करती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(११) सलंग्ना हो ..............................अत: थी।

शब्दार्थ—संलग्ना=रत, सान्त्वना कार्य=संतोष बंधाने का कार्य, सतत:=सर्वदा, व्रज-अवनि=व्रज भूमि, देवितुल्या=देवी के समान,

अर्थ—अनेक संतोष बंधाने के कार्य में रत रहने पर भी राधा वृद्ध और रोगी व्यक्तियों की सेवा करती थी—वे दीन, हीन, निर्बल और विधवाओं का बड़ा मान करती थीं—इसी कारण व्रज की भूमि में उनकी देवी के समान पूजा होती थी।

(१२) खो देती.............................धारा बहाती।

शब्दार्थ—कलह जनिता=कलह को उत्पन्न करने वाली, आधि=मानसिक व्यथा; मलिन मन=खिन्न मन; कालिमायें=अज्ञानता; भावज्ञता=भावों को जानने की शक्ति; क्लेशों-दलित-गृह=क्लेशों से कुचले हुए घर।

अर्थ—राधा कलह उत्पन्न करने वाली मानसिक व्यथा के दुर्गुणों को मूलत: नष्ट कर देती थी और खिन्न मन प्राणियों में व्याप्त अज्ञानता के अन्धकार को भी धो डालती थी, वे सबके हृदय में एक दूसरे के भावों को समझने की शक्ति का बीज बो देती थी अतः जो घर क्लेश के कारण कुचले जा रहे थे उनमें भी राधा शांति की धारा प्रवाहित कर देती थी। भाव यह है कि क्लेश इस कारण उत्पन्न होते है कि व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के भावों को जानने का प्रयत्न नहीं करते। राधा जन जन में एक दूसरे के भावो को समझने की शक्ति उत्पन्न करने का प्रयत्न करती थी।

(१३) आटा चींटी.........................सम्बर्द्धना में।

शब्दार्थ—विहंगगन=पक्षियों के समूह; वारि=जल; भूत सम्बर्द्धना=सबकी उन्नति।

अर्थ—राधा द्वारा चींटियां आटा और पक्षीगण अन्न और जल प्राप्त करते थे। राधा की दया पूर्ण दृष्टि कीड़े आदि की ओर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भी सदैव देखने को मिलती थी। वृक्षों से वे पत्तों को भी बेकार नहीं तोड़ती थीं, वे हृदय से सदैव सबकी उन्नति में संलग्न रहती थीं।

(१४) वे छाया ..... .........विश्व की थीं।

शब्दार्थ—सुजन=सज्जन; शासिका=शासन करने वाली खल=दुष्ट; भगिनि=बहन; जननी=माता; अनाथाश्रित=असहाय आराध्या=पूज्य; अवनि=भूमि।

अर्थ—राधा सज्जनों के शीश की छाया थी अर्थात् सज्जन पुरुषों का आश्रय थी, दुष्टों पर शासन करने वाली थी। वे निर्धनों का परम धन, पीड़ितों की औषधि थी अर्थात दुखियों के लिए औषधि के समान गुणकारी थी। वे दीनों की बहन और असहायों की माता के समान थी। राधा व्रज भूमि में अति पूज्य थी और वे समस्त विश्व से प्रेम करने वाले थीं।

पृष्ठ—१०२

(१५) जैसा व्यापी .. ...............समा थीं।

शब्दार्थ—गोपांगना—गोपियाँ; मोहों कलित=मोह से पूर्ण तामसी=काली; कौमुदी=चांदनी।

अर्थ—जैसा असहनीय और व्यापी दुख गोप तथा गोपियों का था, राधा वैसी ही उदार हृदय और प्रेम की मूर्ति बन गई थी अर्थात जितनी असहनीय और महान विरह व्यथा गोपियों को होती थी, उसे शान्त करने के लिए राधा उतनी ही दया और प्रेम पूर्ण बन जाती थी। जिस प्रकार की मोह से भरी व्रज में काली रात कृष्ण के अभाव में छा गई थी, वैसे ही उस मोह जनित अन्धकार को नष्ट करने के लिये राधा वहाँ पर चांदनी के समान सुशोभित होती थी।

(१६) जो थीं....................गई थी।

शब्दार्थ—कौमार-व्रतनिरता=कुमारी व्रत धारण किये हुए

अर्थ:—व्रज में अनेक बालिकायें, जो कृष्ण के बिना कुमारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



जीवन व्यतीत करने का व्रत ले चुकी थीं, वे भीं समय पा कर ब्रज में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करती थीं। श्री राधा से मनो बल, शिक्षा और गुण प्राप्त कर कर वे भी वास्तव में राधा की छाया के समान बन गई थी अर्थात् वे भी राधा का ही दूसरा स्वरूप थीं।

(१७) तो भी आई ····················न बोली।

शब्दार्थ:—घटिका = घड़ी; वार = दिन; स्रोत = धारा; उन्माद-कर-स्वर = पागल करने वाली ध्वनि

अर्थ:—फिर भी ब्रज में न वह घड़ी आई और न वे दिन ही लौट कर आये, न उस प्रकार की सुख दायक वायु ही ब्रज में फिर चली, न फिर उस प्रकार के बादल ही पुनः ब्रज मंडल पर छाये जो रस की धारा बहाते और न उस प्रकार पागल बना देने वाली ध्वनि में पुनः कोयल ने ही गायन किया, जिस प्रकार कि उपर्युक्त सब कार्य कृष्ण के ब्रज में उपस्थित रहने पर होते थे।

(१८) जीते भूले ने·················· अंकिता है।

शब्दार्थ:—महि = भूमि; जलदस्तन = बादलों का सा शरीर वाले श्रीकृष्ण; वशंजा = वंश में उत्पन्न;

अर्थ:—ब्रज भूमि के नित्य उत्कंठा से भरे हुए प्राणी अपने जीवन में श्री कृष्ण और उनकी क्रीड़ाओं को न भूल सके, जब तक वे जीवित रहे विरह व्यथा सहते हुए कृष्ण का स्मरण करते रहे और पीछे भी वह विरह व्यथा उनके वंश में उत्पन्न प्राणियों में व्याप्त रही यह बात सत्य इस कारण है कि आज भी वही विरह व्यथा ब्रज में, अंकित दिखाई पड़ती है।

(१९) सच्चे स्नेही······················म होवे।

शब्दार्थ:—विश्वात्मा = ईश्वर; भरत-भुवि = भारत भूमि; अंक = गोद;

अर्थ:—अंत में कवि का निवेदन है—ब्रज भूमि, जन और देश के श्याम जैसे सच्चे प्रेमी, और संसार के प्रेम में डूबी हुई दयालु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हृदय वाली राधा जैसी स्त्री, हे ईश्वर! भारत भूमि की गोद में फिर उत्पन्न हों परन्तु इस प्रकार की विरह घटना जो समस्त व्रज में व्याप्त हो गई थी पुनःकभी न होवे।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न १- 'हिंदी में जब द्विवेदी युग आया तब हरिऔध की काव्य प्रतिभा ने अपनी दिशा में परिवर्तन कर दिया। द्विवेदी युग की विशेषतायें बताते हुए इस कथन को पुष्ट कीजिये

## उत्तर

भारतेंदु के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी एक युग प्रेरक शक्ति के रुप में हिंदी में अवतीर्ण हुए हिंदी भाषा और साहित्य पर उनका अमिट प्रभाव पड़ा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने २० वर्ष तक 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन कर हिंदी की सेवा की। उनकी प्रेरणा से हिंदी में अनेक लेखक और कवि तैयार हुए। द्विवेदी जी का पत्रिका सम्पादन काल को हम 'द्विवेदी युग' कहते हैं। इस युग की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

(१) भारतेंदु युग में गद्य की भाषा खड़ी बोली बन चुकी थी परंतु पद्य में प्राय ब्रज भाषा का ही प्रयोग होता था गद्य और भाषा एक करने का कार्य और कविता क्षेत्र में भी खड़ीं बोली का प्रवेश कराने का कार्य द्विवेदी युग में हुआ और इसके कर्ता द्विवेदी जी ही थे।

(२) यह युग हिंदी काव्य का शिशु काल था। अतः इस युग की रचनाये वस्तु प्रधान थी।

(३) संस्कृत के छंदों का उपयोग काव्य में प्रारम्भ हुआ। मराठी में संस्कृत के वर्णिक वृत्तों का अधिक प्रयोग होता था। द्विवेदी जी का मराठी साहित्य से विशेष परिचय होंने के कारण वे छंद विधान में मराठी साहित्य से प्रभावित हुए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(४) इस युग में साहित्य में आदर्शवाद की प्रधानता रही। अतीत गौरव, देश प्रेम; राष्ट्रीयता समान सुधार, नीति, प्राचीन वीरों के गुण आदि विषयों पर विशेष रूप से लेखकों ने कलम चलाई।

(५) श्रंगार का साहित्य से बहिष्कार सा हो गया था इस युग में प्राचीन आख्यानों को लेकर इतिवृत्तात्मक काव्य बड़ी संख्या में लिखे गये यह युग प्रबंध काव्यों के अनुकूल सिद्ध हुआ।

**द्विवेदी युग और हरिऔध**—द्विवेदी काल की प्रवृतियों के आगमन के साथ हरिऔध जी की कविता ने दिशा परिवर्तन कर दिया यह कथन उपयुक्त ही है अब तक कवित्त सवैया तथा रोला छप्पय आदि छंदों का बोल बाला था और कविता की भाषा व्रज भाषा थी; हरिऔध ने भी अपनी रचनायें व्रज भाषा में ही लिखना आरम्भ किया था 'रस कलश' इसका प्रमाण है परंतु द्विवेदी युग की प्रवृतियों से प्रभावित हो आपने खड़ी बोली को अपनाया। आपने पुराने छंदो को छोड़ नये युगानुसार संस्कृत वर्ण वृत्तों को अपनाया, 'प्रिय प्रवास' महा काव्य संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखा हुआ काव्य है द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों का आपने इतने आग्रह के साथ अपनाया कि आप द्विवेदी युग के सर्व श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं आपके काव्य में राष्ट्रीयता, समाज सुधार और लोक सेवा के भाव मिलते हैं विरहिणी राधिका को भी आपने प्रिय प्रवास में लोक सेविका के रूप में चित्रित किया है। शृंगार रस के आपके काव्य में दर्शन तो होते हैं परन्तु इनका शृंगार चित्रण अत्यन्त मर्यादा पूर्ण और युग की भावनाओं का पोषक है। अतः हम कह सकते हैं कि द्विवेदी युग की सब विशेषताओं से हरिऔध जी का काव्य सम्पन्न है।

प्रश्न- २. महाकाव्य के लक्षण बताइये और प्रमाणित कीजिये कि 'प्रिय प्रवास' उच्च कोटि का महाकाव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## उतर

**महाकाव्य के लक्षण—**

भारतीय साहित्याचार्य पं० विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में महाकाव्य के लक्षण बताते हुए लिखा है— महाकाव्य आठ या आठ से अधिक सर्गों में निबद्ध होना चाहिये, उसका नायक देवता अथवा उच्च वंश उत्पन्न क्षत्रिय धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति होना चाहिये, उसमें शृंगार, वीर अथवा शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता तथा अन्य रस गौण रूप में आने चाहिये। प्रत्येक सर्ग प्रायः एक ही छन्द में होना चाहिये परन्तु सर्ग के अंत में छन्द बदल जाना आवश्यक है। महाकाव्य का कथानक इतिहास से उद्घृत अथवा अन्य किसी सचरित्र व्यक्ति का चरित्र होना चाहिये, उसमें अन्य सभी प्रासंगिक कथायें पूर्ण निर्वाह के साथ मुख्य कथा से सम्बद्ध रहनी चाहिये उसमें वन, उपवन पर्वत, सन्ध्या, प्रातः, ध्वान्त, रजनी, मृगया, युद्ध तथा ऋतुओं आदि का वर्णन होना चाहिये।

उपर्युक्त भारतीय विचारधारा के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने भी महाकाव्य के लक्षणों के बारे में अपने विचार प्रगट किये हैं उनका कथन है— महाकाव्य बड़े आकार वाला प्रकथन प्रधान होना चाहिये उसमें व्यक्ति की अपेक्षा जातीय भावों का चित्रण अधिक होना चाहिये, उसका कथानक लोक प्रिय और परम्परा से प्रतिष्ठित होना चाहिये। उसमें उच्च कुलीन नायक को लेकर कथा एक सूत्र में बंधी रहनी चाहिए!

**प्रिय प्रवास का महाकाव्यत्व—** उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर प्रिय प्रवास की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि प्रिय प्रवास १७ सर्गों में विभक्त होने के कारण, उसमें ८ से अधिक सर्ग हैं। उसके नायक श्रीकृष्ण उच्च कुल उत्पन्न है। वे यदुवंशी हैं और अपने अलौकिक तथा असाधारण चरित्र के कारण अधिकांश जनता के पूज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हैं। प्रिय प्रवास में श्रीकृष्ण को धीरोदात्त गुणों से युक्त दिखाया गया है। अतः महाकाव्य के लिये नायक में जो गुण होने चाहिये उन से वे पूर्णतः सुशोभित हैं।

रस की दृष्टि से प्रिय प्रवास का प्रधान रस शृंगार है। शृंगार का वियोग पक्ष ही इसमें पुष्ट हुआ है। नायक कृष्ण के प्रवास पर नायिका राधा, गोप गोपियां, यशोदा नंद आदि प्रियजन वियोग के कारण विलाप करते हुए चित्रित किये गये हैं। वियोगिनी राधा पवन को दूत बनाकर, उससे श्रीकृष्ण की चरण-धूलि लाने का आग्रह करतीं हैं। इस स्थल की सब उक्तियां अत्यन्त हृदयस्पर्शी हैं:—

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथाऐं।
धीरे धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी सी भी चरण रज जो न ला देगी हमें तू।
हा ! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूंगी।।

इस विप्रलम्भ शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का चित्रण भी तहां तहां मिल जाता है। वात्सल्य और करुण रस का चित्रण तो अत्यन्त सुन्दर हुआ।

प्रिय प्रवास संस्कृत छंदों में लिखा गया है। प्रिय प्रवास के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में प्रारम्भ से अंत तक एक ही छंद का प्रयोग हुआ है। शेष सभी सर्गों में छंद बदलते रहे हैं। अंतिम छंद से आगामी सर्ग की कथा का भी संकेत मिलता रहा है।

महाकाव्य के अन्तर्गत प्रकृति के समस्त स्वरुपों का चित्रण करना अनिवार्य माना गया है। हरि औध जी ने अपने प्रिय प्रवास में अन्य बातों की अपेक्षा प्रकृति के समस्त रूपों की झांकी भी अत्यधिक मात्रा में उपस्थित की है। आपने संध्या, सूर्य, चन्द्र, रजनी, प्रदोष आदि की अति सफलता के साथ चित्रण किया है। प्रिय प्रवास महाकाव्य का आरम्भ ही सन्ध्या वर्णन से होता है —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु सिखा पर थी अब राजती,
कमलिनि कुल वल्लभ की प्रभा ॥

अतः स्पष्ट है कि भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार प्रिय प्रवास एक सफल और उत्कृष्ट महाकाव्य है।

प्रश्न ३—पठित सामग्री के आधार पर राधा के चरित्र की आलोचना कीजिऐ और यह सिद्ध कीजिये कि वह आधुनिक नारी जागरण की अग्रदूती है।

## उत्तर

पठित सामग्री के आधार पर जब हम राधा के चरित्र की विवेचना करते हैं तो यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राधा एक लोक सेविका के रूप में हमारे समक्ष आती हैं। त्याग की साक्षात मूर्ति राधा का जैसा चित्रण हरि औध जी ने किया हैं वह नितान्त नवीनता का द्योतक हैं। रीतिकालीन कवियों ने राधा का विलास पूर्ण चित्र ही उपस्थित किया हैं परन्तु हरि औध जी ने युग की भावना से प्रभावित होकर कृष्ण की ही भांति राधा के चरित्र में भी परोपकार, लोक सेवा विश्व प्रेम आदि भावनाओं का समावेश किया है। हरि औध जी की राधा वियोग से व्याकुल तड़पती हुई इधर उधर मारी मारी नहीं फिरती अपितु अन्य विरह व्याकुल नारियों को समझाती हुई, दीन हीन लोगों के सेवा करती हुई तथा यशोदा नंद को धैर्य एवं सान्त्वना प्रदान करती हुई चित्रित की गई हैं। कृष्ण के विरह में दुखी यशोदा माता की राधा किस प्रकार सेवा करती हैं, एक चित्र देखिये —

घंटो लेके हरि जननि को गोद में बैठती थी।
वे थी नाना जतन करतीं या उन्हें शोक मग्न।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



धीरे धीरे चरण सहला औ मिटा चित्त पीड़ा ।
हाथों से थीं युगल दृग के वारि को पोंछ देती ॥

वे देवी के समान ब्रज में सबको धैर्य बंधाती हुई और सबकी सेवा करती हुई दिखाई पड़ती थी —

सलंग्ना हो विविध कितने सान्त्वना कार्य में भी ।
वे सेवा थीं सतत करती वृद्ध रोगी जनों कीं ।
दीनों हीनों निबल, विधवा आदि को मानती थी ।
पूजी जाती व्रज अवनि में देवितुल्या अतः थी ॥

राधा के चरित्र की महानता का रहस्य इस बात में है कि वे स्वयं विरह विदग्ध होते हुये भी दूसरो की सेवा का कितना ध्यान रखती थी। वे कृष्ण की अनन्य प्रेमिका थीं । कृष्ण के प्रवास पर उनके हृदयमें जो घनी भूत पीड़ा छा गईथी उसकी छायाभी हमें देखने को मिलती है । यशोदा के पूंछने पर कि कृष्ण कब आयेंगे—

तो वे धीरे मधुर स्वर से हो विनीता बतातीं ।
हाँ आवेंगे, व्यथित ब्रज को श्याम कैसे तजेंगे ।
× × × ×
आता ऐसा कथन करते नारि राधा दृगों में ।
बूंदों बूंदों टपक पड़ता गाल पै जो कभी था ।
जो आंखों से सदुख उसे देख पाती यशोदा ।
तो धीरे यों कथन करती खिन्न हो तू न बेटी ।

राधा के आंसू उनकी व्यथा को अभिव्यक्त करने वाल सच्चे आंसु हैं परन्तु वे सच्ची लोक सेविका थी । उन्होंने दूसरों की व्यथा पर अपनी व्यथा को न्यौछावर कर दिया था । हरिऔध के शब्दों में ही, हमभी उनके स्वर में स्वर मिलाकर ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं ।

राधा जैसी सदय हृदया विश्व के प्रेम डूबी ।
हे विश्वात्मा भरत भुवि के अंग में और आवें ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



राधा के चरित्र से सम्बन्धित उपर्युक्त विवेचन इस बात को स्पष्ट प्रमाणित करता है कि आधुनिक युग में जब मानव स्वयं की कठिनाइयों से या जीवन संघर्ष से पीड़ित हैं, राधा के पवन चरित्र को धारण करने वाली नारियों की आवश्यकता है। आज की नारी जाति हरि औध की राधा के चरित्र से शिक्षा लेकर सेवा का पाठ पढ़ सकती है। राधा की तरह दीन, हीन, वृद्ध आदि की निष्काम सेवा का व्रत लेकर आज की नारी संसार में सेवा का आदर्श उपस्थित कर इस संसार को स्वर्ग बना सकती है। राधा में लोक सेवा और पर दुख कातरता की भावना यह सिद्ध कर देती है कि वे आधुनिक नारी जागरण की अग्रदूती हैं। आज का नारी जगत उनके चरण चिन्हों पर चलकर अपने को कृत कृत्य कर सकती है।

प्रश्न- ४. रीतिकालीन कवियों की 'राधा' और हरिऔध की राधा में आपको क्या अन्तर दिखाई देता है ? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

## उतर

रीतिकालीन के कवियों ने भी राधा का विलास पूर्ण चित्र उपस्थित किया है, उसके चरित्र में पवित्र प्रेम की विशुद्धता के स्थान पर अल्हड़ता एव कामुकता का रंग गहरा हो गया है। प्रमाण रूप में हम डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन प्रस्तुत कर सकते हैं-

'रीति कालीन राधा कुछ रसिका, कुछ मुखरा, कुछ विलासनी कुछ चंचल, कुछ निःशंका और कुछ कुछ वाल तरुणी है। वे कृष्ण के साथ गलबहियां डाले गली से निकल जाती हैं, कृष्ण के बतरस के लिये तरह तरह का उत्पात करती हैं; पनघट पर हाथापाई करती हैं कभी हँसती हैं, कभी मचलती हैं कभी छिपती हैं कभी बाहर निकल आती हैं- उनमें न लोक के उत्तरदायित्व की चिन्ता है, न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


परलोक बनाने की परवा, वे अल्हड़ किशोरी हैं। यही उनका सच्चा रूप है।'

राधा का जो रीतिकालीन स्वरूप प्रस्तुत किया है, उससे हरिऔध जी की राधा का स्वरूप नितान्त भिन्न है। हरिऔध जी ने युग की स्त्री सुधार विषयक भावना से प्रभावित हो राधा के चरित्र में परोपकार लोक सेवा, विश्व प्रेम आदि भावनाओं का समावेश किया है। राधा के जीवन में वियोग की कातरता ने विशेष प्रेम एवं सेवा की भावना को जाग्रत कर दिया है। विस्तृत रूप में राधा के चरित्र का स्वरूप ज्ञात करने के लिये पीछे प्रश्न ३ का उत्तर भी पढ़िये।

अतः संक्षेप में रीतिकालीन और हरिऔध जी की राधा में अंतर स्पष्ट करने के लिये कह सकते हैं— यदि रीतिकालीन राधा निकल आती हैं—उनमें न लोक के उत्तरदायित्य की चिन्ता है न है, तो हरिऔध जी की राधा लोक सेवा में लीन मानवी देवी के रूप में हमारे समक्ष आती हैं।

प्रश्न ५ हरिऔध जी की काव्य प्रतिभा की संक्षेप में आलोचना कीजिये—

## उत्तर

**हरिऔध की काव्य प्रतिभा**—हरिऔध जी का खड़ी बोली के अभ्युदय काल में महत्व पूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों को अपनी रचनाओं द्वारा पुष्ट करने का श्रेय हरिऔध जी की काव्य प्रतिभा को प्राप्त है। ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों पर आपका समान अधिकार था। 'रस कलश' रीति ग्रंथ लिखकर आपने अपने ब्रज भाषा ज्ञान और रीतिग्रंथ प्रणयन प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। खड़ी बोली में 'प्रिय प्रवास' आपकी प्रौढ़तम रचना है। संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखा हुआ आपका यह अतुकान्त महाकाव्य हिन्दी में अनूठा। संस्कृत गर्भित भाषा है 'पद्य प्रमोद' वैदेही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri


बनवास; पारिजात, आदि पद्य ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। बोल चाल की भाषा में 'चुभते चौपदे', चोखे चौपदे आदि पुस्तकें लिखकर आपने अपनी प्रतिभा द्वारा इस बात का परिचय दिया है कि हिन्दी में बोली जाने वाली कहावतों और मुहावरों का किस उत्तम रीति से प्रयंग हो सकता है। छोटे २ पदों में एक ही कहावत का अर्थ दिखलाकर आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। मुहावरों का प्रयोग इनकी पुस्तक में देखते ही बनता है—

कौड़ियों को ही पकड़ते दांत से
चाहिये ऐसा न बन जाना तुम्हें
छोड़ देगा कौड़ियों का ही बना
यह तुम्हारा कौड़ियालापन तुम्हें ॥

पद्य क्षेत्र में हरिऔध ने इस प्रकार उच्च कोटि के ग्रंथों का प्रणयन कर हिन्दी साहित्य की उन्नति तो की ही है परन्तु गद्य क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा का आलोक साधारण नहीं है। नाटक क्षेत्र में 'रुक्मणी परिणय' 'प्रद्युम्न विजय', वैनिस का बांका (अनूदित) ग्रंथ हाथ आजमाने के लिए लिखे थे। आपने दो उपन्यास 'ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिला फूल' भी लिखें। परंतु ये दोनों पुस्तकें भाषा के नमूने की दृष्टि से लिखी गई, औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से नहीं। इसके अतिरिक्त आपने हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास नामक पुस्तक भी लिखी।

हरिऔध जी ही ने हिन्दी के अन्दर सर्व प्रथम अतुकान्त छंदों में महाकाव्य का प्रणयन कर अनुकांत छंद पद्धति की नींव डाली। हिन्दी में उस समय अतुकांत छंदों का प्रायः अभाव था अतः आपने इसकी पूर्ति संस्कृत साहित्य से की और हिन्दी में भी संस्कृत छन्दों का निरूपण कर नवीन पद्धति की नींव डाली। अलंकारों का सुन्दर प्रयोग आपकी कविता में यत्र तत्र मिलता है। शब्दालंकार आपको बहुत प्रिय हैं। अनुप्रासों की सुन्दर छटा अन्यत्र कठिनता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



से उपलब्ध होता है आपने प्राय: सभी रसों का प्रयोग किया है शृंगार वीर, करुणा, शान्त आदि रसों में आपकी प्रतिभा निखर उठी है।

अत: स्पष्ट है आपका साहित्य समस्त काव्य गुणों से सम्पन्न है और साहित्य के सभी अंगों को अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा उन्नत किया है। इस प्रकार हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि आपकी प्रतिभा ने हिन्दी की सर्वतोमुखी उन्नति की है।

प्रश्न ६—भाषा की दृष्टि से हरिऔध ने जो प्रयोग किये हैं उन पर आलोचनात्मक दृष्टि से अपना मत व्यक्त कीजिये।

## उत्तर

हरिऔध जी ने आरम्भ में कवितायें व्रज भाषा में लिखी थी रस कलस' नामक आपका ग्रन्थ व्रज भाषा में लिखा हुआ है। इसके पश्चात आपका ध्यान खड़ी बोली की ओर गया और उन्होंने उर्दू के छंदों और ठेठ बोली को अपनाया पर जब द्विवेदी के प्रभाव से खड़ी बोली ने संस्कृत छंदों और संस्कृत की समस्त पदावली का सहारा लिया तब उपाध्याय जी भी उसी शैली की ओर बढ़े। वास्तव में आपको यदि भाषा की दृष्टि से प्रयोग वादी लेखक कहें तो कोई अन्युक्ति न होगी। जितने प्रकार की भाषा शैली आपने अपनाई हैं उतनी किसी कवि ने आज तक नहीं अपनायी।

भाषा की दृष्टि से हरिऔध जी नें जो प्रयोग किये उनमें व्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली के क्षेत्र में ३ मुख्य रूप प्राप्त होते हैं—

(१) संस्कृत के समास पद्धति युक्त तत्सम शब्द प्रधान रूप
(२) तद्भव शब्द युक्त बोल-चाल का रूप और
(३) विशुद्ध खड़ी बोली का साहित्यिक रूप

खड़ी बोली के प्रथम रूप को आपने प्रिय प्रवास में अपनाया और जब इसकी पर्याप्त आलोचना की गई तो आपने सरल और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


सुबोध खड़ी बोली के लोक प्रचलित रूप में कविता की। संस्कृत की समास पद्धति युक्त रचना का उदाहरण प्रिय प्रवास का चतुर्थ सर्ग है।

तद्भव शब्द प्रधान खड़ी बोली के दूसरे रूप को आपने 'चोखे चौपदे, 'चुभते चौपदे' तथा 'बोल चाल' नामक ग्रन्थों में अपनाया है। ये तीनों रचनायें उर्दू भाषा की नाजुक ख्याली, बंदिश तथा मुहावरों की चुस्ती हिन्दी भाषा में दिखाने के लिये लिखी गई हैं। इन ग्रन्थों में प्रयुक्त बोल चाल की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

जो कलेवा काल का है बन रहा।
वह बने खिलती कली का भौंर क्यों ?

तीसरा, खड़ी बोली का विशुद्ध साहित्यिक स्वरूप है; जिसमें मैथिलीशरण गुप्त, जय शंकर प्रसाद, पंत, निराला आदि आधुनिक कवि अपनी कविता करते हैं। हरि औध जी ने प्रथम तो प्रिय प्रवास में ही इसका प्रयोग किया है परन्तु आपने अपने दूसरे महाकाव्य 'वैदेही वनवास में तो पूर्णतः साहित्यिक खड़ी बोली का ही प्रयोग किया है।

इस प्रकार हरिऔध जी ने समय की गति को पहचान कर भाषा के क्षेत्र में प्रयोग किए। वास्तव में आपने भाषा का अक्षय शृंगार किया और उसके अनेक रूप सफलता के साथ प्रस्तुत करके यह जनता की रुचि पर छोड़ दिया कि वह चाहे जिस रूप को अपना ले।

प्रश्न ७ अलंकार, रस और छंद की दृष्टि से हरिऔध के काव्य के कला पक्ष की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

अलंकार—जिस युग में हरिऔध जी ने कविता करना आरम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


किया उस समय अलंकारों को काव्य के लिए अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक सा माना जाता था। उन्होंने पहले ब्रज भाषा में कविता करना आरम्भ किया था जिसमें अलंकारों को सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए पहले से ही अधिक अपनाया जाता था। अतः हरिऔध जी अलकारों के मोह से अपने को न बचा सके। 'रस कलस' उनकी अलं-कार प्रियता का जीता जागता उदाहरण है प्रिय प्रवास में भी अनुप्रास रूपक, यमक; उपमा; संदेह: प्रतीप आदि अलकार मिलते हैं परन्तु हरिऔध जी के काव्य में अलंकार स्वाभाविक रूप से आये हैं परन्तु वे उनकी शास्त्र मर्मज्ञता, रचना चातुरी और कलागत स्वाभाविकता के परिचायक हैं। रूपक की एक छटा देखिये—

(१) जननि मानस पुण्य पयोधि में।
लहर एक उठी सुख-मूल थी॥

(२) ऊधो मेरा हृदय तल था एक उद्यान न्यारा।
शोभ देती अमित उसमेंकल्पना क्यारियाँ थी॥
प्यारे प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।
उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा था॥

प्रकृति चित्रण में 'मानवीकरण' की सहायता से कवि ने अत्यन्त सफलता पाई है। पाश्चात्य साहित्य मैं मानवीकरण भी एक अलंकार माना गया है। 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' दोनों में मानवीकरण के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

रस—हरिऔध जी रस सिद्ध कवि हैं। आपके काव्यों में सभी रसों की सुन्दर व्यंजना हुई है पर वियोग श्रृंगार तथा वात्सल्य और करुण रसों की व्यंजना में आपको अपूर्व सफलता मिली है। वात्सल्य एवं करुण रस का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

हे पति मेरा वह प्राण प्यारा कहाँ है?
दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri


लख मुख जिसका आज लौं मैं जी सकी हूँ ।
वह नयन दुलारा प्राण प्यारा कहाँ है ॥

छंद—हरिऔध जी ने संस्कृत छंदों का अधिक प्रयोग किया है। प्रिय प्रवास उन्होंने वर्णिक छंदों में लिखा है और इसमें कुल सात—वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, बसंततिलका, मन्दाकान्ता, मालिनी, शिखरिणी और शार्दूल विक्रीड़ित छंदों को अपनाया है। इस प्रकार प्रिय प्रवास में आपने संस्कृत छन्दों में कविता करके हिन्दी में अतुकांत कविता का मार्ग प्रशस्त किया। इसके पश्चात् 'वैदेही बनवास' में 'प्रिय प्रवास' के से संस्कृत छंद नहीं मिलते अपितु मात्रिक छंदों के साथ साथ उर्दू फारसी के लोक प्रचलित चौपदों आदि का प्रयोग मिलता है—

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि हरिऔध जी का कला पक्ष पूर्णत पुष्ट है।

कुछ परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों का प्रसंग सहित अर्थ लिखिये—

(१) कैसे सुरसरि .................. भारत बसुन्धरा।
(देखो 'भारत गौरव' पद संख्या १)

(२) किधौं हैं अनंत .................. नभ तारे हैं।
(देखो 'आकाश के तारे' पद संख्या २)

(३) क्रीड़ायें अवलोक .................. दृश्यावली।
(देखो 'आकाश दर्शन' पद संख्या २)

(४) जय जय जयति ......... ......... अभिराम।
(देखो 'राम की शोभा' पद सं० १,२)

(५) कमल से अनुराग .................. का परिणाम।
(देखो 'राम की शोभा' पद स० ५;६)

(६) है सरोरुह मा ......... ......... है राम।
(देखो 'राम की शोभा' पद सं. १७ १८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(७) झोंके राधा.............................नाना सुनाती।

(देखो 'लोक सेविका राधा' पद सं ५,६)

(८) आढ़ा चींटी.............................विश्व की थी।

(देखो लोक सेविका राधा पद स०१३-१४)

# ग्यारह: जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

पृष्ठ—१०४

**जगन्नाथ दास रत्नाकर—**

**परिचय**—जगन्नाथ दास रत्नाकर जी का जन्म काशी में भाद्रपद सुदी ५ सं० १९२३ वि. को हुआ था। आप अग्रवाल वैश्य थे आपके पिता श्री पुरुषोत्तम दास जी भारतेन्दु जी के साहित्यिक मित्रों में से थे। भारतेन्दु जी ने बालक जगन्नाथ दास के बारे में भविष्य वाणी की थी कि यह लड़का होनहार सिद्ध होगा'। समय बीतने पर भारतेन्दु जी का कथन सत्य सिद्ध हुआ। रत्नाकर जी की प्रारम्भिक शिक्षा फारसी में हुई और बी० ए० तक आपने फारसी पढ़ी आप फारसी में भी कविता करते थे। हिन्दी में कविता करने पर आप का उपनाम 'रत्नाकर' हुआ। आपने कुछ काल तक अवागढ़ रियासत कोष में निरीक्षक का पद सम्हाला, परन्तु सन १९०२ में आप अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेट्री हो गये। ये महान प्रतिभाशाली थे। इनके समय में खड़ी बोली का पर्याप्त प्रचार था परन्तु फिर भी आपने कविता ब्रज भाषा में ही की। ब्रज भाषा के उपासकों में संभवत: आप अंतिम थे। संवत १९८९ में आपकी मृत्यु हरिद्वार में हुई।

**साहित्यिक रचनायें—**

**कविता**—(१) हिंडोला, (२) हरिश्चन्द्र, (३) उद्धव शतक (४) गंगावतरण, (५) श्रृंगार लहरी आदि।

**टीका**—बिहारी रत्नाकर—बिहारी सतसई की यह टीका हिन्दी जगत में श्रेष्ठतम समझी जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सम्पादित—हमीर हठ, हिततरंगिणी; कंठा भरण, सूरसागर। सूरसागर का सम्पादान कार्य आप पूरा न कर सके, क्योंकि क्रूर काल ने आपको पहले ही इस संसार से छीन लिया, आजकल काशी नगरी प्रचारिणी उस कार्य को पूर्ण कर रही है।

साहित्य में स्थान—रत्नाकर जी व्रज भाषा के अनन्य उपासक थे। आधुनिक काल के ब्रजभाषा के कवियों में आप निसदेह सर्वश्रेष्ठ हैं। आप काव्य कला के पंडित थे, भाव और भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। व्रज भाषा का, खड़ी बोली के युगमें आपने जोआलोक प्रसारित किया उसके कारण आपका स्थान हिन्दी साहित्य में बहुत ऊंचा हो जाता है। आपकी भाषा व्याकरणानुमोदित, नियम नियंत्रित लौकिक प्रयोगानुकूल संयत और व्यवस्थित है.यही कारण है आपको व्रज भाषा साहित्य का ज्ञाता और महारथी माना जाता है। 'विहारी रत्नाकर 'नामक ग्रंथ में आपने जो विहारी सतसई की टीका की है उसके कारण भी आपको जो ख्याति प्राप्त हुई है वही आपका नाम साहित्य में अमर रखने को पर्याप्त है।

# टीका

पृष्ठ-१०४

## हिंडोला वर्णन—

प्रसंग संकेतः—'हिंडोला' महाकवि रत्नाकर विरचित एक छोटा सा काव्य है। जिसमें प्रारम्भ में कवि वृंदावन की दिव्य शोभा का चित्रण करता है। तत्पश्चात् वृंदावन के बीच उस स्थान का चित्रण, जहाँ पर हिंडोला पड़ा हुआ है, इन पंक्तियों के साथ करता है— 'ठाम एक अभिराम मंडलाकृति तहँ भ्राजै'

और इन्हीं पंक्तियों के साथ 'हिंडोला वर्णन' प्रारम्भ होता है जो कि हमारी पाठ्य पुस्तक में उद्घृत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


(१) ठाम एक ............................परवानो ।

शब्दार्थ:—ठाम=स्थान; अभिराम=सुन्दर; तहँ=वहां पर अर्थात् वृंदावन में; भ्राजै=सुशोभित; बानक=सजधज; बिसद=बिमल; मेदिनि-मंडल=पृथ्वी मंडल; परवाना=पतंगा

अर्थ—वृंदावन में एक सुन्दर स्थान जो मंडल की आकृति का अर्थात् गोलाकार है, सुशोभित है। इस स्थान की सजधज अति बिमल विशेष अद्भूत स्वरूप में विराजमान है। मन में ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान पृथ्वी मंडल की सुन्दर अगूंठी की मणि हैं, जिसके चित्त पर अंकित होते ही, चित्त प्रेम मार्ग पर न्यौछावर होने वाले पतगे के समान हो जाता है।

(२) सम उँचान...... ..............मन भावन ।

शब्दार्थ:—उँचान=ऊँचाई; विटप=वृक्ष; वालित-बल्ली=लिपटी हुई लतायें; बनात=एक प्रकार का कपड़ा; कनात=मोटे कपड़े की दीवार जिससे कोई स्थान घेरा जाता है; कल=सुन्दर; कोरनि किनारे;

अर्थ:—इस स्थान के चारों ओर समान ऊंचाई के वृक्ष खड़े हुए हैं जिन पर बेलें लिपटी हुई हैं, जिन्हें देख ऐसा प्रतीत होता है मानों सुन्दर मंडलाकृत स्थान के किनारों पर हरी हरी सुन्दर कनात लगा दी गई हैं। जिन पर विभिन्न रंग के फूल, पत्ते और पक्षी गण दिखाई देते हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानों कि मन को भाने वाले अनेक सुन्दर विचित्र चित्र बनाये गये हैं।

(३) पत्र-बीच ..............................बहावनि ।

शब्दार्थ:—कलिन्द-नन्दिनी=यमुना नदी, कलि-कलुष=कलियुग के पाप; करार=किनारे; निगार=(यह शब्द 'निगार नहीं है जैसा कि छपा है) सारे, समूह; निकंदिनी=नाश करने वाली; सिंगार=शोभा; त्रयताप=तीन ताप—दैविक, दैनिक और भौतिक; कुर=क्रूर, पातकपंक=पाप रूपी कीचड़।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अर्थः—कहीं कहीं पत्तों के बीच से यमुना की झलक मिल जाती हैं, जो कलियुग के पाप रूपी करोड़ों कगारों या किनारों के समूह नाश करने वाली हैं। जिस प्रकार नदी की धारा कगारो या किनारे की मिट्टी को गिराती आगे हुई बहती है उसी प्रकार यमुना की धारा पाप रूपी कगारों को गिराती हुई बहती है अर्थात् समस्त कलियुग के पापों का नाश करती है। यह सुन्दर सरिता सरसता और शोभा मय है और दैहिक दैविक भौतिक तापों को नष्ट करने वाली है। यह क्रूर और पथभ्रष्ट मनुष्यों की पाप रूपी कीचड़ को वहा ले जाती है अर्थात् उन्हें पाप मुक्त करती है।

(४) असित ओप·························रंगति।

शब्दार्थ—असति=श्याम; ओप=आभा, शोभा; गंजनहारी नाश करने वाली; हरि-जन-पाँडव=कृष्ण भक्त पांडव; प्रेम-पद्धति= प्रेम की रीति; पंगति=पंक्ति।

अर्थ—यह श्याम आभा वाली यमुना इस प्रकार दुख और दारिद्र के समूह का नाश करने वाली है, जिस प्रकार हरि के भक्त पाँडवों के कार्य के लिये द्रौपदी की लाज रखने वाली सांड़ी थी। यह यमुना श्याम रंग में लिखी हुई प्रेम रीति की एक पंक्ति हैं, जिसकी टीका में ही समस्त इतिहास और पुराण रंगे पड़े हैं। अर्थात श्याम रंगवाली यमुना स्वयं प्रेम का एक लेख है जिसकी व्याख्या पुराण और इतिहास करते हैं।

विशेष—यहां यमुना को प्रेम रुप धारण करने वाली बताया गया है।

(५) अखिल लोक·························कल कूंजी।

शब्दार्थ - अखिल लोक—समस्त संसार; पटरानी=महारानी रांची=रंगी हुई; सानी=सनी हुई; कृपा.कोर=कृपा का संकेत; कल =सुन्दर; कूंजी=ताली।

अर्थ—यमुना समस्त संसार के नायक श्री कृष्ण को आनन्द देने वाली महारानी है। यह अपने प्रिय स्वामी के सुन्दर रंग में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रंगी हुई अत्यन्त सुखी है (कृष्ण का वर्ण श्याम है यमुना भी श्याम वर्ण की हैं—अत: यह उचित कि वह अपने प्रियतम के रग में रंगी है अंतिम सुन्दर है) ब्रज की महान्ता के रहस्य की सार पूर्ण पूंजी की ताली एक यमुना की कृपा का सकेत ही है। अर्थात् यमुना की कृपासे ही ब्रज के समस्त रहस्यों का सार समझ में आ जाता है।

पृष्ट—१०५

(६) सुमन-हिंडोरा ........................बखानो ।

शब्दार्थ—तेहिं=उस; बानक=सज धज; सुमन=पुष्प, सुन्दर चित्त; दीच्छा गुरु=दीक्षा देने वाला गुरु; राजत=राजन के स्थान पर 'राजत' छपना चाहिये) सुशोभित; तियनि=स्त्री; चितौनि=चितवन; चल=चचल;

अर्थ—पुष्पों का हिंडोला(झूला), उस मंडलाकार स्थान के बीच में सुशोभित है जिसकी सुन्दर सजधज देखकर (१) पुष्प भी सकुचा जाते हैं (२, सुन्दर चित्त भी सकुचा जाते हैं अर्थात लज्जित हो जाते हैं। यह इस प्रकार शोभा पा रहा है मानो सुख सागर को तरंगित करने वाला दीक्षा गुरु हो अर्थात् गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर जिस प्रकार जीवनमें सुख सागर तरंगित हो जाता है उसी प्रकार यह सुन्दर हिंडोला अत्यन्त सुख देने वाला है। यहा तरुण स्त्रियों की चचंल चितवन के सार का कवि वर्णन करता है क्योंकि हिंडोले के झूलने के साथ झुलाने वाली तरुणियों की दृष्टि भी इधर उधर झूलने लगती है।

(७) कैधौं लाज........................नित इत उत ।

शब्दार्थ—कैधौं=अथवा; मध्या=काव्य में वह नायिका, जिसमें लज्जा अथवा काम भाव जाग्रत हों; अभिसार=नायिका का नायक से संकेत स्थान पर मिलने जाना; कामिनि=स्त्री; राग=प्रेम; कुल कानि=कुल की मर्यादा: अनुरागिनी=प्रेम करने वाली; ठिकु ठहराय=थोड़ा रुकना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**संकेत**—इस पद में तरुण स्त्रियों की चंचल चितवन के इधर उधर झूलने का सुन्दर चित्रण है।

**अर्थः**—तरुण स्त्रियों की चंचल दृष्टि एक क्षण को भी स्थिर नहीं रहती. वह नित्य प्रति इधर उधर झूलती रहती है। उसकी चंचलता इस प्रकार की है जैसे कि मध्या नायिका का चित्त लज्जा और काम भावों के बीच में पड़कर उद्विग्न रहता है या जिस प्रकार अभिसार के समय स्त्री का हृदय धड़कता है अथवा प्रेमिका का मन प्रेम और कुल की मर्यादा के बीच में किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है।

(८) चुनि चुनि ··· ····· ········ ·· ····· सुरभी बर।

**शब्दार्थ**—अलिनि=सखियां; लर=माला; कीर=तोता सुरभी=गाय, बर=उत्तम।

**अर्थ**—सखियों ने बेला की कलियां चुन चुन कर, मालायें गूंथ गूंथ कर बना लीं और हिंडोले के दोनों खम्भों से सुन्दर सुन्दर रेखा बना बना कर लपेट दीं उन्होंने कहीं फूल, कहीं बेल बूटे और कहीं वृक्ष बनाये और उनके बीच बीच में तोते, मोर, हिरण और सुन्दर गायें भी अंकित कर दीं।

(९) बांधि सुमन········ ····· ·· ·· मुनिनि मन।

**शब्दार्थ**—बपु=शरीर; छवि छवित=सुन्दरता से परिपूर्ण; लसत=सुशोभित होते हैं।

**अर्थ**—अनेक प्रकार के रंगों के पुष्पों को बांध कर बड़ी उमंग ने साथ अनेक पशु पक्षियों के रूप चित्रित किये। जहां जहां भी जिस उचित रंग की आवश्यकता थी, वही संजोया गया। इस प्रकार पुष्प रचित सुन्दर हिंडोले को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो कि सुन्दरता से परिपूर्ण पुष्प समूह अनेक शरीर धारण करके वहाँ की शोभा का निरीक्षण कर रहा हो। यह सुन्दर हिंडोला अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सात्विक गुणों के कारण शोभा को प्राप्त होता है और चारों ओर मुनि मन में इसे देखकर प्रसन्न होते हैं।

बनावटी साहित्यकार—

(१) यै अब ..................................नाहीं।

शब्दार्थ—इमि = इस प्रकार; जाँचक = यहां पर यह शब्द जाँच करने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, समीक्षक।

अर्थ—परन्तु अब तो कितने ही इस प्रकार के सत्यानाश करने वाले कवि और समीक्षक हो गये है जो रसानुभूति से पूर्णतः उदास रहते हैं अर्थात् जो इस ओर ध्यान नहीं देते कि रस काव्य की आत्मा है अतः उसकी अनुमति काव्य में आवश्यक है। आज के ऐसे कवि और समीक्षक शब्द और उनके अर्थ का अपने हृदय में कुछ ज्ञान ही नहीं रखते। उनमें थोड़ी भी कविता या समीक्षा करने की शक्ति प्रवीणता और अभ्यास कुशलता नहीं होती।

(२) बिन प्रतिभा ..................................लच्छन ठाने।

शब्दार्थ—अर्थ शून्य = अर्थ रहित अर्थात् व्यर्थ; लच्छन = लक्षण;

अर्थ—कवि विना प्रतिभा के लिखते हैं और समीक्षक विना ज्ञान के समीक्षा करते हैं और इसी पर अहंकार से परिपूर्ण दिन रात इधर उधर घूमते रहते हैं। इधर उधर से सामग्री एकत्रित करके किसी साहित्य ग्रंथ का निर्माण करते हैं जो कहीं पर तो अर्थ शून्य होता है और जिसमें कहीं कहीं पर विरोधी लक्षण भी मिलते हैं।

पृष्ट १०६

(३) जानतहू नहिं ..................................अरुझानो।

शब्दार्थ:—अतिव्याप्ति = किसी लक्षण या कथन के अन्तर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने को 'अतिव्याप्ति' दोष कहते हैं; स्वयंभव = अपने आप; तुकान्त विन = अतुकाँत, अरुझानो = उलझा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ:—ये कवि और समीक्षक यह भी नहीं जानते कि 'अति व्याप्ति और असंभव अव्याप्ति आदि दोष क्या हैं और अपने आप ही आचार्य और साहित्य कार बन बैठते हैं। कोई तो खड़ी बोली पर ही दीवाना हो रहा है या रीझ रहा है और कोई अतुकान्त कविता लिखने में ही उलझा हुआ है।

(४) अनुप्रास.........................उपजावै।

शब्दार्थ—अनुप्रास प्रतिबन्ध=अनुप्रास का बन्धन, यहां कवि का अन्त्यानुप्रास नामक अलंकार है जिसके द्वारा तुकान्त कविता लिखी जाती हैं।

अर्थ—जिनके हृदय को अनुप्रास का बन्धन नहीं रुचता, वे पद्य के समस्त बन्धनों को त्याग कर गद्य ही क्यों नहीं लिखते? एक सुकवि की शक्ति को अनुप्रास कभी कम नहीं करते, यदि सत्य पूछा जाय तो वे हृदय में नवीन कल्पनाओं की उत्पत्ति करते हैं।

(५) ब्रजभाषा औ .......................दीजे दरि।

शब्दार्थ—लेखै=दिखाई पड़ते हैं; विधना=ईश्वर, श्रवन=कान, नीके=सुन्दर, हित=लिये, सारद=शारदा; दुर्गति=कुबुद्धि; दीजै दरि=दूर दें; नष्ट कर दें।

अर्थ—जिन्हें ब्रजभाषा और अनुप्रास फीके दिखाई पड़ते हैं वे पहले ईश्वरसे मानवके सुन्दर कान प्राप्त करने को विनय करें अर्थात् यहां कवि व्यंग्य द्वारा कहता है कि जो वास्तव में मानवी कांन रखते हैं वे ही ब्रज भाषा और अनुप्रास की सरसता समझ सकते हैं। कवि कहता है—हम शारदा से इन लोगों के लिये विनय करते हैं कि वे किसी प्रकार इनके हृदय के अज्ञान का नाश कर दें।

(६) जासों ये..........................अधिकाई।

शब्दार्थ—आनन्द प्रद=आनन्द दायक काव्य; बहुरि=फिर;

अर्थ—जिससे ये सच्चे और आनन्द दायक काव्य का सुख प्राप्त करें और आग्रह पूर्वक दूसरे को भी नित्य प्रति बहकाने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


प्रयत्न न करें। और फिर सच्चे कवि और सुखदायिनी काव्य कला उत्पन्न हो और भारत में सर्वदा उन्नति की अधिकता बनी रहे अर्थात् भारत सदा अधिकाधिक उन्नति के पथ पर बढ़ता रहे।

उद्धव की व्रज यात्रा—(उद्धव शतक से)

( ) आय व्रज पथ ······· ······जात हैं।

शब्दार्थ—कान्ह=श्री कृष्ण; कथानि=कथाओं; बुझाई=समझाकर; ध्याइ उर=हृदय में स्मरण कर; उससि=उमड़ती हुई; भरि=बहुत; हुलास=आवेग, अभिलाषाये; पुरात हैं=समाप्त होती हैं; सीर तपै=शीतल (सुखद) तापमय दुखद; बातनि=बात, वायु; घातनि=थपेड़ा, चोट; झौंक=झौंका, प्रवाह;

संदर्भ संकेत—जिस समय श्री कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव व्रज की ओर गमन करते हैं उस क्षण व्रज मार्ग पर श्री कृष्ण उन्हें छोड़ने के लिये आते हैं, यही दृश्य इस पद में अंकित है।

अर्थ—व्रज की ओर जाने वाले मार्ग पर आकर जब श्रीकृष्ण ने ऊधव को रथ पर चढ़ा दिया। परन्तु ऊधव के विदा लेते समय श्री कृष्ण का हृदय व्याकुल हो, इस व्याकुलता का कारण कुछ ऐसी कथायें थी जिनका वर्णन नहीं दिया जा सकता। 'रत्नाकर' कहते हैं कि श्री कृष्ण पहले उद्धव को कुछ समझा कर पैर रोक लेते हैं और उद्धव आगे बढ़ जाते हैं परन्तु फिर उनके हृदय में किसी बात का स्मरण हो आता है और वे दौड़कर उद्धव से उलझ जाते है या बात चीत करने लगते हैं। इस समय उमड़ते हुये उच्छवासों से और बहते हुये आंसुओं से प्रेकट होने पर भी उनके हृदय में भरी हुई अनेक अभिलाषायें समाप्त ही नहीं होती। श्रीकृष्ण को अनेक सुखद और दुखद संदेश देने हैं (१) तो इन संदेशों की प्रबल वायु के थपेड़ों के झौकों में पड़कर वे उद्धव के साथ ही बहे चले जाते हैं। (२) तो इन संदेशों की बातों के थपेड़ों के प्रवाह में पड़कर वे उद्धव के साथ ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



श्री कृष्ण लगे चले जाते हैं।

उद्धव का व्रज में गमन—

(२) भेजे मनभावन·· ··············सवैं लगीं।

शब्दार्थ:—सुधि=समाचार; गुवालिनि=गोपिकायें; झौरि झौरि=समूह के समूह; पौरि=द्वार; पंजनि पै=पंजो पर उछल उछल कर; पेखि=देख कर; छौहनि छवैं=प्रेम से छविमान।

प्रसंग—उद्धव के व्रज पहुँचने पर व्रजगामों से आई हुई गोपिकाओं की उत्सुकता का वर्णन किया गया है।

अर्थ:—मन को प्रिय लगने वाले श्री कृष्ण द्वारा भेजे उद्धव के आगमन का समाचार जब गोपिकाओं को व्रज गामों में प्राप्त होने लगा, तो उनके समूह के समूह दौड़ दौड़ कर नंद जी के द्वार पर आने लगे। गोपियां उत्सुकता के कारण आपने कमल वत पैरों के पंजों के सहारे उझक उझक कर देखने लगीं [क्योंकि उद्धव को चारों ओर से घेर रखा था अतः जो गोपियाँ पीछे थीं वे पंजों के बल उठ कर देखने लगी कि कौन आया है, क्या समाचार लाया हैं] श्री कृष्ण द्वारा भेजे पत्र को देख देखकर सबके वक्षस्थल प्रेम से छविमान होने लगे। इस प्रमोद्रक की स्थित में सब उत्सुक होकर पूछने लगीं—हमें क्या लिखा है ? हमें क्या लिखा है ?

उद्धव के प्रति गोपियों का बचन—

(३) आए हो सिखावन कौं जोग··········बसावौ ना।

शब्दार्थ जोग=योग, संयोग, मिलाप; दरिवै कौं; मुकुर=शीशा, दर्पण; पाहन=पत्थर।

प्रसंग—एक गोपी उद्धव के योग का उपदेश सुनकर श्लेष से योग का अर्थ संयोग लेती हुई कहती है—

अर्थ—उद्धव जी यदि आप योग संयोग का उपदेश देने के लिए मथुरा से आये हैं आप ये बचन मत कहिये जो श्री कृष्ण के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रति वियोग के भाव उत्पन्न करते हैं। आपने यदि दया कर दर्शन दिया है जिससे कि हमारा दुख नष्ट हो तो अब उस दुख को और बढ़ाने का प्रयत्न मत करो। हे उद्धव ! भूलकर कर भी तुम अपने कठोर वचन रूपी पत्थर मत फेंकिये नहीं तो यह हमारा मन रूपी दर्पण (जिसमें श्री कृष्ण का प्रतिबिम्ब सुरक्षित है) टूट कर चूर चूर हो जायगा। एक मन मोहन ने पहले उस हृदय प्रदेश में बस कर फिर उसे छोड़कर उजाड़ दिया अब तुम इसमें अनेक मन मोहन बसाने बसाने का प्रयत्न मत करो। भाव यह है कि यदि हमारा मन रूपी दर्पण टूट जायगा तो उन टूटे हुये टुकड़ों में से प्रत्येक में मन मोहन का प्रति बिम्ब परिलक्षित होगा अतः एक मनमोहन के बसने पर तो यह दशा हो रही अनेक मन मोहन बसने पर न जाने क्या दशा होगी अतः उद्धव ! ऐसा मत करो।

(मुद्रणअशुद्धि—पहली पंक्ति में 'जो' से स्थान पर 'जोग' छपना चाहिये)

(४) रंग रूप रहित...... ..... .........करिहै कहा।

शब्दार्थ—लखात=दिखाई देना; ध्याइ=ध्यान करके; बिरहानल=विरह की अग्नि, सरि हैं=सम्पन्न होना, पूरा होना; अनंग =अंग रहित काम देव; अराधि=आराधना करके।

अर्थ—हे उद्धव ! इन वियोग की अवस्था में सारा संसार ही हमें रूप रंग से हीन दिखाई देता है और अब तुम वैसे ही एक और व्यक्ति अर्थात् निराकार ब्रह्म का ध्यान करने को कहते हो, तो बताओ कि हमारा धैर्य कैसे टिक सकता है ? हम तो विरह की भयंकर अग्नि में जल रही हैं अतः अब और ब्रह्म की ज्योति जगाने से यह आग और भी बढ़ेगी ; अब तो उद्धव तुम अपने ब्रह्म को अपने पास ही रखो। वह जो तुम्हारा अदृश्य और निराकार ब्रह्म है उससे अब हमारा कठिन काम नहीं चल सकता। एक ही अंगहीन काम देव हृदय में बसाकर हमारा सब साध पूरी हो गई अर्थात पहली यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दुर्दशा हुई (यहां व्यंग है) तो अब हम तुम्हारे अंग रहित ब्रह्म की उपासना करके क्या करेंगी ?

पृष्ट—१०८

(५) जोग को रमावै.........................कमेरी हैं।

शब्दार्थ—रमावै = लगावै; निपट = बिल्कुल; निवेरी = निर्लिप्त, मुक्त; सासना = शासन नियंत्रण; बासना = इच्छा या भाव सुरपति = इन्द्र; चेरी = दासी; कमेरी = दासी।

अर्थ—जोग का निराकरण करती हुई गोपिकायें कहती हैं-हे उद्धव ! यहां ब्रज में योग कौन स्वीकार करेगा तथा समाधि कौन लगायेगा अर्थात् लगायेगा। यहां सुख या दुख किसी की साध नहीं हम सब साध या कामनाओं से बिलकुल मुक्त हैं। इस प्रकार हमें निष्काम देखते हुए भी न जाने क्यों, हे उद्धव। तुमने यहां आकर सासों के नियंत्रण या प्राणायाम की भावना फैला दी है। हम यमराज का कुछ धन अपने पास नहीं रखे हुए हैं जिसमें हमें उनका डर हो और न हम इन्द्र की सम्पत्ति का ढेर चाहती हैं। हे उद्धव हम किसी ब्रह्म के पुरखों की दासी नहीं जो उनकी साधना करें हम सीधे कह देती हैं कि हम तो केवल श्री कृष्ण की ही दासी हैं।

(६) कीजैं ज्ञान भानु.........................हटि है नहीं।

शब्दार्थ—गिरि सृंगनि = पर्वत की चोटियां; कला = चतुराई, खटिहै = चलेगी; प्रेम तरु = प्रेम का वृक्ष, तूल = तुल्य; चारु चातकी = सुन्दर चातकी; बिहाइ = छोड़; लौटि पौटि = हेर फेर कर;

अर्थ—हे उद्धव ! अपने ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश पर्वत की चोटियों पर बखेरिये (जहां योगी और संत उसका आदर करेंगे) ब्रज की गोपियों का ज्ञान से क्या सम्बन्ध है अतः उधो ! ब्रज में तुम्हारी चतुराई थोड़ी भी नहीं चलेगी। आपके ज्ञान रूपी सूर्य के ताप से हमारा प्रेम रुपी वृक्ष सूखने नहीं पायेगा, इसकी डालियां और पत्ते तिनके के बराबर भी नहीं घटेंगे ! उधो ! हमारी जिह्वा सुन्दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



चातकी बन गई है जो पी पी की पुकार को छोड़कर और रटना नही लगा सकती। अर्थात हम चातकी के समान अपने प्रेण पर अटल हैं तुम हेर फेर कर बात का ववंडर क्यों बना रहे हो, हमारे हृदय में बसे हुए घन श्याम हट नही सकते। शेष से यह अर्थ भी हो सकता है कि तुम्हारी बातों के तूफान से हमारे हृदय प्रान्त में छाये श्याम घन तितर बितर नहीं हो सकते।

(७) चाहत निकारन........................हमारे में।

शब्दार्थ—उर-अतर=हृदय, बिलग=अलग; ल्याइ लाइ=लेकर; बेगि=शीघ्र, चेतवारे=चेतन, प्रान मूरि =प्राणाधार, मुकर=दर्पण,

अर्थ—हे उद्धव! यदि श्री कृष्ण को जो हमारे हृदय में बसे हुए हैं, तुम वहां से निकाल देना चाहते हो, तो समझ लो कि तुम्हारे योग मंत्र में वह बल नहीं है। तुम श्री कृष्ण को हमारे हृदय से अलग करना चाहते हो, परन्तु तुम्हारी यही नीति बिल्कुल उलटी है मैं यह पुकार कर कहती हूँ। हमारे प्राणाधार श्री कृष्ण ज्यों ज्यों हमसे दूर होते जाते हैं त्यों त्यों ही वे हमारे हृदय में और भी बसते जाते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे दर्पण के सामने खड़ा हुआ व्यक्ति जितना ही पीछे हटता जायगा दर्पण में उसका चित्र उतना ही अन्दर प्रवेश करता जाता है अतः ऊधो। यदि तुम उन्हें दूर करना चाहते हो तो पहले उन्हें मथुरा से यहां लिवा लाइये और फिर अपने चेतन मन में कोई उपाय सोचिये।

रहित सदाई ........................बरषा की है।

शब्दार्थ:—सदाई=सदैव; हरिआई=हरियाली; घायनि=घाव; ऊरध=दीर्घ, लम्बी पीर-पूरित=दुख से भरी हुई; चमक=कसक; चपला=बिजली;

प्रसंग:—कवि की दृष्टि में व्रज में सदैव वर्षा ऋतु ही बनी रहती है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ:—वर्षा की हरियाली की तरह गोपियों के हृदय का घाव सदा ही हरा बना रहता है। वियोगिनी बालायें जो लम्बी लम्बी आहें भरती हैं और दीर्घ स्वांस लेती हैं वही वर्षा की पूरवा हवा का झकोरा है। पीड़ा से परिपूर्ण गोपियाँ जो 'पी' 'पी' की पुकार लगाती हैं इसे ही वर्षा में पुकारने वाले पपीहा की रट समझनी चाहिये। विरहिणी गोपियों के नयनों से जल की झड़ी बराबर लगी रहती है और उनके हृदय में उठने वाली टीस या कसक ही बिजली की चमक है। इस प्रकार बिना श्री कृष्ण के ब्रजमंडल के घर घर में नित्य ही वर्षा की बहार छाई रहती है।

विशेषः—रत्नाकर जी का यह कथन कि 'घनश्याम के बिना ही ब्रज में नित्य बहार रहती है'— अत्यन्त सुन्दर है। प्रकृति में तो घनश्याम के रहने पर वर्षा होती है परन्तु ब्रज में बिना घनश्याम (कृष्ण) के ही सदा वर्षा बनी रहती है।

(६) लंके पन...... ........ .............गांठी नै।

शब्दार्थ:—पन=प्रण, सिद्धान्त; सूक्षम=सूक्ष्म; साँठी=सारहीन पदार्थ; पौरि=द्वार; हिरान्यौ=खो गई; नाठी=बलात्; हेरि=खोज; माटी=मट्ठा; आँठी=दही का थक्का; पूरि=भरकर; गर्व=गुमान; गाँठी=गाँठी

प्रसंग:—ब्रज से लौटकर उधव जब श्रीकृष्ण जी के पास गये तो ब्रे ब्रज में उनके ज्ञान का कैसा मूल्यांकन हुआ, इसके बारे में श्रीकृष्ण जी से कहते हैं।

अर्थ:—आपने जो अमूल्य और सूक्ष्म ज्ञान और योग के सिद्धान्तों को लेकर मुझसे ब्रज में जाने को कहा था, सो मेरे ज्ञान का मूल्य वहां किसी सारहीन पदार्थ के बराबर भी न आंका गया। अर्थात् वहां पहुँचने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि ब्रज की साधारणतम वस्तु भी हमारे ज्ञान और योग से कहीं अधिक बड़ी है। हमने स्थान स्थान पर पुकारा कि कोई उसे खरीद ले, और राधिका के पिता वृषभानु के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


द्वार पर तो बलात् हमारी बुद्धि ही खोगई। अर्थात् राधिका के विरह के कारण वहां इतनी व्यथा छाई हुई थी कि जिसे देख कर हमारी बुद्धि स्वतः खो गई। हम से उनकी करुण अवस्था न देखी गई अतएव आप ही उनकी दशा देख आइये। इसी देखने के फेर में पड़ कर हम दही के थक्के से बदल कर मट्ठा बन गये अर्थात् ज्ञानी और योगी की सघनता सब पानी पानी हो गई। जिस ब्रज में हमारा ज्ञान हमारे गर्व के साथ हमारी गांठ से गिर गया अर्थात् जिस ब्रज में हम अपने ज्ञान को गंवा बैठे उसी ब्रज की धूल हम अपने अंग प्रत्यंग में पूर्णतः रमा लाये हैं, भाव यह है कि ज्ञान का जो सूक्ष्म तत्व था वह ब्रज की प्रेम मयी वसुन्धरा में मिल कर स्वयं प्रेम रूप हो गया और हम अपने उस ज्ञान को त्याग वहाँ की प्रेम मय धूल रमा कर यहां लौट आये हैं।

## गंगा-गौरव (गंगावतरण से)

प्रसंग—सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को राज्य कार्य सौंप कर अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ की क्रियानुसार अश्व छोड़ा गया। इन्द्र ने इस अश्व को लेकर पातालपुरी में कपिल ऋषि के आश्रम में बांध दिया। घोड़े की खोज करते जब सगर के बलशाली साठ हज़ार पुत्र पातालपुरी पहुँचे और घोड़े को ध्यान मग्न कपिल मुनि के आश्रम में बंधा पाया तो वे क्रोधित हो कर मुनि-कार्य में विघ्न डालने लगे। मुनि के सक्रोध दृष्टि पात करने मात्र से वे सब वहीं भस्म हो गये। इधर सगर की आज्ञा पा अंशुमान अपने पूर्वजों की खोज में पाताल पहुँचा, वहां पर उसकी गरुड़ से भेंट हुई। गरुड़ ने अंशुमान को सब हाल बताया और कहा कि अब इन सगर के पुत्रों का उद्धार गंगा जल से हो सकता है। अंशुमान के पूछने पर गरुड़ ने गंगा की महिमा का वर्णन किया यही वर्णन संकलित अंश में प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(१,२) अंसुयान की·················· मर्जाद वहीं है ।

शब्दार्थ:—मंजु=सुन्दर; खगपति=गरुड़; मतिसींव=महान् बुद्धिमान, गुनि=समझकर; ग्रीव=गरदन; छन=क्षण, सहस्र=हजारों; सेस=शेष नाग; विगत-बकवाद=विवाद रहित; मर्जाद=सीमा

अर्थ:—चतुरता के साथ अंशुमान द्वारा कहे सुन्दर वचनों को सुनकर महान् बुद्धिमान गरुण फड़के उठे अर्थात् आंदित हो उठे, और सब कुछ समझकर गरदन हिलाई, वे गंगा के रूप और गुणों का स्मरण कर एक क्षण के लिये आनन्द मग्न हो गये, फिर संभल कर तथा हृदय में धैर्य धारण कर उन्होंने प्रसन्न मन कहना प्रारंभ किया।

हे तात ! हम गंगा की महिमा की क्या चर्चा करें, सहस्त्र शारदा और शेषनाग जिसकी महिमा का वर्णन करते हैं परन्तु उन्हें भी महिमा का पार नहीं मिलता। समस्त विवादों से रहित गंगा ही पूर्ण ब्रह्म का रूप हैं। सगुण और निर्गुण उपासना के विवाद के बीच गंगा ही सीमा हैं अर्थात् गंगा वह सीमा है निर्गुण और सगुण उपासना का विवाद भी समाप्त हो जाता है।

(३,४) कोटिन विधि······················सिहाय ।

शब्दार्थ—कोटिन=करोड़ों; विधि=ब्रह्मा; हरि=विष्णु हरहिं=शिव को; सृजन=उत्पन्न करना; छिनसावत=नाश करना द्रवीभूत=पिघला हुआ, तरल; पारावार=समुद्र; विरचि=ब्रह्मा; संचि=संचरित करके; हर=महादेव।

अर्थ—करोड़ों ब्रह्मा विष्णु और महेशों को जो गंगा अनेक प्रकार से नचाती रहती हैं और संसार में अपनी इच्छा के अनुसार ही जीवों को उत्पन्न करके उनका पोषण और फिर विनाश करती है, सो गंगाजल उसी का पवित्र और स्वच्छ तरल रूप है, इसी कारण उसके प्रभाव की भावना प्रबल रुप में सबके मन पर छाई हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



गंगा की महिमा अति महान है, उसको कौन जान सकता है उसकी महिमा का समुद्र अपार है, उसको कौन पार कर सकता है। अति आदर के साथ एकत्रित करके ब्रह्मा भी उसकी सेवा करते हैं, विष्णु और महादेव भी उनके भाग्य पर प्रसन्न होते रहते हैं।

विशेष—गंगा जल पहले ब्रह्मा कमंडल में ही सुरक्षित था, अनेक तपों के फल स्वरूप वह पृथ्वी पर गंगा नदी के रूप में सगर के पुत्रों को तारने के लिये भगीरथ द्वारा लाया गया।

(५,६) माया ब्रह्म ..............................परि गई।

शब्दार्थ—जुगल=दोनों; थल=स्थान; भुक्ति=भोग; करतल=हाथ; गुन गन=गुणों का समूह; गहकि=उमंग से भरकर गिरा=वाणी;

अर्थ—गंगा में माया और ब्रह्म के दोनों स्वरूप एक ही स्थान पर प्राप्त होते हैं? इसके सुन्दर दोनों हाथ भोग और मुक्ति फल करने वाले हैं। भाव यह है कि माया का स्वरूप भोगों में लिप्त करता है और ब्रह्म स्वरूप मुक्ति प्रदान करता है। कोई भी कार्य इसके लिये असंभव नहीं है, अकारण ही ये सब कार्य सम्पन्न करती है—केवल एक बात को छोड़कर और वह यह है कि पापी को पाकर भी उसका उद्धार न करे अर्थात यह कार्य उसके लिये असंभव हैं कि पापी को पाकर भी उसका उद्धार न करे।

इस प्रकार गंगा के गुणों के समूह का वर्णन करती हुई गरुड़ जी की वाणी उमंग पूरित होकर गद गद हो गई, मानो कि वह भी गंगा के प्रबल और अथाह की चंचल तरंगों में पड़ गई हो।

**आलोचनात्मक प्रश्न—**

प्रश्न (१) रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त कीजिये।

## उत्तर

खड़ी बोली की उन्नति के युग में ब्रज भाषा की श्रेष्ठता सिद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



करने वाले कवि जगन्नाथ दास रत्नाकर की काव्य प्रतिभा अत्यन्त उच्च कोटि की है। ब्रजभाषा के उपासकों में रत्नाकर जी सम्भवत अंतिम थे। किन्तु भाषा की प्राँजलता, उक्तियों का सुन्दर प्रयोग, अनुभावों का सजीव चित्रण जो आपके काव्य में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा का पूर्ण परिचय वहा पर मिलता है जहाँ वे किसी चित्र को उपस्थित करने के लिए उससे सम्बन्धित परिस्थियों का क्रमिक चित्रण करते हैं। उनके चित्रों में अभिव्यक्ति का पूर्ण सामंजस्य प्राप्त होता है और एक नवीन जीवन की अनुभूति पाठकों की होती है। 'उद्धव शतक' से एक उदाहरण देखिये जब गोपियां उद्धव जी की योग की भीषणता और अपनी कोमलता का बखान करती है—

चंद अरविन्द लो सराहयौ ब्रजचंद जाहि।
ता मुख कौं काक चंचुवत करिवौं कहौ।।
छेदि छेदि छाती छलनी के बैन बाननि सौं।
तामें पुनि ताइ धीर नीर धरिवौं कहौ।।

योग धारण में महान् तपस्या, विभूति रमाना आदि का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए गोपियों द्वारा 'मुख काक चँचुवत' कहा कर रत्नाकर जी काव्य में नाम-सौंन्दर्य तथा चित्रोपमता आदि गुणों का समावेश कर अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

मधुर एवं ललित पदावली के प्रयोग के कारण आपके काव्य में संगीत के तत्व की यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। व्यंजना शिल्प के द्वारा आपने अपनी भावनाओं को चमत्कार पूर्ण बनाने में श्लाघनीय प्रयत्न किया है। श्लेष अलंकार द्वारा व्यंजना सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिये—

राखौ धरि ऊधौ! उतै अलख अरूप ब्रह्म।
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एक ही अनंग साधि साध सब पूरी, अब
और अंग-रहित अराधि, करिहैं कहा ॥

भाव और कला पक्षों का सुन्दर सामंजस्य रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा की उत्कृष्टता का प्रबल प्रमाण है। उपमा, रूपक, अप्रस्तुत प्रशंसा वक्रोक्ति, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि के प्रचुर रूप आपकी कविता में उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के अलंकारों के प्रयोग में उनके काव्य में भाव पक्षीय सौंदर्य में विशेष आकर्षण का विधान हुआ है—एक उदाहरण दिया जाता है जिसमें भाव पक्ष और कला पक्ष का सौंदर्य स्पष्टतः व्यक्त होता है—

टूक टूक ह्वै है मन मुकुर हमारौ हाय।
चूकि हूँ कठोर वैन पाहन चलावौ ना ॥
एक मन मोहन तो वसि कै उजारयौ मोहि।
हिय में अनेक मन मोहन बसावौ ना ॥

कहीं कहीं रत्नाकर जी ने विहारी आदि प्राचीन कवियों की भांति वियोग ताप की अधिकता अत्युक्ति के साथ चित्रित कर अपनी काव्य कुशलता का परिचय दिया है। विरहिणी गोपियों के पत्र लिखते समय का चित्रण देखिये—

सूखि जाति स्याही लेखिनी के नैंकु डंक लागैं।
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है ॥

वास्तव में खड़ी बोली के युग में व्रजभाषा में सुन्दर, प्रभावोत्पादक काव्य का चित्रण करना रत्नाकर जी की महान प्रतिभा का ही परिचायक है।

प्रश्न (२) 'रत्नाकर आधुनिक काल में व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि क्यों माने जाते हैं ?

## उत्तर

रत्नाकर जी व्रजभाषा के सिद्ध हस्त कवि थे, उन्होंने अपने जीवन काल में आधुनिक हिंदी कविता के तीन युग देखे—भारतेंदु युग,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



द्विवेदी युग और छायावादी युग। परंतु विशेष बात यह है कि रत्नाकर जी युग परिवर्तन से बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए। अपने जीवन काल में उन्होंने हजार से भी अधिक पदों की रचना की होगी लेकिन वे सब व्रजभाषा में ही लिखे गये हैं। जिस समय रत्नाकर जी ने काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय 'रसखान के गुण गान' की भाषा का नाम लेना जंगलीपन समझा जाता था। पंत प्रसाद निराला ने छंदों के बंधन ढीले कर दिये थे परंतु रत्नाकर को छंद बंधन हीन खड़ी बोली की कविता रसहीन प्रतीत होती थी, उन्हें बजभाषा का माधुर्य अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ जिसके कि दर्शन उन्हें खड़ी बोली के काव्य में नहीं होते थे अतः रत्नाकर जी ने स्वेच्छा चरिता से कार्य न लेकर व्रजभाषा के पुराने माधुर्य को ज्यों का त्यों बनाये रखने की चेष्टा ही नहीं की अपितु उसे और भी बल प्रदान किया। वास्तव में यह कथन पूर्णतः सत्य है—'भाषा को साहित्यिक एक रूपता देने का जो कार्य आचार्य केशव के द्वारा उठाया गया था, महाकवि बिहारी लाल के द्वारा आगे बढ़ाया जाकर, कविवर घनानंद द्वारा प्रोढ़ किया गया था, वही रत्नाकर जी द्वारा पूरा किया गया।

इस कथन के आधार पर ही हम कह सकते हैं कि रत्नाकर जी व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वस्तुतः रत्नाकर जी ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पूर्ण प्रधानता प्राप्त करने वाली सर्वमान्य व्रजभाषा को वह निश्चित एक रूपता दी है जो साहित्यिक भाषा के लिये अनिवार्य ही ठहरती है और जिसके ही आधार पर स्थायी साहित्य की रचना की जा सकती है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो रीति कालीन कवियों ने भाषा के शब्दों को इच्छानुसार तोड़मरोड़ कर, उसकी स्थिरता पर कुठाराघात किया था। भाषा का सर्वश्रेष्ट स्वरूप वह है जिसमें एक रूपता हो—यही एक रूपता व्रज भाषा को रत्नाकर जी ने प्रदान की और खड़ी बोली की प्रबल आंधियों के बीच भी हिमालय की भांति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अडिग रह कर व्रजभाषा की सेवा की। उन्होंने खड़ी बोली की प्रतिद्वन्द्वता में व्रजभाषा का कोमल सरस और शक्तिशाली स्वरूप प्रस्तुत किया। उन्होंने प्राचीन अप्रचलित व्रज भाषा के प्रयोगों का वहिष्कार किया। भावों और रचनाओं के अनुकूल भाषा और छंदों का उपयोग आपने किया। उन्होंने विदेशी भाषा का उपयोग न के वरावर ही किया है। उन्होंने बनारसी बोली के शब्दों को भी व्रज भाषा के सांचे में ढालकर अपनाया है। सारांश यह है कि यह है कि उन्होंने सब प्रकार व्रजभाषा को महान स्वरूप देने का प्रयत्न किये। वे सच्चे स्वरूप में व्रज भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं।

प्रश्न—३ 'रत्नाकर' ने जिन युक्तियों द्वारा गोपियों का श्री कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट किया, है उनकी विशेषतायें लिखिये।

## उत्तर

'उद्धव शतक' में गोपियों और उद्धव के वार्तालाप द्वारा यह प्रकट होता है कि गोपियां कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम रखती थी और उद्धव का ज्ञानोपदेश उन्हें अपने मार्ग से हटा नहीं सका। गोपियों ने जिन युक्तियों द्वारा उद्धव के ज्ञान मार्ग का खंडन किया और अपने प्रेम की अभि व्यक्ति की वह ध्यान देने योग्य है।

प्रारम्भ में गोपियां जो उत्तर देती हैं वह सरल और स्वाभाविक है तया मर्मस्पर्शी भी हैं। वे उद्धव के ज्ञान मार्ग का या व्रह्म का अर्थ न समझ बड़ी सरलता के साथ पूछती हैं कि प्यारे कृष्ण कब आयेंगे

ऊधौ कहौ सूधौ सो सनेस पहिले तौ यह।
प्यारे परदेश तैं कबैं धौ पग पारि हैं॥

यह कथन गोपियों के सरल प्रेम का परिचायक है। परन्तु जब आगे उद्धव अपने बह्म का राग अलापते ही जाते हैं तो गोपियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अनेक युक्तियों से कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती हुई निर्गुन ब्रह्म का खंडन करती है।

कभी वे योग का अर्थ संयोग से लेकर उद्धव के विरक्त करने वाले योग को असंगत बताती है—

आए हो सिखावन कौं जोग मथुरा लैं तोपै
ऊधौ ! ये वियोग के वचन बतरावौ ना।

गोपियाँ कृष्ण के प्रति ऐसा अनन्य प्रेम रखती हैं कि वे वियोग के शब्दों को सुनना तक नहीं चाहती और कहीं तो आवेश में आकर यहाँ तक कह देती हैं — 'चेरी हैं न ऊधौं ! काहु ब्रह्म के बाबा की हम; सूधो कहि देति एक कान्ह की कमेरी है'। ये शब्द गोपियों के हृदय में ब्रह्म के प्रति रोष और कृष्ण के प्रति अनुराग के परिचायक हैं।

गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं उद्धव तुम अपने कार्य में सफल नहीं हो सकते— 'ब्रज में तिहारी कला नैक खटिहैं नहीं' — यह शब्द गोपियों की इस युक्ति की सूचना देते हैं, जो कोई व्यक्ति किसी से उकता कर प्रयोग में लाता है और कह उठता है — 'कि तुम चाहे जितना बके जाओ तुम्हारी एक भी बात नहीं चल सकती गोपियों को अपने प्रेम में अटल विश्वास हैं और इसी विश्वास का प्रतिपादन करती हुई निम्नपद में तो गोपियों की उक्ति के सामने उद्धव भी मुँह की खा जाते हैं—

ज्यों ज्यों बसे जात दूरि दूरि प्रान मूरि
त्यों—त्यों धंसे जात मन मुकुर हमारे में !

ये पद गोपियों की उस भावना का परिचायक है जो कृष्ण के दूर रहने में भी समीपता का अनुभव करती है। यहां पर गोपियां जिस युक्ति द्वारा वियोग में भी कृष्ण की समीपता का अनुभव करती हैं— वह उद्धव के ज्ञान योग पर कृष्ण से विरक्त करने के प्रयास पर पानी फेर देती है। इस युक्ति में भाव यह है — उद्धव तुम जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हमें कृष्ण से दूर करने का प्रयत्न कर रहे हो – इसमें तुम प्रतिपल विफल हो रहे हो क्योंकि ज्यों ज्यों कृष्ण हमारे हृदय रूपी दर्पण से दूर हो जाते हैं त्यों त्यों ही उनकी मूर्ति हमारे मन रूपी दर्पण में और भी अधिक धंसती जाती है।

अंत में हम कह सकते हैं कि गोपियों की युक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अचूक हैं जो उद्धव को निरुत्तर बना देती हैं और लौटकर उद्धव को यही कृष्ण कहना पड़ता है— 'लैके पन सूछम अमोल जो पढ़ायो आप, ताको मोल तनक तुल्यौ नहीं तहाँ साँठा ते'।

प्रश्नः—४— पठित सामग्री के आधार पर गोपियों के चरित्र की संक्षेप में आलोचना कीजिये।

## उत्तर

पठित सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में इतनी रंगी हुई हैं कि उन पर उद्धव का रंग अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं चढ़ता। यहां गोपियों का चरित्र चित्रित करते हुए सूर की यह पंक्ति याद आजाती है —'सूर दास की कारी कांमर चढ़त न दूजो रंग।' गोपियाँ भी श्याम के रंग में श्याम मय हो गई थीं फिर उद्धव के ब्रह्म का ज्ञान का रंग उन पर कैसे चढ़ता। गोपियां अपने को केवल कृष्ण की सेविका स्वीकार करती है—

'चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के बधा की हम,
सूधो कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं।'

कृष्ण के वियोग में व्यथित गोपियाँ जब उद्धव के आने का संदेश पाती है तो वे दौड़ दौड़ कर उद्धव के समीप आजाती हैं और बड़ी उत्सुकता के साथ पूछती हैं—

हमको लिख्यौ है कहा, हमको लिख्यौ है कहा,
हमको लिख्यौ है कहा, कहन सवें लगीं॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


विरह विदग्ध गोपियों को अपने प्रेम पर विश्वास है, उन्होंने कृष्ण से सच्चा प्रेम किया था यही कारण है कि उद्धव की कोई भी युक्ति सफल न हुई और गोपियों ने प्रेम पथ पर अटल रह कर स्पष्ट कह दिया—

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर अन्तर तें
ताको जोग नाहिं जोग मंतर तिहोरा में ।

और भी कहा—

लौटि पौटि बात को बवंडर बनावत क्यों
हिय ते हमारे घन श्याम हटि है नहीं ।

धन्य है गोपियों के इस विश्वास और दृढ़ता को, जो उनके चरित्र को उस श्रेणी में रख देता है जिस में श्री कृष्ण के अनन्य भक्तों के चरित्र आते हैं।

गोपियां यह समझती हैं कि कृष्ण के वियोग में जल जल कर प्रति दिन उन की दशा गिरती जा रही है ! 'एक मन मोहन तो बसि के उजारयो मोहि '—कहने वाली गोपियां कृष्ण से विरक्त नहीं होती बल्कि वे तो चातक व्रत अपनाने में ही अपने प्रेम को धन्य समझती है—

'पीव पीव गोपी पीर पूरित पूकारति हैं
सोई रत्नाकर पुकार पपीहा की हैं ।'

वास्तव में गोपियां कृष्ण घनश्याम के लिये चातक बन गई थी—यह एक वाक्य उनके चरित्र को पूर्णतः अभिव्यक्त कर देता है

**प्रश्न–५. 'सूर' और 'रत्नाकर' एक ही परम्परा के कवि थे आलोचनात्मक दृष्टि से दोनों की काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डालिये ।**

## उत्तर

'सूर' और 'रत्नाकर' एक ही परम्परा के कवि थे-यह कथन पूर्णतः सत्य है। कृष्ण भक्ति धारा में इन दोनों कवियों ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



जो अवगाहन करके काव्य रूपी रत्न साहित्यिकों को प्रदान किये हैं, उनकी आभा सदैव जगत को आलोकित करती रहेगी।
कृष्ण भक्ति परम्परा में सूर और रत्नाकर सदैव अमर रहेंगे। दोनों अत्यन्त प्रतिभा शाली कवि थे।

सूर की भांति रत्नाकर जी भी सगुणोपासक कवि थे। रत्नाकर जी का 'उद्धव शतक' जिस प्रसंग को प्रस्तुत करता है, उसी प्रसंग को लेकर सूर ने अपने 'भ्रमर गीत' की रचना की। भ्रमर गीत प्रसंग को सूर ने अत्यन्त विस्तार के साथ उपस्थित किया हैं। एक ही परम्परा का अनुकरण कर सूर और रत्नाकर ने अपनी काव्य प्रतिभा का जो परिचय दिया, उसी के कारण ये दोनों कवि हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। एक दृष्टि से यदि देखा जाय तो रत्नाकर जी का कला पक्ष सूर से उत्कृष्ट है। सूर ने अपनी भावनाओं का प्रकाशन बोलचाल की बृज भाषा में किया था, परन्तु रत्नाकर जी ने इस ओर विशेष प्रयत्न कर ब्रज भाषा को साहित्यकता प्रदान की उन्होंने भाषा को एक रूपता प्रदान करके उसको स्थिरता दी। परन्तु सूर की भाषा चलती हुई होने पर भी चित्रमयता, सरसता और प्रासादिकता और अलंकारों के सुन्दर प्रयोग से युक्त है इन गुणों केकारण सूर का काव्य चमक उठा है, यह उनकी महान काव्य प्रतिभा का परिचायक है इसके अतिरिक्त सूर भाव जगत के तो सम्राट ही हैं अपने परिमित क्षेत्र में नवीन उदभावनाओं, कोमल कल्पनाओं के कारण हिन्दी साहित्य में उनका स्थान अति उच्च है। जहां तक रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा का सम्बन्ध रत्नाकर जी के काव्य में भी भाव पक्ष और कला पक्ष का सूर की तरह पूर्ण सामंजस्य है। सूरदास केवल कवि ही थे परन्तु रत्नाकर जी एक कुशल टीकाकार भी थे। 'बिहारी सतसई' की उनके द्वारा लिखी हुई टीका 'बिहारी रत्नाकर' का हिन्दी साहित्य में बड़ा आदर था। रत्नाकर जी ने वीर रस का भी सुन्दर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



चित्रण अपने काव्य में किया है। आपके काव्य में श्रृंगार के बाद वीर रस का ही प्राधान्य है सूरमें वीर रस न होने के बराबर ही है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं सूर और रत्नाकर एक ही परम्परा के अन्तर्गत आते हैं और उन दोनों की प्रतिभा समान रूप से कला पक्ष और भाव पक्ष में सामंजस्य उपस्थित करने में समर्थ रही है।

प्रश्न-६-रत्नाकर की भाषा की विशेषताऐं बताइये।

## उत्तर

यह तो सर्वविदित है कि रत्नाकर जी ब्रज भाषा के परम प्रेमी और मर्मज्ञ थे। आपकी ब्रज भाषा को शुद्ध ब्रज भाषा कह सकते हैं परन्तु उसमें कहीं कहीं बनारसी बोली की छाप है। साफी, गोरन, मकुआ आदि बनारसी बोली के शब्द हैं। रत्नाकर जी की भाषा व्याकरणानुमोदित, नियम नियंत्रित, लौकिक प्रयोगानुकूल संयत और सुव्यवस्थित है। आपका शब्द संगठन और काव्य विनास सूसंगठित और भाव पूर्ण होता है। आपका एक एक शब्द अपने स्थान पर नग और मीनों की भांति जड़ा हुआ है, उन्हें हटाना अत्यन्त कठिन है।

रत्नाकर जी की भाषा में सजीवता के साथ साकारता भी पाई जाती है चित्र चित्रण शक्ति का सुन्दर स्वरूप आपकी भाषा प्रस्तुत करती है एक चित्र देखिये—

उझकि उझकि पद कंचनि के पंजनि पैं।
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगीं॥
हमको लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा।
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबे लगी॥

गोपियों की उत्सुकता का कितना सजीव चित्रण है—

मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग भी रत्नाकर जी ने स्थान स्थान पर अपनी भाषा में किया है। कवि का कोई छंद ऐसा नहीं जहां मुहावरे दार भाषा न हो। 'चारा न चलना' 'कांटे के समान कसकना', 'बांया अंग फड़कना', 'मन मारना' आदि २ अनेक मुहावरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



का प्रयोग आपकी भाषा में यत्र तत्र मिलता है। लोकोक्तियों का प्रयोग रत्नाकर जी ने अपनी भाषा में उतना नहीं किया है जितना मुहावरों का। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—मुहावरा है 'सूर्य को दीपक दिखाना' इसे ही रत्नाकर जी ने इस रूप ये प्रयुक्त किया है—'दिपत दिवाकर को दीपक दिखैये कहा, यहां तो रत्नाकर जी ने प्रचलित लोकोक्ति का भी परिष्कार कर दिया है।

प्रश्न ७ रत्नाकर के काव्य के कला पक्ष पर रस, अलंकार और छंद की दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

रस—भक्त कवि के काव्य में शांत रस का आधिक्य तो रहता ही है, अतः रत्नाकर जी के काव्य में शान्त रस के दर्शन तो होते ही हैं, साथ २ अन्य रसों का निर्वाह भी सुन्दर रूप से हुआ है। श्रृंगार रस के अन्तर्गत संयोग और वियोग का अति सुन्दर और सजीव चित्रण आपके काव्य में रस परिपाक करता है। कृष्ण की विरहावस्था का चित्रण देखिये—

उससि उसांसिनी सौं बहि बहि आंसुनि सौं
भूरे भरे हिय के हुलास न उरात हैं

वीर रस का चित्रण आपने अपने 'वीराष्टक' नामक ग्रन्थ में किया है। करुण रस की अनुभूति आपके उन चित्रित दृश्यों में होती हैं जहां द्रोपदी को नग्न करने की चेष्टा की जाती है या 'हरिश्चन्द्र' में रोहतास की मृत्यु पर और राजा का पुत्र एवं पत्नी को बेचने पर इस रस का परिपाक हुआ है। रौद्र रस, गंगावतरण में शिव के अंग अंग से रौद्रता का चित्रण करने पर पुष्ट होता हुआ मिलता है। वीभत्स और हास्य के दर्शन भी आपके काव्य में मिलते हैं।

अलंकार—रत्नाकर जी साहित्य शास्त्र के मर्मज्ञ थे। अलंकार विधान में आपकी प्रवृत्ति अर्थालंकारों की ओर विशेष रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मिलती है। अनेक अलंकार तो आप की सहज वाणी के प्रभाव के साथ बहे चले आते हैं। आपका सबसे प्रिय अलंकार सांग रूपक है जो कि पूरे छंद में पाया जाता है। श्लेष का प्रयोग भी आपने किया है। उद्धव शतक में षट ऋतु वर्णन में तो श्लेष की भरमार है। एक ही अनग साधि साध सब पूरी अब, और अंग रहित अराधि कहिहै कहा'—में 'अनंग' ब्रह्म और कामदेव दोनों पर चरितार्थ होता है। यह श्लेष का अति सजीव उदाहरण है। कहीं कहीं रत्नाकर जी ने अपने नाम को भी श्लिष्ट रूप में प्रयुक्त किया है। अतिशयोक्ति का भी प्रयोग आपने किया है। इसके अतिरिक्त रूपक विरोधभास और उपमा अनुप्रास अलकारों का आपके काव्य में प्राधान्य है ये अलंकार रसोत्कर्ष में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं।

छंद—रत्नाकर जी ने अनेक छंदों का अपने सम्पूर्ण काव्य में प्रयोग किया है। रोला, दोहा, छप्पय, डल्लाला, कुंडलियाँ, कवित्त सवैया आदि छंदो का प्रयोग आपके ग्रथों में मिलता है। विषय के अनुरूप ही आपने छंदों का प्रयोग किया है उद्धव शतक' में आपने कवित्त, गंगावतरण में रोला और पौराणिक गाथाओं में आपने छप्पय छंद का प्रयोग किया है।

कुछ परीक्षोपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये—

(१) सुमन हिंडोरा.................................नित इत उत।

(देखो हिंडोला वर्णन पद संख्या ६-७)

(२) उद्धव शतक—( पद संख्या १ से लेकर ९ तक )

(६) माया ब्रह्म स्वरूप.........................पारि गाई।

(देखो 'गंगा गौरव' पद संख्या ५,६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



# बारह: मैथिलीशरण गुप्त

पृष्ठ—१११

**श्री मैथिली शरण गुप्त—**

**परिचय**—श्री मैथिलीशरणजी का जन्म सं० १९४३ में रामोपासक वैष्णव वैश्य कुल में श्री रामचरण जी के यहाँ हुआ। आपका निवास स्थान चिरगाँव जिला झाँसी है। राम भक्ति और कवित्व दोनों ही आपको पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुए। प्रारम्भ में आप पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का बहुत प्रभाव पड़ा आप उन्हें अपने गुरु रूप में मानते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने बन्दी गृह की भी यात्रा की। आप सरल स्वभाव वाले, दिखावे से दूर भागने वाले महा पुरुष हैं। आप रामोपासक वैष्णव हैं परन्तु धार्मिक कट्टरता आप में बिल्कुल नहीं है। आपने कृष्ण चरित्र का भी गान किया है और सिक्ख, मुसलमान, बौद्ध तथा ईसाई धर्मों की संस्कृति पर भी काव्य रचना की है। यह आपकी व्यापक राष्ट्रीय भावना का प्रमाण हैं कि आपने अन्य धर्मों के प्रति अपनी उदार श्रद्धा का परिचय दिया है। आप सच्चे अर्थों में हमारे राष्ट्र कवि हैं।

**साहित्यिक रचनायें—**

**आपकी मुख्य रचनायें**— (१) भारत भारती (२) जयद्रथ वध (३) हिन्दू (४) गुरुकुल (५) झंकार (६) विरिहिणी व्रजागंना, (७) यशोधरा, (८) सांकेत (९) द्वापर हैं। इसके अतिरिक्त पंचवटी, रंग में भंग, पत्रावली, वैतालिक स्वदेश संगीत, शकुन्तला, काबा कर्बला चन्द्र हास आदि आपकी अन्य छोटी छोटी रचनायें हैं। विरहणी व्रजागंना और मेघनाथ—वध आपकी अनुदित रचनायें हैं। 'साकेत' और 'यशोधरा' आपकी पुण्य प्रतिभा की परिचायक तथा सबसे अधिक प्रसिद्ध रचनायें हैं।

**साहित्य में स्थान**—गुप्त जी आधुनिक युग के खड़ी वोली के निर्माता तथा उन्नायक कवियों में से हैं। प्रारम्भ में आपने व्रजभाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की सरसता का खड़ी भाषा में समावेश कर यह सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली भी व्रज भाषा की तरह सरसता और कोमलता का वहन कर सकती है। लोक प्रियता और जनता के हृदय तक पहुँचने की दृष्टि से आप साहित्य में अद्वितीय स्थान रखते हैं। गुप्त जी ने अपने साहित्य द्वारा जो चेष्टा की है वह वे स्वयं राम से कहलवाते हैं—

संदेश यहां में नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

## टीका

पृष्ठ १११

### उर्मिला विरह वर्णन— ('साकेत' से)

**संदर्भ संकेत**—लक्ष्मण पत्नी उर्मिला के चरित्र चित्रण की ओर अन्य कवियों की उपेक्षा देख श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'साकेत' महाकाव्य की रचना की प्रस्तुत अंश जो हमारी पाठ्य पुस्तकमें सग्रहीत हैं वे उर्मिला के उस विरह पर प्रकाश डालते हैं; जिसका अनुभव उन्होंने लक्ष्मण के १४ वर्षों के लिए राम के साथ वन जाने पर किया था। विरहिणी उर्मिला का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करता है।

( १ )

हे मानस के............................ दुकूल में।

**शब्दार्थ**—गहन = वन; दृगम्बु = आँसू; दुकूल = अंचल।

**संकेत**—उर्मिला अपने आँसुओं को सम्बोधित करती हुई कहती है—

**अर्थ**—हे मेरे मन रूपी मानसरोवर के मोती ! बिना कुछ जाने तुम कहां ढलक चले। मानस को छोड़कर तुम्हारा अज्ञात प्रदेश में जाना व्यर्थ है। प्रियतम तो दूर वन में है, फिर मार्ग में अन्य कौन है जो तुम्हें पहचानेगा अर्थात प्रियतम यदि यहां होते तो पहचानते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इस वेदना के स्वरूप को और कोई नहीं पहचान सकता। अतः हे मेरे आंसू ! तू अधीर होकर धूल में न गिर, तू मेरे अंचल में आजा।

रहे एक ही पानी..............................दुकूल में।

शब्दार्थ :—

अर्थ :—मेरे और लता के मूल में एक ही पानी है। वही पानी लता को सींचता है और उसके भावों को पुष्प रूप में प्रगट करता है, वह पानी मेरे मानस में भी है परन्तु यहां आंखों से आंसुओं के रूप में निकल कर मेरे वेदना युक्त भावों को व्यंजित करता है। एक ही पानी वेदना और प्रफुल्लता दोनों का द्योतक बन रहा है। हे आंसू ! तू मेरे अंचल में आ जा।

फूल और आंसू ........ ........................दुकूल में।

शब्दार्थ — हूल = मनोवेग; मिलन सूत्र = मिलाने वाला डोरा, सूची = सुई; अनी = नोक, सिर ।

अर्थ — हृदय के मनोवेग से ही फूल और आंसू उठते हैं भावार्थ यह है कि लता के प्रफुल्ल हृदय का मनोवेग पुष्प रूप में प्रगट होता है और दुःखी मानस का मनोवेग आंसू के रूप में। सुई और धागे से फूल एक लड़ी में गूंथे जाते हैं अतः उर्मिला कहती है कि मिलाने वाले डोरे में पिरोने वाली सुई से मेरे विरह के शूल की नोक क्या कम है ? सुई की जगह यहाँ विरह का शूल है; वही आंसुओं के छेदे।

मधु हसने में.......................... ..........दुकूल में।

शब्दार्थ — मधु = मीठा; लवण = खारा पन; किंवा = अथवा

अर्थ — हास में मीठा स्वाद है और रुदन में खारा—कोई यह समझने में भूल न करे। आगे प्रश्न है कि वास्तविक आनन्द रुदन और हास रूपी किनारों पर रहने में है या इन दोनों के बीच मझधार में ? भाव यही है कि हास्य और रुदन की जो मध्य दशा है वहीं शांति मिल सकती है। न अधिक हंसना अच्छा न अधिक रोना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विशेष—'मौज किन्तु मझधार बीच है'—पढ़कर प्रसाद जी की निम्न पंक्तियां याद आ जाती हैं—

"छोड़ कर जीवन के अवसाद।
मध्य पथ से लो सुगति सुधार।।"

( २ )

नयनों को रोने ................................. ढोती है।

शब्दार्थ:—संकीर्ण=छोटा; पैठे हैं=छाये हैं; दशन=दाँत,

संकेत—उर्मिला अपने मन को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे मन! तू चाहे जहां पहुँच सकता है, तेरी तो गति सर्वत्र है, तेरे लिए क्या दूर क्या पास? हां नेत्रों की पहुँच सब जगह नहीं, अतः उन्हें रोने दे।

अर्थ—हे मन! तू छोटा मत हो या खिन्न मत हो, प्रिय यदि आंखों से ओझल हो गये हैं तो मन से तो ओझल नहीं हुए। मन तेरे लिये वे वास्तव में कहीं नहीं गये यहीं छाये हुए हैं, हां नयनों से वे दूर हैं अतः मन! तू नयनों को रोने दे।

आगे उर्मिला पूछती है—"आंख! तू सत्य बता दे कि तू रोती है या हंसती है।" रोते रोते आँख लाल हो जाती हैं जिनको कवि लाल अंधरों के समान मान लेता हैं और आंखों से जो आंसू गिरते हैं उनको वह दांतों के समान समझ लेता है। हंसने के लिए लाल लाल अधरों और दांतों की ही आवश्यकता होती है। अतः उर्मिला कहती है—हे आंख! तू सच सच बता दे कि तू रोती है या हंसती हैं, ये तेरे दांत और ओठ हैं या तू भर भर कर आँसू की बूंदे ढोती हैं।

पृष्ठ ४१२

(३)

सखे जाओ तुम .. ...... ...... ...... .. ..रोने में मोती।

अर्थ—हे जीवन साथी तुम हँस कर मुझे भूल जाओ 'परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मैं तो तुम्हारा स्मरण करके रोती ही रहूँगी । किन्तु मेरे रुदन का मूल्य भी तुम्हारे हास्य से कम नहीं । तुम्हारा हास्य यदि पुष्प वत है तो मेरे आँसू मोती के समान हैं।

मानती हूँ...... .......................रोने में मोती ।

शब्दार्थ—साध्य = इष्ट ; अहर्निशि = दिन रात ; आराध्य = पूज्य ; अबाध्य = बाधारहित ।

अर्थ—यह मैं मानती हूँ कि तुम्हीं मेरे एक मात्र इष्ट हो, दिन रात तुम्हीं मेरे पूज्य हो । मै चाहे जागती हूँ या सोती हूँ; मैं सदैव तुम्हारी ही अखन्ड साधना में लीन रहती हूँ । तुम्हारा हास

सफल हो सहज... ............ ...... रोने में मोती

शब्दार्थ—निष्फल = बेकार

अर्थ—उर्मिला इच्छा प्रगट करती है कि अयोध्या छोड़ कर बनवास द्वारा प्रिय ने जो त्याग किया है, उसमें उनको पूरी सफलता मिले । मेरा उनके प्रति प्रेम निष्फल नहीं है क्योंकि साधना का अंश ही स्वयं सिद्धि में परिवर्तित हो जाता है । यदि लोगों को अमृत की भूख न हो तो अमृत का कोई मूल्य नहीं अर्थात बिना साधक के साध्य वस्तु का मूल्य क्या? दोनो का गौरव अन्योन्याश्रित है तुम्हारा हास...

काल की रुके........ ... ..........रोने में मोती ।

अर्थ—समय की गति चाहे न रुके परन्तु संयोग से वियोग रा समय ही बड़ा होता है । संयोग में तो केवल 'लय' है अर्थात प्रिय में लीन हो जाना है परन्तु वियोग में 'प्रलय' है अर्थात् प्रकृष्ट रूप से लीन हो जाना है । सुख अथवा दुख के कारण चेष्टा और ज्ञान के नष्ट हो जाने का नाम 'प्रलय' है । ऊपर की पंक्तियों में प्रिय की याद में पूर्ण रूप से सुध बुध भूल जाने के अर्थ में ही 'प्रलय' शब्द का प्रयोग हुआ है । आगे उर्मिला कहती है—हे प्रिय ! तुम्हारे दर्शन के लिये आंसुओं से बराबर धोकर मैं आंखों को स्वच्छ रखती हूँ । तुम्हारा हास यदि पुष्पवत है तो मेरे आंसू मोती के समान हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ,तुझे भी .......... .............. निर्वाह ।

शब्दार्थ—अर्थ=हृदयके मनोरथ;पद=(१) शब्द (२) चरण

अर्थ—हे मेरे हृदय के मनोरथ ,यह कैसी बात है तूभी (१) शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति (२) प्रिय चरण सामीप्यकी चाह करने लगा। तू तो मन में ही निहित रहता तो अच्छा था । परन्तु क्या बिरह वेदना से तप्त हृदय में अब तेरा निर्वाह नहीं होता ? भाव यह है कि हृदय की बात को प्रगट किये बिना अब गुजारा नहीं ।

(४)

स्वजनि ! रोता है ........... .... है मेरा गान ।

शब्दार्थ – स्वजनि=सखी; जी का जञ्जाल=हृदय का दुख ;

अर्थ—उर्मिला कहती है कि हे सखी ! मेरे गाने में भी विषाद का स्वर मिला हुआ है , मेरा गाना ही रोना बन गया है । इस विषाद पूर्ण गान की तान प्रिय तक नहीं पहुँच पाती । हवा ही ध्वनी वाहक होती है परन्तु मेरा गान हृदय के दुख से इतना लदा हुआ है कि उसके बोझ को हवा भी नहीं सभाल पाती और फल स्वरूप शून्य में ही मेरे संगीत के सब स्वर और ताल बिखर जाते हैं। मेरा गाना और रोना समान रूप से विफल हो जाता है ।

पृष्ठ ११३

उड़ने को है....... ........ .. ....... मेरा गान ।

शब्दार्थ—भावानन्द= भावजनित सुख; छंद=बन्धन ।

अर्थ—मेरा भाव जनित आनन्द स्वछंद गति से उड़ने के लिये तड़प रहा है परन्तु अपने पद गौरव का ध्यान दिलाने वाले बंधन मेरी उन हृद्गत भावनाओं को बहला फुलसाकर मर्यादित करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं जिससे कि मुझसे कुछ अनुचित बात न हो जाय। परन्तु सखी ! मेरे गान ही रुदन बन गये हैं।

अपना पानी.......... ........ .........मेरा गात ।

शब्दार्थ— अजान=न जानना हुआ अर्थात रहस्य ।

अर्थ—उर्मिला कहती है कि अपनी आंख का पानी भी अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बात नहीं रख पाता अर्थात आंसू मेरे हृदयका रहस्य प्रगट कर देते हैं 'आंख का पानी ढल जाना' । यहां पर इस मुहावरे का प्रयोग बड़ी चतुरतासे किया है ।—भाव यह है कि विरहिणी की प्रतिष्ठा आज उसका साथ छोड़ रही है ,उसकी आंखों में पानी ढलकर उसकी निर्लज्जता को प्रगट कर रहा है ।

दुख भी मुझने...... .....................मेरा गान

अर्थ—उर्मिला कहती है कि कहीं ऐसा न हो कि दुख भी मुझने विमुख होकर और कहीं चला जाय । आज दुखों में ही किसी तरह मेरे प्राण अटके हैं । इस विरह में हे प्रियतम ! तूही मान जा और मेरे समीप आजा । हे सखी ! इन विरह में तो मेरा गान भी रूदन बन गया है ।

(५)

यही आता है.......................................मन में ।

शब्दार्थ—धाम = घर ; विघ्न = बाधा ; समाधान = निराकरण

अर्थ—उर्मिला कहती है—इस मन में अब तो यह इच्छा उत्पन्न होती है कि इस धन और धाम को छोड़ कर मैं भी उसी वन में निवास करूं जहां मेरे प्रियतम रहते हैं । मैं वहां प्रिय के व्रत में किसी प्रकार की बाधा न डाल कर उनके निकट और दूर भी बनूं रहूँगी भाव यह है कि मैं दूर दूर से ही उनका दर्शन मात्र करती रहूँगी। इस प्रकार उनके निकट भी रह पाऊँगी और दूर भी । प्रत्यक्ष मिलन न होने की व्यथा तो रहेगी ही, परन्तु उस व्यथा का निराकरण भी उनके दर्शन से होता रहेगा । वहाँ हर्ष रुदन में डूबा रहेगा परन्तु यहाँ तो हर्ष है ही नहीं , भाव यह है कि वहां रोने के साथ हर्ष का भी अनुभव होगा । अतः यही मन में आता है कि मैं भी वन में चली जाऊं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बीच बीच में............................................इस मन में।

अर्थ – बीच बीच में मैं उन्हें पेड़ों के झुरमुट की ओट से देख लिया करूंगी और जब वे निकल जाया करेंगे, तो मैं उस धूल में लोट लिया करूंगी और वे इस प्रकार अपनी साधना में संलग्न रहें और मैं उनका दर्शन लाभ भी करती रहूँ। अतः यही मन में आता है कि.........।

जाती जाती............................................इस मन में।

शब्दार्थ—उत्पात=उपद्रव, झगड़े

अर्थ—बन को जाते हुए, गाती गाती यह बात में जन-मात्र को सुनाती जाऊं कि धन के लिये संसार में उपद्रव उत्पन्न करना ठीक नहीं। जीवन में प्रेम की ही विजय होती है अतः उपद्रव छोड़ कर प्रेम मय बनें। अब यही मन में आता है कि......।

पृष्ठ ११४

(६)

अब जो प्रियतम..........................हा हा खाऊं

शब्दार्थ—रज=धूल ; अवधि=निर्धारित समय ; श्रान्त=मंद सुरभि=सुगन्धि; अनल=अग्नि; वाष्प=भाप

अर्थः—अब यदि मैं प्रियतम को पा जाऊँ, तो यही इच्छा है कि मैं उनके चरणों की धूल को अपने शरीर पर रमा लूंगी। यदि मैं स्वयं अवधि बन जाऊँ तो फिर मैं बिल्कुल देर नहीं लगाऊँगी। तत्काल अपने को मिटा कर अर्थात १४ वर्षों की अवधि को समाप्त कर उनको जाकर लिवा लाऊँगी।

मैं उषा के समान कांति और जागृति लेकर इस संसार में आई थी, तो क्या सन्ध्या को उदासी सी लेकर यहाँ से चली जाऊँ? नहीं कभी नहीं! मैं तो चाहती हूँ कि मेरे प्रियतम मन्द पवन की तरह आवें और मैं पवन में सुगन्ध के समान धीरे से प्रिय में लीन हो जाऊँ।

मेरे हृदय का रुदन बार बार मचल मचल कर मुझ से कहता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कि मैं कुछ गा कर शब्दों द्वारा उसे व्यक्त करूँ परन्तु उधर गान के शब्द कहते हैं कि जब तक हृदय का रुदन प्रकट नहीं होगा, हम नहीं निकलेंगे। भाव यह हैकि हृदय के द्रवीभूत होने पर ही सच्ची कवित फूट पड़ती है।

विशेष—यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि रोदन उर्मिला की कोई हठी शिशु हो जो किसी वस्तु के लिये मचल पड़ता है। रोदन हठ करता है मुझे गान चाहिये, उधर गान भी उत्तर देता है कि रोदन आवे तो मैं आऊँ।

उर्मिला कहती है कि इधर अग्नि है उधर जल है अर्थात मेरा हृदय तो वियोगाग्नि का स्थल है और इधर आँखों में पानी भरा है। वाष्प के लिये आग और पानी दोनों वस्तुएं उपस्थित हैं, किन्तु उस प्रबल भाप के जोर मे मेरा शरीर रूपी वर्तन कहीं फट न जाय। अतः मैं हा हा खाती हूँ, हे प्रियतम! मुझे बताओ मैं क्या करूँ।

(७)

उठ अवार न ··· ··· भवार्णव की नई।

शब्दार्थ—अवार=किनारा; उर्मि=लहर; भवार्णव=संसार रूपी समुद्र; जीवन=(१) जीवन (२) जल; कर्षण=आकर्षण।

अर्थ—उर्मिला कहती है—मैं इस संसार समुद्र की एक विचित्र लहर हूँ, मैं इस किनारे से उठकर गई भी पर उस पार तक न पहुँची। (१) जल की विशेष क्रिया (२) अथवा जीवन की विशेष परिस्थिति के कारण मैं रुक गई और अब स्वयं मंझधार में भटकती फिरती हूं। कूल; कुंज और कछार में स्वाभावतः ही आकर्षण होता है, परन्तु वायु विकार के कारण ही विषमता उत्पन्न होती है अर्थात् आकर्षण नहीं रहता शिशिर में पत्तों का गिरना—यह सब वायु परिवर्तन के कारण होता है पानी में जिस प्रकार भंवर होता है; उसी प्रकार मेरे जीवन में भी कई चक्कर हैं। मैं इस संसार समुद्र की विचित्र तरंग हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पर विलीन नहीं.... .... ... ...की नई, ।

शब्दार्थ—गतिहीन=निरुपाय, गतिरहित; दैन्य=दीनता; अवश=लाचार ; दई=ईश्वर, दैव ।

अर्थ—उर्मिला कहती है मैं चाहे कितनी भी निरुपाय क्यों न रहूं परन्तु मैं इस संसार सागर में विलीन नहीं हो सकती अर्थात मेरा अस्तित्व नहीं मिट सकता। मैं दीन अवश्य हूं परन्तु मेरी दीनता मुझे दवा नहीं सकती। भाव यह है कि विषय परिस्थिति में मैं घवड़ाने वाली नहीं हूँ। लाचार होने पर भी मैंने आत्मा को बस में कर रखा है। हे सखि! मैं उनसे मिलने के पूर्व ही मैं उनमें अर्थात अपने प्रिय में लीन हूँ। दैव या विधाता जो कुछ कर सकता था वह तो कर ही चका। मैं इस संसार समुद्र की एक नई लहर हूँ।

पृष्ठ ११५

नथागत स्वागत—('यशोधरा' से)

संदर्भ संकेत—सिद्धार्थ एक दिन अपनी पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को सोता छोड़कर चले गये। उन्होंने घोर तपस्या कर बुद्ध देव का पद पाया और गौतम बुद्ध के नाम से विख्यात हुए। यशोधरा अपने पति की प्रतीक्षा करती रही। सिद्धि प्राप्त कर जन कल्याण के लिए गौतम ने भ्रमण किया और अपने मत का प्रचार किया। वे लौटकर कपिलवस्तु भी आये। भगवान राज प्रसाद में पधारे, सबने उचित स्वागत समादर किया परन्तु यशोधरा उस समारोह में सम्मिलित न हुई। उसने यही कहा—भगवान की मुझ पर कृपा होगी तो स्वयं ही मेरे समीप पधारेंगे। अंत में भगवान ही उसके निकट गये और उसने उनका स्वागत किया।

पधारो भव......... ..... ............ भगवान।

शब्दार्थ:—भव=संसार; अत्रभवान=पूज्य; तुच्छ=नगण्य;

अर्थ:—संसार के ईश्वर पधारो, आपका स्वागत है। हे पूज्य आओ, तुमने आकर मेरी लाज रख ली (क्योंकि यशोधरा स्वयं बुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



से मिलने नहीं गई, उसने यही कहा कि यदि भगवान की मुझ पर कृपा होगी तो स्वयं ही मेरे समीप पधारेंगे) हे नाथ ! यही आपकी सबसे बड़ी जय है कि आपने मुझ जैसी तुच्छ नारी को महान गौरव प्रदान किया क्योंकि स्वयं इतने महान होकर भी आपने मुझे अपनाया।

मैं थी सन्ध्या.............. .........भगवान।

शब्दार्थ:—हेरे=देखना; कपाट=द्वार; सवेरे=जल्दी।

अर्थ—मैं तो सन्ध्या समय आपके आने का मार्ग देख रही थी परन्तु तुम सरल हृदय जल्दी ही आ गये। धन्य हैं मेरे द्वार जो आज आपके स्वागत में खुले, मैं अब आपको क्या नवीन वस्तु भेंट दूं ? हे संसार के महान ईश्वर ! आपका स्वागत है।

मेरे स्वप्न ................ .. ......... भगवान्

शब्दार्थ—उपालम्भ=शिकायत ; भान=ज्ञान

अर्थ—हे भगवान ! आपको पाकर मेरे स्वप्न जाग गये हैं या साकार हो गये हैं। मुझे तो आपसे अनेक शिकायतें थीं परन्तु आज अपने जीवन धन को समक्ष पाकर तो वे सब शिकायतें क्यों भाग गईं या विस्मृत हो गयीं। मैं तो सब शरीर का ज्ञान या सुध बुध भूल गई हूँ हे भगवान ! आप पधारो आप का स्वागत है।

दृष्टि इधर ··· ··· भगवान।

शब्दार्थ—जिज्ञासा=पूछने की इच्छा: कौतुहल; आन=शपथ

अर्थ—हे भगवान ! आपने जो अपनी दृष्टी मेरी ओर फेरी है इसी से स्वयं मेरा सब पूछने की इच्छा शान्त हो गयी है। और आपसे प्राप्त तेज की शपथ खा कर कहती हूं कि आपके महान तेज से भय और संदेह का अन्धकार नष्ट हो गया है।

यही प्रणति ....... .........................भगवान

शब्दार्थ—प्रणति=प्रणाम; प्रणय=प्रेम , परिणति=पूर्णता गति=सहारा, आश्रय।

अर्थ—यह मेरी उन्नति का परिचायक है कि आज मैं आपको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रणाम कर रही हूँ। मेरा प्रेम आज पूर्णता को पहुँच गया है और आज मुझको मेरा आश्रय प्राप्त हो गया है। फिर मैं अभिमान क्यों न करूं?

पृष्ठ—११६

पुलक पक्ष्म..................... .. . ...भगवान।

शब्दार्थ— पक्ष्म=पलक के वाल, बिरौनी; परिगीत=पूर्णता को प्राप्त गीत, पद-रज=चरण-धूलि ; शुचि-शीत=पवित्र और शीतल; पर्वस्नान=महान स्नान।

अर्थ - आपके दर्शनों का महान स्नान पाकर अर्थात आपके दर्शनों से सिक्त होकर ये पुलकित पलक परिगीत या पूर्णता को प्राप्त गीत हो गये हैं अर्थात्-गाने योग्य हो गये हैं और इनका रोम रोम पवित्रता और शीतलता का अनुभव कर रहा है।

इन अधरों के... ..........भगवान

शब्दार्थ—अधरा=ओठ ; गुल्फ=ऐड़ी

अर्थ—अब मैं आपके चरणों की ऐड़ी की मोहर अपने अधरों पर लगा, इन अधरों के भाग्य जगाऊंगी अर्थात् मैं अपने अधरों के भाग्य तुम्हारे चरणों का चुम्बन करके जगाऊंगी। आपके आने से वेदना दूर हो गयी अबतक मैं वेदना के गीत गाती थी अब क्या गाऊ अब तो मुस्कान ओठों पर आनन्द मना रही है। हे संसार के स्वामी! आपका स्वागत हैं, आप पधारें।

कर रक्खो यह...... ......................भगवान्!

शब्दार्थ—कर=हाथ ; पद पद्मों=चरण कमलों ; वारी=न्यौछावर ;

अर्थ—आपने जो वरद हस्त मेरे ऊपर रखा है,वह आपकी असीम कृपा है,मैं आप के चरण कमलों पर न्यौछावर हूं। अपनी आंखों के आँसुओं से आपके चरण कमल धोकर मैं चरणामृत के रूप में अब इन खारी आँसुओं का पान करुंगी अतः हे भगवान! इस विश्व के भगवान! आप पधारिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



जीवन का अस्तित्व—(लेखक अपनी इस कविता में यह स्पष्ट करना चाहता है कि जीवन का अस्तित्व कर्म-रत रहने में है नकि अकर्मण्य रहकर- शान्ति मय जीवन व्यतीत करने का वहाना करने में)

जीव हुई है... हैं श्रान्ति !

शब्दार्थ —भ्रान्ति—भ्रम ; श्रान्ति=थकावट, शिथिलता;

अर्थ—कवि प्राणी मात्र को सम्बोधित करता हुआ कहता है—हे जीव ! तुझे भ्रम हुआ है, तू जिसे शान्ति समझता है वह वास्तव में शान्ति नहीं है ,वह तो तेरी शिथिलता है ।

अरे किवाड़.............................. ..... है श्रान्ति

शब्दार्थ—मृतक=मरा हुआ; क्लान्ति=थकान ।

संकेत-कर्म कहता है—

अर्थ— अरे जीव । मैं कबसे द्वार पर खड़ा हुआ ,तुझे जगाने की चेष्टा कर रहा हूँ, अब तू किवाड़ खोल दे । मन ही मन तू मरे हुए निर्जीव प्राणी के समान पड़ा हुआ क्या विचार कर रहा है । इस प्रकार तो तेरी थकान और भी अधिक वढ़ती जाती है । यह वास्तविक शान्ति नहीं है यह तो तेरी शिथिलता की द्योतक है ।

अपने आप.............है श्रान्ति ।

अर्थ—हे प्राणी ! तू स्वयं अहं से घिरा हुआ अपने आप को ही सर्वस्व समझता हुआ एक छोंटे से घेरे में पड़ा रहता है ,क्या तेरा जी इस अंधकारमय अवस्था में नहीं उकताता है ।

पृष्ठ ११७

एक शान्त क्रान्ति तेरे हृदय में मची हुई है ,तात्पर्य यह है कि क्रान्ति भी तेरे हृदय में उठती है परन्तु वह सजीव न होकर शान्त ही बनी रहती है ,यह वास्तविक शान्ति नहीं हैं यह तो तेरी शिथिलता की परिचायक है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



द्वार वन्द करके...............है श्रान्ति

शब्दार्थ—कृति-कान्ति=कर्मों की शोभा

अर्थ—हे जीव ! तू अपना हृदय कपाट वन्द करके अकर्मण्य वना हुआ पड़ा रहता है परन्तु फिर भी सांसारिक भयों के कारण त्रस्त वना रहता है। तेरे भीतर जो अकर्मण्यता का चोर है वही तेरे कार्यों की शोभा को हर रहा है अतः तू उसे वाहर निकाल दे। जिसे (अकर्मण्यता) तू शांति दायिनि समझता है वह वास्तविक शान्ति की परिचायक नहीं है वह तो शिथिलता के परिचायक हैं।

जिस जीवन.......................श्रान्ति।

शब्दार्थ—अवसन्न=आलसी, विनाशोन्मुख; अस्तित्व=सत्ता;

अर्थ—जिस जीवन की रक्षा के लिए तू ने यह अकर्मण्यता का ढंग अपनाया है, वह कर्मशीलता के अभाव में पहले ही विनाशोन्मुख और निर्जीव हो चुका है अतः वह इस परिस्थिति में कैसे जीवित रह सकता है। जीवन का अस्तित्व तो अशान्ति में है अर्थात कर्म रत रह कर विपत्तियों को झेलने में ही है। जिसे तू शान्ति समझता है वह शान्ति नहीं है; वह तो तेरी शिथिलता है।

पंचवटी में शूर्पणखा—

प्रसंग संकेतः—जिस समय राम लक्षमण और जानकी के साथ पंचवटी में अपने वनवास का अन्तिम चरण व्यतीत कर रहे थे, तब ही एक दिन लंका के राजा रावण की भगिनी सुर्पणखा भ्रमण करती पंचवटी में आ पहुँची। राम और लक्षमण के स्वरूप पर मोहित होकर उसने छल पूर्वक सुन्दर स्वरूप धारण किया और पहले राम और फिर लक्षमण से प्रणय याचना की। यहां पर लक्षमण के उत्तर से उद्धृत खंड प्रारम्भ होता है।

(१) "हा नारी... ... ...नीति नहीं।

शब्दार्थ—मोह=प्रमाद;

अर्थः—लक्षमण ने शूर्पणखा से कहा—हे नारी ! तू बड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भ्रम में पड़ी हुई है। तू जो कुछ कह रही है वह प्रेम का परिचायक नहीं है यह तो तेरा प्रमाद है। तू यह प्रणय याचना मन कीं विद्रोही भावनाओं के कारण कर रही है, इसमें तेरी आत्मा की विश्वस्त पुकार लेश मात्र भी नहीं है। यह तेरी अमृत भरी प्रीति न होकर विषमयी वासना है। पर-पुरुष से इस प्रकार प्रणय याचना न तो कोई रीति ही है और न कोई नीति, ही यह पूर्णतः अनरीति और अनीति है।

(२)आत्म वंचना.. ...............यह भ्रांति.

शब्दार्थ—आत्म वंचना=आत्मा को धोखा देना; प्रतीति=विश्वास; भ्रान्ति=भ्रम; झंझा=तूफान

अर्थ—तू किस विश्वास के धोखे में आकर स्वयं अपनी आत्मा को धोखा दे रही है। खुले झरोखे से तूफान के झोंके में झुक कर नहीं झाँकना चाहिये; इस में गिरने की आशंका रहती है, भाव यह है कि वासनाओं के झंझावात में अपनी आत्मा को दृढ़ रखना चाहिये अन्यथा थोड़ा भी झुकने पर आत्मा पतन की ओर अग्रसर होने लगती है। यह केवल मृगतृष्णा है जो तेरे हृदय में खलबली मचारही है, इससे तुझे शान्ति नहीं मिल सकती है। तुझे सावधान हो जाना चाहिये और यह सोचकर कि मैं पर पुरुष हूं प्रेम की भ्रमात्मक भावना को अपने हृदय से निकाल देना चाहिये।

(३) इसी समय पौ—————————ऊषा थी।

शब्दार्थः—पौ फटी=ऊषा का आगमन हुआ; प्रकृति पटी=प्रकृति का पर्दा; कंटक=काँटे; श्यामाम्बर=श्यामम्बर=श्याम वर्ण का आकाश; दिवा = दिन, प्राची=पूर्व दिशा;

अर्थ—इसी समय पूर्व दिशा में पौ फटी और प्रकृति के पर्दे का रंग भी बदल गया। सूर्य की किरण रूपी काँटों से रात्रि का काला वस्त्र फट गया और उसमें से दिन के अंग चमकने लगे और अब पूर्व दिशा की वेश-भूषा कुछ कुछ अरुण और सुनहली दिखाई देती है। इस प्रकार उषा का आगमन हुआ। परन्तु कवि सीता को पंचवटी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



में देखकर कहता है कि क्या पंचवटी की कुटी खोलकर स्वयं साक्षात उषा ही खड़ी हो गई हो।

(४) अहा अम्बरस्था.................... अपूर्व हिलोर।

शब्दार्थ—अम्बरस्था = आकाश में स्थित; शुचि = सुन्दर; अवनी = पृथ्वी; पांडु = पीला;

अर्थ—कवि कहता है—आकाश में स्थित उषा में इतना सौन्दर्य और इतनी स्फूर्ति न थी जितनी कि पृथ्वी की साक्षात उषा में सीता में थी। आकाश की उषा की सी इसकी मूर्ति नहीं थी, वह तो सजीव लगती थी। उसके (सीता) मुख की शोभा देख चन्द्रमा भी पीला सा पड़ कर पश्चिम की ओर चला गया और यकायक सीता को सामने देखकर लक्ष्मण के मुख पर भी लज्जा की अद्भुत लहर दौड़ गई।

विशेष—लक्ष्मण शूर्पणखा से बात चीत कर रहे थे, अतः एक दम सीता को देख उनके मुख पर लज्जा की लहर दौड़ गई।

पृष्ट—१९८

(१) चौंक पड़ी ..................... विगताडम्बर में।

शब्दार्थ— प्रमदा = प्रमाद युक्त ; कुमुद्वती = कुमुद के समान; पद्मनी = कमलनी ; अम्बर = आकाश ; विगताडम्बर = आडम्बर या कृत्रिमता से रहित।

अर्थ—सामने सीता का यकायक देख कर प्रमाद में डूबी हुई शूर्पणखा भी चौंक पड़ी। उस पवित्र कमलिनी को देखकर वह कुमुद के समान दब गई। प्रातः काल होने पर कमलिनी तो विकसित हो जाती है परन्तु चन्द्रमा के अभाव में कुमुदिनी अपना सम्पुट बंद कर लेती हैं, अतः इसी प्रकृति को लेकर कवि ने सीता को कमलिनी के समान और सूपर्णखा को कुमुदिनी के समान दर्शाया है शूपर्णखा ने एक बार उषा की शोभा को आकाश में देखा और फिर एक बार कृत्रिमता से रहित सीता के स्वाभाविक स्वरूप को देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



[६] एक वार अपने..................भूषण वे।

शब्दार्थ—विभूषण=आभूषण ;अदूषण=दूषणों से रहित अर्थात गुणों से युक्त; सनक्षत्र=नक्षत्रों के सहित ; अरुणोदय = सूर्य का उदय

अर्थ—सीता पर दृष्टि डालने के पश्चात शूर्पणखा ने एक वार अपने अंगों पर भी दृष्टि पात किया ,लेंकिन उसकी दृष्टि अपने शरीर पर स्थित आभूषणों की जाली पर ही उलझ गई। उसने एक वार फिर सीता के गुणों से युक्त निर्मल अंगों को देखा जिन पर नक्षत्रों के सहित उदय होने वाले सूर्य जैसे भव्य आभूषण शोभायमान थे।

[७] हँसने लगे........... की भीर।

शब्दार्थ—निरख =देखकर ;मैथिली=सीता;समीर=वायु भीर=भीड़,समूह।

अर्थ—सीता के रूप में एक महान चित्र सा देख कर वन के पुष्प भी विकसित हो उठे और सीता की मुस्कान को देख कर तो डालों में लगी हुई कलियां भी विकसित हो उठीं। वायु चलने लगी मानो कि वह यह गिना रही हो कि कौन कौन से फूल खिल उठे हैं और साथ ही साथ एक एक करके गुन्जार करती भौंरों की भीड़ भी एकत्रित हो गई।

[८]नाटक के.................भरते थे।

शब्दार्थ—द्विज=पक्षी ; शाखासनस्थ=शाखाओं के आसन पर बैठे हुए ; समधुप=भौंरों के साथ; अभिनयारम्भ=अभिनय का प्रारम्भ ;कोलाहल=शोर।

अर्थ—यह नाटक का नवीन दृश्य जो इस समय पंचवटी में समुपस्थित था ,उनके देखने वाले पक्षीगण थे। ये पक्षी पेड़ की शाखाओं पर आसन जमाये हुए भौंरों के साथ मधुर रस का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आनन्द ले रहे थे ;और तत्काल ही अभिनय आरम्भ करने के लिये वे मानो शोर मचा रहे थे। इस प्रकार पंचवटी की रंग भूमी को वे अत्यन्त प्रिय भावों से परिपूर्ण बना रहे थे।

अभिशाप— ( शकुन्तला से—)

संदर्भ संकेत—जिस समय शकुन्तला एक दिन अपने प्रियतम दुष्यन्त के ध्यान में मग्न अपनी कुटी में बैठी थी, उसी क्षण दुर्वाशा ऋषि आये परन्तु ध्यानावस्थित होने के कारण शकुन्तला को उनके आगमन का ज्ञान न हुआ फलतः क्रोधी ऋषि ने तत्क्षण श्राप दिया—कि जिसके ध्यान में तू मग्न है वह तुझे भूल जायेगा। इस श्राप का प्रस्तुत भाग में वर्णन है।

शान्ति स्थान................मोहती

शब्दार्थ—कण्व=मुनी, जिन्होंने शकुन्तला का पुत्रीवत् पालन किया था। पुण्याश्रमोद्यान=पवित्र आश्रम का उद्यान; बाह्यज्ञान विहीन=बाहरी संसार के ज्ञान से मुक्त; खचित=चित्रित।

अर्थ—शकुन्तला शान्ति के महान स्थान कण्व ऋषि के पवित्र आश्रम के उद्यान में बाहरी संसार के ज्ञान से पूर्णतः मुक्त अपने प्रियतम दुष्यन्त के ध्यान में मग्न बैठी थी, भाव यह है कि शकुन्तला इस प्रकार ध्यान मग्न थी कि उसे यह ज्ञान नहीं था कि बाहर संसार में क्या हो रहा है। मौन धारण किये ध्यान मग्न शकुतन्ला अपने स्वाभाविक सौंदर्य से इस प्रकार शोभा पा रही थी मानो कि वह किसी चित्र में चित्रित हो और चित्त को आकर्षित कर रही हो।

[२] हो के भी प्रकृत...... .......पा रहा।

शब्दार्थ:—प्रकृत=वास्तविक; अप्राकृत=असाधारण; अम्भोज=कमल: निश्चेष्ट=शान्त; दूषण=दुर्गुण।

अर्थ—शकुन्तला का स्वरूप अत्यन्त वास्तविक था परन्तु असाधारण रूप से उत्तम था अर्थात अत्यन्त उत्तम था और उसके मुख चन्द्र को देख कमल भी लज्जित होकर शान्त पड़ गया था। यद्यपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



शकुन्तला आभूषण अपने शरीर पर धारण नहीं किये हुई थी परन्तु दुर्गुणों से रहित उसका शरीर दूना देखने योग्य लगता था और वह अत्यन्त सौन्दर्य को प्राप्त हो रही थी।

(३) दोनों ओर........................ घेरे खड़े।

शब्दार्थ—कपोल देश=गाल; लोल=चंचल

पृष्ठ ११९

मुखारविन्द=मुख-कमल; भृंग—भौरे; घन वृन्द—बादलों के समूह; इन्दुवर—श्रेष्ट चन्द्रमा

अर्थ—शकुन्तला के कपोलों के दोनों ओर मुक्त केश बिखरे हुए थे चंचल समीर से लहराकर वे इस प्रकार सुन्दर दिखाई पड़ते थे जैसे कि मानो मुख कमल पर पक्तिवद्ध भौरे अड़े हुए हों अथवा स्वच्छंद सुन्दर चंद्रमा को बादलों के समूह घेरे हुए खड़े हों।

(४) ये थे चांचल्य विहीन द्वारा बना।

शब्दार्थ—चांचल्य विहीन=चचलता से विहीन,शान्त;सद्म=भंडार;मकरंद=पराग; पद्म=कमल: वपु=शरीर मार=कामदेव;

अर्थ—सौन्दर्य के भंडार शकुन्तला के नेत्र खुले हुए और शान्त थे। जिस प्रकार खिले हुए कमल को पा कर भौंरे सुख से पराग का पान करते हैं इसी प्रकार शकुन्तला खुले नेत्र रूपी कमलों के पराग का केश रूपी भौंरे पान कर रहे थे। शकुन्तला का शरीर इस प्रकार वन्दना योग्य और शोभा से परिपूर्ण था मानो कि उसको कामदेव ने. चन्द्रमा के तत्व-भाग को लेकर बनाया हो।

[५] भोली सूरत वन्य देवी यथा।

शब्दार्थ—रसार्द्र=रससिक्त; प्रमाम्बु=प्रेमजल; होली=होगई थी; सृष्टी=संसार; भव्य= सुन्दर; व्यस्त=तल्लीन

अर्थ—शकुन्तला की आंखों से प्रेमजल बरस रहा था जिससे उसका भोला रूप रस सिक्त हो रहा था। समस्त संसार में वह उस समय रूप की चरम सीमा होगई थी अर्थात उस समय उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सौन्दर्य चरम सीमा को प्राप्त हो गया था। उसके उस समय हृदय अत्यन्त स्वाभाविक और सुन्दर भाव थे और उसके वेशभूषा के बारे में तो क्या कहा जाय ,वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो वनदेवी वसन्त के विरह में तल्लीन वैठी हो।

[६] नाना दृश्य... ...लेखते।

शब्दार्थ—समक्ष=सामने; पांडुग्रस्त=पांडू रोग से पीड़ित।

अर्थ—शकुन्तला के समक्ष अनेक नवीन चित्त को हरने वाले विविध प्रकार के सुन्दर दृष्य प्रकृति उपस्थित कर रही थी परन्तु उनमें से एक भी उसकी दृष्टि में नहीं आ रहा था। उसके विशाल नेत्र तो सब जगह केवल दुष्यन्त को ही इस प्रकार देख रहे थे जैसे कि पांडु रोग से पीड़ित व्यक्ति जगह की समस्त वस्तुओं को पीले रंग की ही देखता है।

[७] छाई तत्र... .......वड़े प्रेम से।

शब्दार्थ—तत्र=वहां; शान्ति=सहन शीलता; श्रान्ति=श्रम क्षेम =कुशल : रत= संलग्न

अर्थ—वहां [कण्व के आश्रम में] पर पूर्णतः शान्ति के साथ साथ सहनशीलता का सर्वत्र साम्राज्य था उस आश्रम की प्रिय शोभा को देख कर सर्वदा यही भ्रम होता था कि यद इन्द्र का नन्दन वन हैं कण्व का आश्रम नहीं। बन के समस्त जीव अपनी २ क्रीड़ाओं में आनन्द और कुशल पूर्वक लग्न थे। और प्रेम पूर्वक जहां तहां पक्षी भी स्वतन्त्रा पूर्वक उड़ रहे थे

(८) पूरी निर्मल से थी यथा,

शब्दार्थ—मालिनी=वह नदी जिसके तट पर मेनका के गर्भ से शकुन्तला का जन्म हुआ था; वृक्षाली=वृक्षों की पंक्ति, प्रतीर=किनारा; भूरि-प्रभा-शालिनी=अत्यन्त शोभावाली, तथा=इस प्रकार; मीनाक्षी=मछली सी आँखों वाली; भ्रूक्षेप=भौं टेढी करना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—उस आश्रय के समीप ही स्वच्छ जल से परिपूर्ण मालिनी नदी बह रही थी। इस नदी के किनारे की वृक्षावली अत्यंत शोभा वाली थी। क्रीड़ा करती हुई अनेक लहरें जल में इस प्रकार उठती और विलीन होती थी जैसे कि मछली की आँखों वाली सरिता अपनी भौंये टेढ़ी करके कुछ संकेत कर रही हो।

विशेष—यहां सरिता को मीनाक्षी इस कारण कहा गया है क्योंकि नदी में मछली तो होती ही हैं और आंखों के लिए उपमान रूप में मछली का प्रयोग कवि गण करते ही आये है। अतः कवि ने यहाँ पर चंचल लहरों को टेढ़ी भौं कह कर नदी को मीनाक्ष से कटाक्ष करती हुआ बता कर अपनी कल्पना और निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है।

(६) नीलाकाश अपार ··· ··· ····था कहीं।

शब्दार्थ—शस्यश्यामल=हरा भरा; निश्चलातल=शान्त भूखंड, अन्यत्र=और कही।

अर्थ—जिस प्रकार ऊपर असीम नील वर्ण का आकाश छाया हुआ था इसी प्रकार नीचे अति उत्तम हरा भरा शान्त भूमि खड़ था। परन्तु शकुन्तला को इन सब [प्रकृति के अंगों] का बिल्कुल ध्यान नहीं था उसका पवित्र चित्त चिन्ता युक्त होकर और ही कहीं विचरण कर रहा था।

पृष्ठ १२०

(१०) ऐसे अदभुत ····· शाँत था।

शब्दार्थ—मुनिवर्य=मुनि श्रेष्ट; दैवात=देवयोग से; तेजोवन्त=तेज से युक्त, प्रभावान; मार्तण्डोपम=सूर्य के समान; वक्त्रमंडल=मुख मंडल; उदंड=प्रचंड।

अर्थ—जब शकुन्तला इस प्रकार के विचित्र ध्यान में मग्न थी उसी समय, महा क्रोधी के रूप में प्रसिद्ध मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा वहां पर देव योग से धीरे से आये। उनका पवित्र तेजवान शरीर अत्यंत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



ही कान्तिमय था। उनका मुख मं ल सूर्य के समान था। वह प्रचंड होते हुए भी शांतिमय था।

(११) दीर्घश्मश्रु है छवि।

शब्दार्थ—दीर्घश्मश्रु=लम्बी डाढ़ी; जटा=केशराशि, सित =सफेद, दीप्तिमान=काँतिमय; नितांत=बिल्कुल; रश्मि=किरण;

अर्थ—लम्बी डाढ़ी और जटाओं के साथ उनके सारे बाल सफ़ेद हो गये थे और उनसे उनका मुख सदैव इस प्रकार कान्तिमय और शोभित होता था जिस प्रकार कि वर्षा के समाप्त होने पर मेघ समूह से पूर्णतः मुक्त होने पर सूर्य अपनी किरण समूह के साथ तेजमयी शोभा को प्राप्त होता है।

( १२ ) होने से प्रिय ..............—.... ध्यान हो ?

शब्दार्थ — निश्चल = शान्त; देहादि = शरीर आदि;

अर्थ— अपने प्रियतम के प्रेम में लीन होने के कारण शकुन्तला ने दुर्वासा ऋषि का आगमन नहीं जाना, इसलिये वह पूर्व-वत् शान्त बैठी रही मानों कि उसने उनको कुछ न समझा हो अर्थात् आदर समझ बूझ कर न किया हो। चिन्ता के कारण जिसको स्वयं अपने शरीर आदि का ज्ञान नहीं रहा हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसे किसी अन्य के आने का अनुभव न हुआ हो।

( १३ ) आया जान ... ... .... त्यागती।

शब्दार्थ — तन्द्रा = हल्की बेहोशी, तन्द्रा नींद की वह अवस्था है जो नींद आने के प्रारम्भ में होती है; निश्चल = अटल;

अर्थ—दुर्वासा मुनि आया हुआ जानकर मानो वायु भी उसे उसका वस्त्र बार बार खींच कर जगाने लगी परन्तु वह बाला अपनी ध्यानमग्न अवस्था से न जगी वह जब ध्यान में अपने प्रिय पति के पास पहुँच गयी थी तो फिर किस प्रकार जाग सकती थी। अटल प्रेम की हल्की बेहोशी ( तन्द्रा ) वहां किसको त्यागती अर्थात पाठक तुम्हीं बताओ कि प्रेम की तन्द्रा जिसको एक बार पकड़ लेती है उसे सहज ही त्यागती नहीं तो फिर यहां पर वह कैसे त्याग सकती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



( १४ ) माना किन्तु ... ... ... होते नहीं

शब्दार्थ—क्रोधाधिक्य = क्रोध की अधिकता ; खिन्न = क्रोधित

अर्थ—परन्तु दुर्वासा ने शकुन्तला के इस व्यवहार को अपना महान अपमान समझा और संसार में क्रोध की अधिकता किसी विचार शील बना रहने देती है। यदि मुनि अपने मन में यह सोच लेते कि मनुष्य के पास एक ही मन होता है दो चार नहीं होते, तो वह सहस ही इस प्रकार कदापि क्रोधित न होते।

( १५ ) होके रुष्ट ... ... ... पै गिरी

शब्दार्थ—वृथा = वेकार ; ताप = दुख ; कर्ण-क्रूर = कानों के लिये क्रूर ; कण्ठ-रव = वाणि; पाणि = हथेली ; रूक्ष = रूखी नीरस ; वाताहत = वायु से आहत ; उपल = ओले

अर्थ—अत: मन में व्यर्थ ही अत्यन्त दुखी होकर और क्रोधित होकर कानों को क्रूर लगने वाली कठोर वाणी में वे श्राप देने लगे। वे शीघ्र ही अपना हाथ पसार कर, पूर्णत: नीरस स्वर में इस प्रकार बोले जैसे कि वायु से पीड़ित बादलों से ओलों की वर्षा पर पृथ्वी पर होती है।

[१६] चिता में... .... .. न ज्यों।

शब्दार्थ | लेखा = देखा;

पृष्ट १२१

पूर्वकथा = पिछली कथा, प्रमत्त = पागल ।

अर्थ—जिसकी चिन्ता में लीन होने के कारण तूने मुझको नहीं देखा मैं तप का स्वामी अर्थात तपस्वी हूं फिर तूने मुझे कुछ भी नहीं समझा, अतः उसको तेरा ध्यान इस प्रकार नहीं आवेगा जिस प्रकार कि किसी पागल मनुष्य को पिछली कथा याद नहीं आती, चाहे कोई उसे कितना ही याद दिलाये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(१७) यों क्रोधान्ध— — —सुनाई कहां।

शब्दार्थ अत्युग्रता=अत्यन्त उग्रता रता=लीन

अर्थ—इस प्रकार के शब्द क्रोध मे अन्धे और विवेक से रहित मुनि ने अत्यन्त उग्रता के साथ कहे परन्तु शकुन्तला का ध्यान फिर भी भंग न हुआ, वह पूर्ववत् ही ध्यान मग्न रही। वर्षा काल में जब चकोरी चन्द्रमा के दर्शन में लीन होती है तो मेघों की गर्जना उसे कहां सुनाई देती है ? इसी प्रकार प्रियतम के ध्यान में मग्न शकुन्तला को मुनि का क्रोध-गर्जन नही सुनाई पड़ा।

(१८) थी दोनों — — —दुष्यंत को।

शब्दार्थ—उत्फुल्ल=विकसित ; मालोपमा=माला के समान ; मुद्रिका=अंगूठी; निरख=देख; उद्भ्रांत=भूले हुए

अर्थ—शकुन्तला की दोनों सखियाँ (प्रियवदा और अनुसूया) जो विकसित-पुष्प माल के समान थीं, समीप ही वन में थीं। वे शांप सुनकर मुनि के पास दौड़ी गईं और उन्हों ने क्षमा मांगी। किसी प्रकार शान्त हो कर अन्त में मुनि ने कहा—भूले हुए दुष्यंत को अंगूठी देखकर शकुन्तला का स्मरण हो जायगा।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न—१ गुप्त जी की साहित्यिक सेवाओं का मूल्यांकन कीजिये।

## उत्तर

गुप्त जी ने अपनी कलम उस समय उठाई थी जब खड़ी बोली में कविता का आरम्भ काल था। ब्रज भाषा के माधुर्य को खड़ी बोली में प्रतिष्ठित करना संदिग्ध सा प्रतीत होता था, परन्तु गुप्त जी ने प्रारम्भिक रचना ,भारत-भारती, 'जयद्रथ वध, आदि से सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली भी व्रज भाषा की सरसता वहन कर सकती है।

गुप्त जी की साहित्यिक सेवायें महान हैं क्योंकि आपकी काव्य संपदा विशाल और प्रभावोत्पादक है। आपकी साहित्यिक साधना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



द्विवेदी युग, छायावादी युग और प्रगतिवाद युग की लम्बी काव्य परम्परा के बीच बराबर गतिशील रही। आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप युग के साथ कदम मिलाकर चलने वाले साहित्य सेवी हैं। प्रत्येक युग के मोड़ पर आपकी काव्य कला भी नवीन रंग से सुशोभित होकर समक्ष आती है। परन्तु नवीनता के आकर्षण में आपने प्राचीनता का त्याग नहीं किया। गुप्त जी प्राचीनता और नवीनता के महान समन्वय कारी हैं। श्री युत नंद दुलारे वाजपेयी ने उचित ही लिखा है—मैथिली शरण जी हिन्दी के इस युगके पहले कवि हैं जिन्होंने कविता की ज्योति समय समाज और आत्मा के भीतर देखी है, जिन्होंने नई काव्य धारा की अवाधगति से हिन्दी समाज को अभिसिंचित किया है।

गुप्त जी का पद्य पर महान अधिकार है, आपने इसी क्षेत्र में अपनी सेवाओं द्वारा हिन्दी के भंडार को भरा है। 'भारत भारती' 'जयद्रथ बध', 'अनघ', 'त्रिपथगा', 'गुरुकूल', 'पंचवटी', 'द्वापर' 'नहुष' 'कुणाल-गीत', काबा कर्बला', 'झंकार', 'मेघनाथ-वध', 'अर्जन और विसर्जन' आदि आपके द्वारा लिखित काव्य ग्रंथ है, परंतु आपकी पूर्ण प्रतिभा का प्रकाश 'साकेत' और 'यशोधरा' में देखने को मिलता है। इन दो ग्रंथों में आपने काव्य की उपेक्षिता उर्मिला और यशोधरा का चरित्र उपस्थित किया है। इस प्रकार आपने एक ऐसी कमी की पूर्ति की जिसकी ओर विशेष रूप से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य सेवियों का ध्यान आकर्षित किया था।

गुप्त जी की साहित्यिक सेवाओं का मूल्य इस कारण भी अधिक है कि आपने युग की आवाज को ठीक पहचाना। आप आज हमारे राष्ट्र कवि कहलाते हैं। आपने राष्ट्रोत्थान की आवाज को साहित्य के स्वर में ऊंचा किया। गांधीवाद से प्रेरित हो अछूतोद्धार और अहिंसा की पुकार को भी बुलंद किया। महान वैष्णव होते हुए भी मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध, ईसाई, धर्मों की संस्कृति के प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आपने अपनी उदारता का परिचय, 'काबा कर्वला', 'गुरुकूल, यशोधरा, 'अर्जन और विसर्जन' आदि ग्रंथ लिखकर दिया है यही कारण है कि आपका साहित्य जन-जन का साहित्य है, जो अपनी सरलता और सरसता के कारण वहुत ही लोक प्रिय रहा हैं।

गुप्त जी की साहित्यिक सेवाओं का मूल्य इसी से आंका जा सकता है कि उन्होंने वर्तमान काल की सभी प्रवृत्तिओं को अपने काव्य में स्थान दिया है और उच्च कोटि की रचनाये प्रस्तुत की हैं निःसंदेह आप हमारे सर्व श्रेष्ट राष्ट्र कवि हैं।

प्रश्न २—पठित सामग्री के आधार पर उर्मिला के चरित्र की आलोचना कीजिये !

## उत्तर

लक्ष्मण के विरह में अधीर उर्मिला का चरित्र चित्रण गुप्त जी की लेखनी से प्रशंसनीय वन पड़ा है। उर्मिला के हृदय में अनेक भावों की उद्भावना जो गुप्त जी ने की हैं ' वह स्वाभविक ही है .एक सती साध्वी की तरद उर्मिला अपने विरही मन को कभी सात्वना देती है तों कभी अपने आंसुओं को ही धैर्य बधांती हैं।

(१) न जा अधीर धूल में
दृगम्बु आ दुकूल में।

(२) नयनों को रोने दे,मन, तू संकीर्ण न वन प्रिय बैठे हैं।

उर्मिला हमारे सामने एक महान् साधिका के रूप में आती है जिसका साध्य उसका प्रिय ही है—

मानती हूँ , तुम मेरे साध्य ,
अहिर्निशि एक मात्र आराध्य,
सधिका मैं भी किंतु अवाध्य
जागती होऊँ या सोती।

वियोग में उर्मिला दुख सह लेती परन्तु इस महान वेदना से गुजरते हुए भी वह यह आकांक्षा नहीं करती कि प्रिय के व्रत और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



त्याग में कोई विघ्न उत्पन्न हो। 'सफल हो सहज तुम्हारा त्याग'— से उर्मिला के इसी महान की सूचना मिलती है। अन्त में तो यह भाव इतना अधिक पुष्ट हो जाता है कि उर्मिला स्वयं वन में जाने की इच्छा करती है परन्तु इस लिये नहीं कि लक्ष्मण की साधना में बाधा उपस्थित करे बल्कि केवल इसलिये—

बीच बीच में उन्हें देख लूं मैं झुरमुट की ओट
जब वे निकल जायँ तब लोटूं उसी धूल में लोट
रहें रत वे निज साधन में
यही आता है इस मन में।

उर्मिला के यह भाव उसके चरित्र को कितना उँचा उठा देते है इस का अनुभव प्रत्येक पाठक कर सकता है। उर्मिला का चरित्र हमें किसी साधारण प्रेम में दिवानी आँसू बहाने वाली नायिका के रूप में न मिलकर एक सती, पवित्र हृदया और प्रियतम की साधना सफल बनाने के लिये सब कुछ न्यौछा वर करने वाली महान भारती ललना के रूप में मिलता हैं।

उर्मिला अपने प्रियतम से दूर रहते हुए भी सदैव उनके समीप बनी रहती है—

पर विलीन नहीं रहूँ गति हीन में,
दैन्य सेन दबूं कभी, वह दीन में,
अति अवश हूँ, किन्तु आत्म अधीन में
सखि, मिलन के पूर्व ही प्रिय लीन मै॥

विरह में भी मिलन का अनुभव करने वाली उर्मिलाकी आत्मा महान हैं। वह एक आदर्श है और एक देवी है जिसकी महानता का चित्रण साकेत के पृष्ठों में बिखरा पड़ा है।

प्रश्न—३—'गुप्तजी का समस्त काव्य जीवन और जगत की परिभाषा के रूप में व्यक्त हुआ है'—इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## उत्तर

साहित्य का जीवन और जगत से अटूट सम्बन्ध है, यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। गुप्त जी हमारे राष्ट्र एवं प्रतिनिधि कवि हैं। अपने समय में उन्होंने अपने काव्य रूपी दर्पण जीवन और जगत का जो स्वरूप प्रतिविम्बित किया है वह अद्वितीय है। जगत को संघर्ष और अशान्ति का केन्द्र सब मानते हैं, अतः इस संघर्ष मय जगत में गुप्त जी अशांत जीवन को ही उसका अस्तित्व मानते हैं। जीवन में कर्मण्यता आवश्यक है, इसी लिये तो वे कहते हैं—

(१) जीवन का अस्तित्व अशान्ति ।
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति ॥
(२) नर हो न निराश करो मन को,
कुछ काम करो, कुछ काम करो ।

गुप्त जी का साहित्य जीवन के स्वरूप का पग पग पर चित्रण करता है और जगत की परिस्थितियों से भी परिचित कराता है। जीवन में प्रेम करुणा' दया स्वतन्त्रता, राग द्वेष आदि का क्या स्थान है यह हम उनके काव्य में स्पष्ट देखते है। उनकी 'भारत भारती, जीवन में राष्ट्रीयता का विकास करने वाली महान पुस्तक है। मानवता के पुजारी गुप्त जी में गांधीवाद के दर्शन होते हैं—

पापी का उपकार करो, हां
पापों का प्रतिकार करो
× ×
उत्पीड़न अन्याय कहीं हो
दृढ़ता सहित विरोध करो
किन्तु विरोधी पर भी अपने,
करुणा करो न क्रोध करो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उपर्युक्त पंक्तियां उनके जीवन और जगत सम्बन्धी विचारोंको व्यक्त करती हैं। उनका मत है—पापों का' अन्याय का विरोध करो परन्तु विरोधी पर करुणा करो—यही जीवन है जो महानता की ओर अग्रसर करके मानव को ही महान नहीं बनाता अपितु जगत को भी महान बनाता है। जीवन और जगत की परिभाषा—हमें उनके काव्य में मिलती है-यह कथन सत्य ही है। संघर्षमय जगत में जीवन क्या होना चाहिये—देखिये=

चलना मुझे है, बस अन्त तक चलना,
गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है सँभलना।
फिर भी उठूंगा और बढ़कर रहूंगा मैं
नर हूं, पुरुष हूं चढ़ के रहूंगा मैं ॥

वास्तव में गिराने वाला जगत है और गिर कर उठने वाला जीवन ही जीवन है—यही जीवन और जगत की परिभाषा अनेक रूप में गुप्त जी के काव्य में विकसित हुई है।

प्रश्न—४ हरिऔध और गुप्त जी के काव्यों की भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि तुलनात्मक आलोचना कीजिये।

## उत्तर

भाव—हरिऔधजी और गुप्तजी दोनों द्विवेदी-युग के प्रमुख कवि हैं और दोनों खड़ी बोली के उन्नायकों में से हैं। दोनों ने कितने ही उच्च कोटि के ग्रंथों का निर्माण किया है। गुप्त जी और हरिऔध जी दोनों ने ही सात्विकता और मर्यादावाद का आधार बनाकर काव्य सर्जना की है। गुप्त जो राष्ट्रीय कवि हैं। आपके भावों में आप दृष्टि कोण उदार और व्यापक मिलता है। हिन्दु संस्कृति के प्रेमी होकर भी वे मुसलमानी संस्कृति के प्रति श्रद्धा के भाव रखते हैं। गुप्तजी, जी भारती के पुजारी और भारत की महिमा के हामी है वे गांधीवाद से बहुत अधिक प्रभावित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हरिऔध जी के भावना सर्वत्र समाज सेवा से अनुप्राणित हुई है आप की रचनाओं में प्रमुख पात्र समाज सेवक के रूप में आते हैं। प्रिय प्रवास, के राधा कृष्ण रीति कालीन राधा कृष्ण से सर्वत्र भिन्न हैं। आपने राम और कृष्ण को भी आदर्श मानवों के रूप में चित्रित किया है। आपकी भावनायें इनके अलौकिक कार्यों की नयी व्याख्या करने में समर्थ हुई है जैसे कृष्ण के गोवर्धन पर्वत उठाने की बात का आप यहा स्वरूप स्थिर करते हैं—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में, व्रज धराधिप के प्रित पुत्र का।
सकल लोग लगें कहने उसे, रख लिया उँगली पर श्यामने॥

करुण भावों की भी आपने बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। आपकी शृंगार भावना भी सर्वत्र मर्यादित है।

भाषा- शैली—हरिऔधजी ने अपने प्रियं प्रवास 'में संस्कृत छंदो को अपनाया अतः उनके अनुकूल उनकी भाषा अधिक संस्कृत गर्भित है परन्तु उन के अन्य ग्रंथों में बोल चाल की भाषा मिलती है। परन्तु गुप्तजी ने हिन्दी छंदो को अपनाया हैं उनकी भाषा में तत्समता की प्रवृति होते हुए भी वह बोल चाल की भाषा के अधिक निकट हैं। गुप्त जी पर संस्कृत का भी यथेष्ट प्रभाव हैं अतः यथास्थान उसकी भी झलक मिल जाती है! गुप्तजी ने शब्द शक्तियों और अलंकारों से पूरा लाभ उठाया है। अलंकारों की छटा यत्र तत्र हरिऔध जी की रचना शैली में देखने को मिलती हैं। गुप्त जी ने व्रजभाषा का प्रयोग नहीं किया जब कि हरिऔध ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएं ब्रज भाषा में ही की भाषा की दृष्टि से हरिऔध जी को तो हम प्रयोग वादी कवि कह सकते हैं परन्तु गुप्त जी के साहित्य में भाषा का समान रूप ही देखने को मिलता है। आपने खड़ी बोली के तत्सम प्रदान रूप को समृद्ध बनाने में जो कार्य किया है वह स्तुत्य हैं। आप की शैली स्पष्ट प्रभावोत्पादक प्रवाह शिष्ट;संयत और शुद्ध है। आपने गीत-शैली को भी अपनाया है, आपके गीत बड़े भावपूर्ण बन पड़े हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रश्न ५ गुप्त जी हिन्दी साहित्य के सर्व श्रेष्ठ राष्ट्र कवि क्यों माने जाते हैं? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

उत्तर

राष्ट्रीय भावनाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत करने वाले कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम प्रथम पंक्ति में लिया जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने कारावास यात्रा भी की। सं० १९६९ में आपकी 'भारत भारती' प्रकाशित हुई जो राष्ट्रीय चेतना में अमृत तुल्य सिद्ध हुई भारत भारती में आपने अपनी लेखनी को सम्बोधित करते हुए प्रारम्भ में ही लिखा था—

स्वच्छंदता से कर तुझे करने पड़े प्रस्ताव जो।
जग जाँय तेरी नोक से सोये हुए हों भाव जो॥

'भारत भारती' भारत के अतीत का भव्य चित्रण प्रस्तुत करती है तथा वर्तमान भारत की शोचनीय दशा का दिग्दर्शन तथा देशोद्धार की ओर आकर्षित जन जन की प्रवृत्ति का सजीव चित्रण भारत भारती की विशेषता है। गुप्त जी की कविताओं में समाज सेवा और राष्ट्रीयता का बाहुल्य है। आपके हृदय से काव्य रूप में भक्ति तथा राष्ट्र प्रेम की जो पावन गंगा प्रवाहित हुई है वह सोतों को जगाती है और जागतों को स्फूर्ति प्रदान करती है। राष्ट्रीय जाग्रति की एक पुकार सुनिये—

हे ब्राह्मणों! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्म गौरव धर्म के ध्यानी बनो॥
क्षत्रिय उठो अब कुयश की कलिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो॥

अछूतोद्धार के प्रति भी गुप्त जी सजग हैं। 'पंचवटी' में वे लिखते हैं—

इन्हें समाज नीच कहता है।
पर हैं वे भी तो प्राणी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इनमें भी मन और भाव हैं।
किन्तु नहीं वैसी वाणी ।।

नारी जाति की दुर्दशा का चित्रण करते हुए गुप्त जी लिखते हैं—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी ।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निम्न कथन गुप्त जी की आधुनिक युग भावनाओं की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालता है—

' रामायण के भिन्न २ पात्रों के परम्परा के प्रतिष्ठित स्वरूपों को विकृत न करके उनके भीतर हीं आधुनिक आन्दोलनों की भावनायें जैसे किसानों और श्रमजीवियों के साथ सहानुभूति, युद्ध प्रथा की मीमाँसा, राज्य व्यवस्था में प्रजा का अधिकार और सत्याग्रह, विश्व बन्धुत्व, मनुषत्व कौशल के साथ झलकाई गई है ।"

गुप्त जी के बारे में शुक्ल जी का यह कथन भी उनकी राष्ट्रीय विचार धारा का समर्थन करता है। हिन्दू मुस्लिम एकता के भी गुप्त जी पक्षपाती हैं। 'हिन्दू मुसलमान दोनों अब, छोड़े वह विग्रह की नीति'— लिखकर आपने हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का स्थापित करने का प्रयत्न किया है। ग्राम सुधार की ओर भी जनता का चित्त 'अनघ' में गुप्त जी ने आकर्षित किया है।

भारत राष्ट्र की विविध जातियों और धर्मों के एवं उनके महापुरुषों के प्रति कवि ने श्रद्धा की भेट चढ़ाई है। रामभक्त होते हुए भी आपने बुद्ध, ईसा, मुहम्मद की अभिवंदना की है। यशोधरा, गुरुकुल; काबा और कर्बला—बौद्धी, सिखों और मुसलमानों के प्रति उन की आदर भावना के प्रमाण हैं। राष्ट्रीय भावना उनकी रचनाओं में सब कहीं मिलेगी। मातृभूमि के सौन्दर्य की छटा के न जाने कितने चित्र उन्होंने अंकित किये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



निष्कर्ष यह है कि लोक प्रियता और जन मानस तक पहुंचने की दृष्टि से गुप्त जी का स्थान हिन्दी काव्य में प्रथम है, यही कारण है कि वे हिन्दी साहित्य में सर्व श्रेष्ठ राष्ट्र कवि के आसन पर आसीन हैं।

प्रश्न ६ गुप्त जी की भाषा के गुण दोषों की सप्रमाण आलोचना कीजिये।

## उत्तर

भाषा की दृष्टि से गुप्त जी का काव्य अपनी विशेषतायें लिये हुए हैं। गुप्त जी सरल साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा पर संस्कृत के साथ प्रान्तीयता का प्रभाव भी है। आपकी भाषा में तत्समता की प्रवृति होते हुए भी वह बोलचाल की भाषा के अधिक समीप है। गुप्त जी की भाषा पर संस्कृत का यथेष्ट प्रभाव है और यथा स्थान उसकी झलक देखने को मिल जाती है। जैसे—'करुणा' कंजारण्यरवे !, 'आभरणवरण - मुक्तलावण्य, मानस - कोष-विभूति-विहारिणी, आदि। कहीं प्रान्तीय भाषाओं के शब्द जैसे-झींमना, छींटना, घड़ाम आदि भी देखने को मिल जाते हैं परन्तु इतना होते हुएभी आपका काव्य जनसाधारण के लिये कठिन न होकर बोधगम्य ही रहा है। आपकी भाषा व्याकरण सम्मत होती है, मुहावरों का प्रयोग उसमें कम मिलता है परन्तु भाव व्यञ्जकता के सहायक अलंकारों की छटा यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं।

आपकी भाषा में कहीं कहीं तुक के आग्रह से अप्रचलित शब्द भी आगये हैं जैसे—त्वेष, कल्य, आज्य आदि शब्द।

प्रश्न—७ गुप्तजी की काव्य-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिये।

## उत्तर

गुप्त जी के काव्य-प्रवृत्तियां ये हैं—

(१) गुप्तजी की कविता में राष्ट्रीयता और गांधीवाद की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रधानता है। आपने प्राचीन गौरव मय इतिहास और भारतीय संस्कृति को अधिक महत्ता दी है। सीताजी के 'मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया' में गांधीवाद के सरल जीवन की पुकार है। इसमें कातने बुनने का भी आह्वान है—

तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ हम कातें-बुनें गान की लय में।

और राष्ट्रीयता के उदाहरण पीछे प्रश्नों में दिये ही जा चुके है।

(२) गुप्तजी ने राष्ट्रीय जीवन के साथ परिवारिक जीवन को पूर्ण महत्ता प्रदान की है, अतः यह कहना अनुचित न होगा कि आपका समस्त काव्य जीवन और जगत की परिभाषा के रूप में व्यक्त हुआ है देखो उत्तर प्रश्न-३।

(३) गुप्त वैष्णव होते हुए भी साम्प्रदायिकता के प्रभाव से मुक्त है आपने सभी धर्म — हिन्दू, मुसलमान, सिख और बौद्ध से सम्बन्धित काव्य ग्रंथ लिखे हैं।

(४) हिन्दी साहित्य की उपेक्षिताओं—उर्मिला और यशोधरा को ही नहीं अपितु नारी जाति को काव्य में विशेष महत्व प्रदान करने की आपकी प्रवृत्ति रही है।

(५) गुप्तजी युग की प्रवृतियों से प्रभावित होते रहे हैं यही कारण है कि आपकी प्रवृत्ति प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखने की ओर रही है।

(६) गुप्तजी की भाषा संस्कृत गर्भित होते हुए भी दुरूह नहीं होने पाई है। आपने शब्द-शक्तियों तथा अलंकारों का पूरा लाभ उठाया है और कहीं कहीं मुहावरों की ओर भी बड़े सुन्दर काव्यात्मक संकेत भी हैं।

कुछ परीक्षोपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग सहित व्याख्या कीजियेः—

(१) फूल और आँसू .. .. ...... ........वह कूल में।

(देखो उर्मिला विरह वर्णन'—(१) पृष्ट १११)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



# टीका

पृष्ट १२२

लज्जा — —'(कामायनी; से)

संदर्भ संकेत—प्रस्तुत अंश ( लज्जा सर्ग ) 'कामायनी' महा काव्य से उद्धृत है। प्रकृति की एकाकी गोद में मनु के निराश हृदय में श्रद्धा को पाकर नव आशा का संचार हुआ। श्रद्धा ने मनु को नव उल्लास और जीवन दिया। स्वतंत्र प्रकृति वाले मनु और श्रद्धा के जीवन में नव अनुभूति जाग्रत हुई। मनु के कान काम का संदेश सुनने लगे और वासना भी उनके नेत्रों के सामने मचलने लगी। श्रद्धा का हृदय भी प्रेम के बोझ से दब गया परन्तु इस प्रेमोन्मेष के साथ स्वतंत्र बालिका श्रद्धा ने लज्जा को अपने ऊपर छाते हुये अनुभव किया। प्रस्तुत अंश लज्जा की अनुभूति श्रद्धा द्वारा किस प्रकार होती है—इस प्रसंग को लेकर प्रारम्भ होता है।

कोमल किसलय........... ...............बिखरता ज्यों।

शब्दार्थ—किसलय = कोंपल ; कलिका = कली ; गोधूली = शाम का समय ; दीपक के स्वर = दीपक का प्रकाश; दिपती = चमकती विस्मृति = खो जाना, भूल जाना ; उन्माद = नशा ; बुल्ले = बुलबुला ; विभव = वैभव ;

अर्थ—कोमल कोपलों के अंचल में जिस प्रकार छोटी सी कली छिपी रहती है। सन्ध्या के समय जब अंधकार की चादर छा जाती है उसमें जिस प्रकार दीप का प्रकाश चमकता है! मनोहर स्वप्नोंमें खो जाने पर जिस प्रकार भावनाओं का नशा मन और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है या मादक हो जाता है और जिस प्रकार सुरभि बखेरती लहरों के बीच बुलबुलों का वैभव बिखरता रहता है,

वैसी ही माया......... ....................जादू पढ़ती।

शब्दार्थ—माधव = बसन्त ; कौतुहल = उत्कंठा ; नीरव =

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्तब्ध ; निशीथ = रात्रि;

अर्थ—उसी प्रकार (जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्त किया है) माया के आवरण में लिपटी हुई कोई अदृश्य छाया मूर्ति श्रद्धा को दिखाई पड़ी। वह अपने ओठों पर अंगुली रखे हुए थी मानो चुप रहने का संकेत कर रही हो। बसन्त की उत्कंठा से भरी सजलता से उसकी आखें भरी हुई थीं। अर्थात उसकी आंखों में जल बिन्दु बसन्त की उत्कंठा उत्पन्न करने वाली सजलता के समान झांक रहे थे। श्रद्धा ने उससे पूछा—इस स्तब्ध रात्रि में लता के समान तुम कौन हो जो मेरी ओर बढ़ती चली आ रही हो, अपनी कोमल बांहें फैला कर तुम आलिंगन करने का मन्त्र सा पढ़ रही हो अर्थात मुझे तुम अपनी बाहुओं में सिमट जाने के लिये विवश कर रही हो।

किन इन्द्र जाल ..........के डर में।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल = माया जाल; राग = अनुराग;

अर्थ—कौन से मायावी पुष्पों से अनुराग से भरे हुए सौभाग्य कणों को चुन चुन कर तुम सिर नीचा किये हुए एक माला गूंथ रही हो, जिससे माधुर्य की धारा ढरक रही है।

पृष्ट १२३

तुम अन्तःकरण को विकसित कदंब पुष्पों की माला सी पहना देती हो अर्थात् तुम्हारे दर्शन से हृदय में हर्ष की हिल्लोर छा जाती है। और हर्ष में मन फल भरी डाली के समान तुम्हारे समक्ष झुक जाता है।

वरदान सदृश ..............सुन पाती हूं

शब्दार्थ—सौरभ = सुगंधि; परिहास = उपहास

अर्थ—नीली किरणों से बना हुआ अपना अत्यन्त हलका और सुगंधि युक्त अंचल मेरे ऊपर वरदान के सदृश तुम डालती जा रही हो अर्थात् तुम मेरे ऊपर अपना सुकुमार अंचल छाती जा रही हो जो मुझे इस समय वरदान वत् सुखद लग रहा है। इस अंचल के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आवरण मे स्वतः मेरे अंग मोम के समान कोमल हो जाते हैं और मैं उस कोमलता का अनुभव कर आन्दोलित होने लगती हूँ और स्वयं संकुचित सी होकर केवल यही अनुभव कर पाती हूं कि इस अवस्था में मेरा मन ही मेरा उपहास कर रहा है।

स्मित बन जाती ......... डोल रहा।

शब्दार्थ—स्मित=मुस्कान; तरल=चंचल; कलरव=सुन्दर ध्वनि, प्रात:काल में पक्षियों की आवाज; अनुराग=प्रेम;

अर्थ—मेरी चंचल हंसी केवल मुस्कराहट में परिवर्तित होती जा रही है और यह मुस्काहट मेरे नयनों में वक्रता भर देती है, और जो कुछ में सरल और स्वच्छन्द इस संसार में देखती हूँ, वही मेरे लिये स्वप्न जगत सा बनता जा रहा है।

इस स्वप्न जगत में जब मैं आनन्दमयी ध्वनियों के संसार को जगता हुआ या आंखें खोलता हुआ देखती हूँ तो मुझे वायु के झोकों पर प्रेम इतराता हुआ सा और तैरता हुआ सा मालूम पड़ता है अर्थात पवन का प्रत्येक झोंका प्रेम का संदेश देता हुआ सा प्रतीत होता है।

अभिलाषा अपने............प्रति बढ़ती।

शब्दार्थ—संस्कृत=सत्कार करना; दूरागत=दूर से आनेवाला; रज्जु=रस्सी; अवलंबन=सहारा;

अर्थ—यौवन की अभिलाषाओं से पूर्ण मेरा मन उस सुख का स्वागत करना चाहता है। मैं अपने जीवन की समस्त शक्ति और एश्वर्य के साथ उस दूर से आने वाले अतिथि का सत्कार करना चाहती थी परन्तु (तुम कौन हो जो) तुमने उस किरनों की रस्सी को समेट लिया है जिसका सहारा लेकर में चढ़ना चाहती थी।

पृष्ठ १२४

और प्रेम रस के झरने में घुसकर में आनन्द शिखर की ओर बढ़ने के लिए लालायित थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



छूने में हिचक.................................पड़ी थी।

शब्दार्थ—कलरव = मधुर शब्द; रोमाली = रोमांच; बरजती = रोकती;

अर्थ—हे छाया मूर्ति तुम कौन हो? तुम्हारे कारण मुझे छूने में भी कैसी हिचक का अनुभव होने लगा। अपने प्रियतम को जब मै एक टक देखना चाहती हूँ तो पलकें आंखों पर झुक जाती है और मैं निर्निमेष दृष्टि से अपने प्रियतम को नहीं देख पातीहैं। प्रेम के मधुर शब्द और हास परिहास भरी बातें अधरों तक आकर सहसा रुक जाती हैं और मैं कुछ कह भी नहीं पाती।

रोमांचित शरीर मिलने के लिये संकेत करता है परन्तु तुम चुपचाप खड़ी हुई आकर रोक देती हो, मैं कुछ कहना चाहती हूं तो कह नहीं पाती केवल भौहों की काली रेखा ही जैसे भाषा सी बन कर मेरे भावों को व्यक्त करने लगती हो और मैं भ्रम में पड़ी हुई रह जाती हूँ।

तुम कौन?.............................. देती सी।

शब्दार्थ—परवशता = विवशता; प्रतिमा = मूर्ति।

अर्थ—हे छाया मूर्ति! तुम कौन हो जिसके कारण मेरा हृदय अपने वश में नहीं रहता। तुम मेरी सब स्वतन्त्रता छीन रही हो मेरे जीवन वन में जो भाव प्रसून स्वच्छंदता से खिल रहे थे उन्हें तुम कौन हो, जो बीनती जा रही हो।

सन्ध्या की लालिमा के रूप में हंसती हुई और उसी का सहारा लेती हुई अर्थात उसमें ही अपने को एक रूप करती हुई एक छाया मूर्ति श्रद्धा की बात का उत्तर देने के लिये गुनगुना उठी।

नोट—यही छाया मूर्ति 'लज्जा' थी।

इतना न चमत्कृत..................................उन्माद लिये।

शब्दार्थ—चमत्कृत होना = चौंकना; अंबर = आकाश; हिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



शृंगो=तरफ से ढ़की चोटियाँ; कोलाहल=शोर; उन्माद=पागलपन

अर्थ—छाया मूर्ति लज्जा ने कहा—

हे बालिके ! तुम इतनी मत चौंको, कुछ अपने मन का उपकार कर लो। मैं एक पकड़ हूँ, जो यही कहती हूँ कि किधर बहे चले जा रहे हो, कुछ ठहरो और सोच विचार कर आगे बढ़ो।

यहां से चचल यौवन का वर्णन प्रारम्भ होता है—

पर्वत की हिम मंडित ऊँची चोटियों से उठती हुई अत्यन्त कलरव और कोलाहल करती हुई विद्युत की सी सजीव धारा जिस यौवन के आने पर शरीर में दौड़ने लगती है और एक प्रकार से पागल बना देती है।

पृष्ठ--१२५

मंगल कुंकुम.......... पिक सा हो।

शब्दार्थ—कुंकुम=केसर या रोली ;श्री=शोभा ; हरियाली नवीनता ;

संकेत – यौवन का वर्णन हैं—

अर्थ—जिसमें मंगलमय केसर की सी शोभा फूट पड़ती है और ऊषा की लालिमा के समान अनुराग का रंग और भी निखर जाता है और जिसमें ऐसी नवीनता है कि भोला सुहाग भी किसी का आश्रय पाने के लिये इठलाने लगता है।

और वह आनन्द जो नेत्रों के लिये अति कल्याण कारी प्रतीत होता है 'जीवन में पुष्प के समान विकसित होने लगता है। वसन्त ऋतु में वैभव पूर्ण वन के बीच जैसे कोकिल का मधुर स्वर गूंज उठता है उसी प्रकार जीवन के पुष्पित वन में उसका भी मधुर स्वर गुंज उठता है।

जो गूंज उठे......................पाती हो।

शब्दार्थ—मूच्छर्ना=संगीत में स्वर का उतार चढ़ाव;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आँखों की नीलम की घाटी=आंखों की नीली पुतलियाँ;रस-घन=रस रूपी मेघ; कौधं=चमक।

अर्थ—जिस (यौवन)का मधुर स्वर संगीत के स्वरों के उतार चढ़ाव की तरह मचलता हुआ सा शरीर की नस नस से झंकृत होने लगता है और जो आँखों के सांचे में ढल कर अत्यन्त कमनीय बन जाता है अर्थात जो नेत्रों को स्वयं अति सुन्दर लगता है।

जिसके प्रेम रस पूर्ण बादलों मे आंखों की नीलम घाटी छाई हुई सी प्रतीत होती है अर्थात जिसके कारण आंखों की पुतलियां प्रेम रस से भीग उठती हैं और उसकी चमक ऐसी अनुपम होती है कि जिससे शीतल हृदय शान्ति का अनुभव करता है

हिल्लोल भरा............. ...... लहरों पर से।

शब्दार्थ—हिल्लोल=उल्लास ;ऋतुपति=वसन्त ,गोधूली सन्ध्या, मध्याह्न=दोपहर, ;प्राची=पूर्व ;विछले=फिसले;

अर्थ—जिस (यौवन) में वसन्त का सा उल्लास भरा हुआ हो और सन्ध्या की लालिमा के समान अनुराग का रंग भरा हुआ हो और . जिसके आने पर हँसते हुए प्रात:काल की सी जागृति का अनुभव हो और दोपहर की सी उज्ज्वल ज्योति निखर उठती हो।

और जो मन रूपी सागर की लहरों इस प्रकार से फिसलता है जैसे कि पूर्व दिशा से एकाएक चकित सी निकलती हुई नई चांदनी सागर की लहरों पर रपटती हैं अर्थात जो मन को सहसा ही तरंगित कर देता है।

फूलों की............मनाते हों।

शब्दार्थ—अभिनन्दन= स्वागत;

पृष्ठ--१२६

मकरंद=पराग; किसलय=कोंपल; रव=ध्वनि:

अर्थ—फूलों की कोमल पंखुड़ियां भी जिसके स्वागत में बिखर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



जाती हों। और स्वागत हेतु तैयार किये हुए केसर चन्दन में अपने पराग को भी मिला देती हों।

कोमल कोमल पत्ते भी मर्मर ध्वनि करते हुए जिसके विजय गीत गाते प्रतीत हों और जो [यौवन] सुख और दुख दोनों को मन में आनन्द के उत्सव मनाने में तल्लीन कर देता है अर्थात जिसके आगमन पर सुख और दुख दोनों आनन्द दायक बन जाते हैं।

उज्ज्वल वरदान..............समझाती।

शब्दार्थ—चेतना=अनुभूति; चपल=चंचल; धात्री=धाय;

अर्थ—जो (यौवन) निर्मल अनुभूति का वरदान् है अर्थात जिसके आने पर हृदय नव अनुभूतियों मे भर जाता हैं, और जिसका दूसरा नाम सौन्दर्य है और जिसके आने पर अनन्त अभिलाषाओं के मीठे सपने जाग्रत हो जाते हैं।

मैं उसी चंचल यौवन की धाय हूँ और धाय के समान उसे गौरव और महानता का पाठ पढ़ाती रहती हूं। मैं यौवन को भविष्य में लगने वाली ठोकर के बारे में सचेत करती हूँ अर्थात् उसे सदा ठोकर खाने से बचाती हूँ।

मैं देव सृष्टि.......... दलिता सी।

शब्दार्थ—देव सृष्टि=देवलोक; रति-रानी—कामदेव की पत्नी; पंच बाण =कामदेव' आवर्जना = निषेध; अवशिष्ट = बाकी; अवसादमयी=दुखभरी; श्रमन्दलिता=थकी हुई

अर्थ—मैं देव लोक की रानी रति हूँ जो अपने पति कामदेव से वंचित होकर निषेध की दीन मूर्ति बनी हुई हूँ और ऐसी बनी हुई हूँ मानो मैं अपनी अपूर्ण इच्छाओं का संचय हूँ।

विशेष—निषेध की मूर्ति इस कारण कहा गया है क्योंकि लज्जा ने स्वयं पहले कहा है-'मै एक पकड़ हूं जो कहती, ठहरो कुछ सोच विचार करो।'

मैं अतीत की असफलता की अनुभूति के समान और भोग विलास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



के पश्चात की खेद और दुखभरी थकान के समानही केवल बची हुई हूँ।

मैं रति की.........कर जगती।

शब्दार्थ — प्रतिकृति=प्रति मूर्ति; शालीनता = नम्रता; नुपुर=पायल; कुंचित अलक=घुघराली लटें: मरोर =टीस

अर्थ—मैं ही रति की प्रतिमूर्ति लज्जा हूँ जो नम्रता का पाठ विश्व को पढ़ाती है। जिस प्रकार पग में नूपुर लिपटे रहते हैं उसी प्रकार मैं भी लिपट कर मस्त करने वाली सुन्दरता को मनाया करती हूँ अर्थात् मतवाली सुन्दरता का आह्वान करती हूँ।

पृष्ठ १०७

सरला कामिनी के कपोलों पर ही मैं लाली बन जाती हूं अर्थात उसके कपोलों को मैं ही लाल बनाती हूँ। और आँखों में मैं ही अन्जन की तरह लग कर उन्हें मादक बनाती हूँ। जिस प्रकार से अलकें घुंघराली या बल खाती हुई सी होती हैं, उसी प्रकार बल खाती हुई टीस बन कर मैं मन में उठती हूँ।

चंचल किशोर.............. ........कानों की लाली।

शब्दार्थ—लाली=लालिमा, सुर्खी; मसलन=मसलने का भाव।

अर्थ—किशोरावस्था के चंचल सौन्दर्य की मैं ही रक्षा करती हूं जिस प्रकार मसलने से कानों पर लालिमा छा जाती है, इसी प्रकार मैं स्वयं भी एक इसी प्रकार की मसलन हूँ जिसके आने पर मुख मंडल पर लालिमा छा जाती है।

संकेत—इसके पश्चात श्रद्धा का कथन चलता है। लज्जा के शब्दों को सुनकर श्रद्धा को नारी दौर्बल्य का अनुभव होता है।

हां ठीक, परन्तु.............................क्या है?

शब्दार्थ —निबिड़=घनघोर; संसृति=संसार;

अर्थ—'तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक है'—श्रद्धा कहती है। परन्तु अब यह बताओ कि मेरे जीवन के लिये कौन सा मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अभीष्ट है। संसार की इस घनघोर रात्रि में कौन सी ऐसी प्रकाशमयी किरण हैं जिसका अवलम्ब लेकर मैं अपने जीवन को आलोकित कर सकती हूँ।

यह आज समझ...... ............भर आता है?

शब्दार्थ—अवयव=शरीर के अंग; घनश्याम खंड=श्याम वर्ण मेघ खंड।

अर्थ—मैं तो केवल इतना जान पाई हूँ कि मै दुर्बलता धारण करती हूँ, इसलिए ही नारी हूं और शरीर की सुन्दर सुकुमारता ही संसार में मेरी पराजय का कारण है.

परन्तु मेरी समझ में नहीं आता, कि मेरा मन स्वयं इतना शिथिल क्यों हो जाता है और श्याम वर्ण मेघ खंड के समान मेरे नेत्रों में अचानक ही जल क्यों भर आता है?

सर्वस्व समर्पण.......... ......श्रम शीला।

शब्दार्थ—समर्पण=अर्पण; तारक-द्युति=तारों की आभा; छायापथ=आकाश गंगा; निरीहता=

अर्थ—विश्वास रूपी महान वृक्ष की छाया में अपना सब कुछ अर्पित करने की इच्छा न जाने क्यों जाग्रत होती है। अर्थात मन स्वयं दूसरे पर विश्वास केवल विश्वास करके ही सब कुछ समर्पित करने को लालायित हो जाता है। और न जाने क्यों, माया के बीच में पड़े रहने की इच्छा बरावर ही इन मन में उठती रहती है।

आकाश गंगा में टिमटिमाते तारों की आभा के समान झिलमिलाते रहने की मधुर क्रीड़ायें इस मन में नित्य अभिनय करती रहती हैं। ये क्रड़ायें भी अत्यन्त ही परिश्रम शील होते हुए भी कोमलता और दुर्बलता या दीनता से युक्त रहती है।

पृष्ठ—१२८

निस्संबल होकर.....................सुघराई में।

शब्दार्थ—निस्सबल=बिना किसी संवल के.असहाय सुघराई सुन्दरता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—इस मन रूपी मानस के गंभीर तल में मैं विना किसी संबल के तैरती रहती हूँ भाव यह है कि मैं मन द्वारा एक गंभीर स्वप्न लोक में असहाय विचरण करती रहती हूँ और मैं इस सुन्दर स्वप्न वत विचरण से मुक्त होना नहीं चाहती।

नारी जीवन.................. अनुदिन वकती।

शब्दार्थ—विकल=उत्कंठा;अस्फुट=अव्यक्त;आकार=स्वरूप अंतर=हृदय;अनुदिन=नित्य प्रति

अर्थ—क्या नारी जीवन का यही सच्चा चित्र नहीं है ? तुम उस में उत्कंठा का रंग भर ही अस्पष्ट रेखाचित्र में कला को मूर्त रूप दे देती हो। भाव यह है कि बिना उत्कंठा के नारी जीवन का रेख चित्र अस्पष्ट और अव्यक्त हो रहता है परन्तु लज्जा उसमें उत्कंठा का रंग भर कर उसे व्यक्त कर देती है अर्थात लज्जा के आगमन पर ही नारी वास्तविक स्वरूप व्यक्त होता है।

मैं स्वयं संयम और सीमा के अन्दर रहना चाहती हूँ परन्तु मेरी विचार शक्ति मेरा साथ नहीं देती। और ऐसा लगता है कि मेरे हृदय में एक पागलपन सा समाया हुआ है या कोई पगली बैठी हुई है जो नित्यप्रति प्रलाप करती रहती है।

मैं जभी ............ ..झलकता है।

शब्दार्थ उपचार=उपाय;उत्सर्ग=त्याग ;

अर्थ—मैं जब कभी पुरुष का मूल्यांकन करने का प्रयत्न करती हूँ तो उसमें मुझे सफलता नहीं मिलती,उलटा यह अनुभव होता है कि मैं ही पुरुष के हाथों बिकी जा रही हूँ और तब मैं पुरुष रूपी वृक्ष से अपनी भुजा रूपी लता फँसाकर झूले सी झूलने लगती हूँ अर्थात पुरुष के आलिंगन पाश में वद्ध होकर मैं सुध बुध खोकर झूमने लगती हूँ।

मेरा यह अर्पण और किसी भावना से प्रेरित नहीं है वल्कि शुद्ध आत्मत्याग का परिचायक है। इस त्याग स्वाभाविक रूप से मेरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



यही भाव स्पष्ट होता है कि अपना सब कुछ देकर भी प्रतिदान की इच्छा नहीं रखती।

क्या कहती हो.......... समतल में।

शब्दार्थ—संकल्प अश्रु जल = निश्चय के आसुओं से (कोई दान देते समय जल हाथ में लेकर संकल्प किया जाता है यहां अश्रु जल द्वारा किये गये संकल्प से ही कवि का तात्पर्य है)

पृष्ठ—१२६

रजतनग = कैलाश पर्वत; पगतल = तलहटी; पीयूष = अमृत; स्रोत = धारा

अर्थ—लज्जा कहती है—हे नारी ठहरो, तुम यह समर्पण की बात क्या कहती हो। तुम तो पहले ही अपने जीवन के समस्त सुनहले स्वप्न पुरुष कल्याण के लिये अपने आंसुओं के संकल्प जल को लेकर दान कर चुकी हो।

हे नारी! तुम तो विश्वास रूपी कैलाश पर्वत की तलहटी में रहने वाली श्रद्धा हो अतः पुरुष जीवन के मैदान में अमृत धारा के समान ही बहा करो। भावार्थ यह है कि हे नारी तुम श्रद्धामयी हो और विश्वास के विशाल पर्वत में रहती हो अर्थात सब पर सहज विश्वास करने वाली हो अतः तुम पुरुष जीवन को अपने प्रेम की अमृत धारा से सींच दो।

देवों की विजय...... ....लिखना होगा।

शब्दार्थ—दानवों = राक्षसों; स्मित रेखा = मुस्कान

अर्थ—मानव हृदय दैवी भवनाओं की विजय और आसुरी भावनाओं की पराजय का युद्ध स्थल अनादि काल से बना रहा है यह विरोधी भावनाओं का संघर्ष सदा से ही मानव अन्तःकरण में जीवित है।

हे नारी! तुमको आंसुओं के भीगे अंचल मन का सब कुछ समर्पित करना ही होगा अर्थात जीवन के दुख से आर्द्र समय में अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मन की समस्त इच्छाओं को न्यौछावर करके अपनी मधुर मुस्कान की रेखाओं द्वारा सुख और दुख के बीच संघर्ष मिटाने के लिये संधि पत्र लिखना ही होगा। भाव यह है कि सुख और दुख के संघर्ष को तुम्हे अपनी मधुर पुस्कान से मिटाना ही पड़ेगा।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न- १. प्रसाद की हिन्दी सेवाओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर

प्रसाद जी हिन्दी के अभूतपूर्व कलाकारों में से थे। ४८ वर्ष के अल्पजीवन में आपने अपनीवहुमुखी प्रतिभा के द्वारा उच्च कोटि क साहित्य का सृजन कर हिन्दी की महान् सेवा की। आपकी साहित्य सेवा का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होने साहित्य के सभी अंगों को अपनी लेखनी से स्पर्श किया और अद्भुत सफलता भी प्राप्त की। उपन्यास, नाटक, कहानी, काव्य और निबन्ध के क्षेत्र में आपकी प्रतिभा का विकास हुआ। जिस विषय को आपने हाथ लगाया उसे ही अपनी प्रतिभा से अलंकृत कर दिया।

प्रसाद जी का कवि और नाटककार का रूप ही सबसे अधिक आकर्षक और पुष्ट है, परन्तु कहानीकार और उपन्यासकारके रूपमें भी आपको पूर्ण सफलता मिली। सं० १९७५ में आपकी छोटी छोटी कविताओं का संग्रह 'झरना' प्रकाशित हुआ इस काव्य के प्रकाशन के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद और रहस्यवाद का सूत्रपात हुआ। अतः हम कह सकते है कि प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को यह दो वाद दिये जिनके आधार पर अन्य कवियों ने यथेष्ठ साहित्य का सृजम किया। सं० १९८२ में 'आँसू' का प्रकाशन भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बड़ी घटना हैं। प्रसाद जी की यह रचना हिन्दी जगत में वहुत प्रसिद्ध हुई। 'लहर' कवि की प्रौढ़ रचनाओं का संग्रह है। 'कामायनी' प्रसाद जी का श्रेष्ट महाकाव्य है। गुलाबराय जी लिखते हैं—"समन्वयवाद भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



संस्कृति और साहित्य की मुख्य विशेषता है। यही कामायनी का मूल स्वर है।"

नाटक के क्षेत्र में प्रसाद जी की सेवायें चिरस्मरणीय रहेंगी। आपके नाटक अमर हैं। आपने आठ नाटक लिखे जिनमें 'चन्द्रगुप्त' 'स्कंदगुप्त' 'अजातसत्रु' 'ध्रुवस्वामिनी' उल्लेखनीय हैं। कहानी के क्षेत्र में भी आपने एक नई टेक्नीक (कहानीकला) का सूत्रपात किया। कहानी संग्रहों में छाया, प्रतिध्वनी, आकाश दीप, आँधी और इन्द्रजाल हैं आपने कंकाल, तितली और इरावती उपन्यास लिखे। इरावती आपका अन्तिम और अधूरा उपन्यास है। निबन्ध सम्बन्धी आपकी एक पुस्तक 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध' प्राप्त हैं।

प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के कवि थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य को इतिवृत्तात्मकता की जंजीरों से मुक्त कर स्वाधीन पथ पर अग्रसर किया और उच्च कोटि के साहित्य का सृजन किया। प्रसाद जी की हिन्दी सेवा अमर है और महान् है।

प्रश्न २— 'कामायनी' प्रसाद जी का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

## उत्तर

गुलाबरायजी के अनुसार 'कामायनी' प्रसाद जी का कीर्ति स्तम्भ है अतः उसके सर्वोत्कृष्ट होने में कोई संदेह नहीं रह जाता है। 'कामायनी का प्रकाशन स० १९९२ में हुआ। इस महाकाव्य में श्रद्धा और मनु की कहानी है। प्रसाद जी का यह महाकाव्य भाव भाषा और शैली की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके द्वारा आपने हिन्दी साहित्य में नवीन कल्पनाओं की सृष्टि की है।

खड़ी बोली में महाकाव्य की प्रमुख प्रवृति का पुनर्जन्म हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त ने 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' महाकाव्य लिख कर किया। यह बृहदाकार महाकाव्य पूर्णतः सफल महाकाव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नहीं कहे जा सकते । कथानक की प्राचीनता सर्गों की अधिकता जीवन की पूर्ण व्याख्या; छंदों की विभिन्नता, षडऋतुओं का वर्णन, प्रकृतिकी छटा, उच्चकुलीन नायक, लोक संग्रह की भावना आदि आदि महाकाव्य के गुण हैं कामायनी पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि उसमें महाकाव्य के गुण प्रचुर रूप में मिलते हैं । यद्यपि षड्ऋतु और बारहमासे का वर्णन उसमें नहीं है परन्तु प्रकृति के जो भव्य चित्र उतारे गये हैं उन्हें देखकर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यहाँ पर प्रसाद जी ने षडऋतु वर्णन आदि की रूढिवादी परम्परा का जान बुझ कर ही उल्लंघन किया था । कामायनी की कथा ऐसी है जो किसी न किसी रूप में समस्त संसार में मिलती है, इस कारण कामायनी एक देशीय काव्य न होकर सार्वभौमिक महाकाव्य माना जा सकता है । प्रकृति चित्रण, चरित्र चित्रण और कथा प्रवाह आदि की दृष्टि से कामायनी एक सफल महाकाव्य ही प्रमाणित होता है ।

प्रश्न—३ पठित सामिग्री के आधार पर प्रसाद जी की काव्य साधना पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये ।

## उत्तर

'लजा' नामक सर्ग से प्रसाद जी की काव्य विषयक साधना का पूर्ण नहीं तो बहुत कुछ दिग्दर्शन हो जाता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं प्रेम और सौन्दर्य की आभिनक कल्पना का एकचित्र देखिये—

यह आज समझ तो पाई हूँ ;
मैं दुर्बलता में नारी हूँ ;
अवयव की सुन्दर कोमलता ,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला ,
अपने ही होता जाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



घनश्याम खंड सी आँखों में ,
क्यों सहसा जल भर आता है।

प्रसाद जी की साधना महान थी। प्रकृति का सुन्दर स्वरूप उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने जो प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने प्रसाद जी की काव्य कला को वाणी दी और उनके काव्य मय जीवन को विकसित किया। आपके काव्य में प्रकृति के अनेक रहस्यात्मक चित्र मिलते हैं। प्रकृति के प्रति नितनवीन दृष्टि कोण उनकी ही साधना की देन है। 'लज्जा' के स्वरूप का चित्रण करते हुए भी आपने प्रकृति का भव्य स्वरूप प्रस्तुत किया है—

नयनों की नीलम की घाटी , जिस रस घन से छा जाती हो
वह कौंध कि जिससे अंतर की , शीतलता ठंडक पाती हो।
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का , गोधूलि की सी ममता हो।
जागरण प्रात सा हंसता हो , जिसमें मध्याह्न निखरता हो।

प्रसाद जी की भाषा संस्कृत गर्भित है और एक रस है आपकी भाषा में चित्रोपमता पर्याप्त मात्रा में है आप वर्णन में ऐसे सिद्ध हस्त थे कि पूरा दृश्य ज्यों का त्यों आँखों के सामने साकार कर देते थे एक चित्र देखिये—

मैं जभी तोलने का करती,
उपचार, स्वयं तुल जाती हूं
भुजलता फसा कर नर तरु से,
झूले सी झोंके खाती हूं॥

इन चार छोटी पंक्तियों में नारी की विवशता और कोमलता का जो चित्र प्रसाद जी ने प्रस्तुत किया है वह उनकी काव्य प्रतिभा और साधना का परिचायक है।

सबसे बड़ी महानता 'लज्जा' सर्ग में प्रसाद जी की यह है कि उन्होंने लज्जा जैसे भाव का जो सुन्दर मानवीकरण किया है वैसा प्रत्येक कवि का काम नहीं। लज्जा का साकार स्वरुप जिस सफलता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



साथ आँखों के सामने खिंच जाता है उसे देख दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है—'मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली'— इन पंक्तियों में लज्जा का मानवीकरण अति सजीव और प्रकृत हुआ है साथ साथ भाषा की लाक्षणिकता का परिचय भी मिलता है प्रसाद जी के काव्य में लाक्षणिक प्रयोग खूब प्राप्त होते हैं :

प्रसाद जी अभिनव कल्पना करने में प्रवीण थे प्रसाद जी ने अपनी कल्पना को काव्यात्मक सौन्दर्य से सजाकर नवीनता प्रदान की है उनकी मौलिक और नवीन कल्पनायें बस देखते ही बनती है— लज्जा के स्वरूप की कल्पना देखिये—

लाली बन सरल कपोलों में,
आंखों में अंजन सी लगती
कुंचित अलकों सी घुंघराली,
मन की मरोर बनकर जगती ॥

भाषा रस अलंकार दृष्टि से भी प्रसाद जी का काव्य अद्वितीय है प्रसाद जी की काव्य साधना के फल स्वरूप हिन्दी साहित्य की जो वृद्धि और उन्नति हुई है उसके कारण आज हिन्दी साहित्य को प्रसाद पर गर्व है और सदैव रहेगा।

प्रश्न ४ 'नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो'—का भाव सौंदर्य व्यक्त कीजिये।

## उत्तर

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'—यह पंक्ति प्रसाद जी की भावुकता को पूर्णतः स्पष्ट करती है नारी का पूर्ण स्वरूप ये पांच शब्द चित्रित कर देते हैं। नारी को केवल श्रद्धा कह कर प्रसाद जी ने नारी के प्रति अपनी पूज्य भावना को अत्यन्त सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है। श्रद्धा की परिभाषा लिखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं— 'किसी मनुष्य में जन साधारण से विशेष गुण वा शक्ति का विकास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती हैं, उसे श्रद्धा कहते हैं; अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं कि श्रद्धा आनन्द की जननी है। यहाँ पर जसाद जी ने भी नारी को आनन्द का प्रतीक ही बताया हैं। नारी को श्रद्धा कह कर प्रसाद ने अपनी उस भावना को ही सूत्र रूप में रखा हैं जो आगे स्वयं उनकी पंक्तियों में मुखरित हो उठती हैं—

पीयूष स्रोत सी बहा करो,

जीवन के सुन्दर समतल में ॥

अर्थात श्रद्धा रूपी नारी जीवन में अमृत की पुण्य धारा के समान है। वस्तुत: श्रद्धा मन की एक रागात्मक वृत्ति हैं जो मन को सान्त्वना प्रदान करती है और शान्तिमय आनन्द का अनुभव कराती है। नारी को श्रद्धा का प्रतिरूप बता प्रसाद जी ने अपनी आलौकिक उस भावना को साकार कर दिया है जो इस बात को स्पष्ट करती है कि नारी ही मानव जीवन को अमृतमय बनाती है और उसके जीवन के संघर्ष को अपनी मृदुल मुस्कान से समाप्त करने की क्षमता रखती है

प्रश्न ५ छायावाद से आप क्या समझते हैं? प्रसाद जी वर्तमान युग के प्रथम छायावादी कवि क्यों माने जाते हैं?

## उत्तर

छायावाद की परिभाषा सूत्र रूप में देते हुए विश्वम्भर 'मानव' लिखते हैं—'प्रकृति को चेतना प्रदान करना छायावाद है'। भाव यह है छायावाद में कवि प्रकृति का चेतन रूप देखता है और उस पर अपनी भावनाओं का आरोप करता है। इसमें कवि विश्व के कण २ में प्राणों की छाया देखता है। आचार्य रामचन्द्र शुल्क के अनुसार छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये—(१) रहस्यवाद के अर्थ में, (२) प्रतीकवाद के अर्थ में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल रहस्यवाद को भी छायावाद के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु वास्तव में प्रतीकवाद शैली—जिसमें कि कवि प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत प्रतीकों का वर्णन करता है-का ही दूसरा नाम छायावाद है। सभी आलोचक इस बात को मानते हैं कि छाया वाद ने अपनी भाषा में लाक्षणिकता एवं प्रतीकवादी शैली को अपनाया है। प्रकृति और प्रेम को अमूर्त उपमानों से व्यक्त करने में यह शैली बहुत सफल हुई है। छायावाद कवि प्रकृति को मानवी रूप देकर उसके प्रति अनेक प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति करता है।

प्रसाद जी को प्रथम छाया वादी कवि और इस धारा के पथ प्रदर्शक के रूप में मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती द्विवेदी युग की उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकताके प्रतिप्रतिक्रिया छायावादी युग में हुई। प्रसाद जी ने इसका प्रवर्तन किया। 'झरना; की कविताओं द्वारा छायावाद का बीजारोपण हुआ। इस कविता संग्रह से पूर्व और किसी कवि की रचना इस प्रकारकी नहीं मिलती। कवि की कल्पना शक्ति का पूर्ण आलोक पाकर यह काव्य में समाविष्ट नया वाद शीघ्र ही लोगों को प्रभावित कर गया। 'किरण' 'विषाद' आदि सूक्ष्म भावना पूर्ण कवितायें लिखकर कवि ने नई धारा प्रवाहित की अनुभूति की गहराई, प्रतीकों का सुन्दर चयन और कल्पना की ऊंची उड़ान ने झरना' की कविताओं में कवि के उज्जवल भविष्य को भी अंकित कर दिया किरणका नववधू के रूप में मानवी करण देखिये—

धारा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन।
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
मिलाती हो उससे भूलोक।

छाया वाद का इस प्रकार 'झरना' द्वारा प्रसाद जी ने सूत्रपात किया। अतः प्रसाद जी वर्तमान युग के प्रथम छायावादी कवि माने जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रश्न—६. प्रसाद जी की भाषा एवं शैली की विशेषतायें सोदाहरण लिखिये।

## उत्तर

भाषा की दृष्टि से प्रसाद जो रचनायें जन साधारण के लिये दुरूह जान पड़ती हैं। आपकी भाषा संस्कृत गर्भित और तत्सम शब्दों से बोझिल मिलती है। संस्कृत गर्भित होते हुए भी आपकी भाषा एक रस है और वह बड़े सुन्दर लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त है। भाषा में चितोपमता भी पर्याप्त मात्रा में हैं। 'आंसू' की निम्नपंक्तियों में लाक्षणिकता का स्वरूप देखिये—

झंझा झकोर गर्जन है बिजली हैं नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला ॥

'यहां झंझा झकोर' आकुलता का, बिजली' टीस का, नीरद माला' अन्धकार के प्रतीक हैं।

चित्रोत्तमता भी प्रसाद की भाषा शैली का मुख्य गुण है। उनकी कल्पना इतनी रंगीन और सजग होती है कि वस्तु का चित्र वे ज्यों का त्यों उतार देते हैं। लज्जा का स्वरूप चित्रण देखिये—

में रति की प्रतिकृति लज्जा हूं
    मैं शालीनता सिखाती हूं;
मतवाली सुन्दरता पग में,
    नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

एक शब्द चित्रण भी प्रसाद जी की शैली की विशेषता है। जैसें 'नक्षत्र' का चित्रण आपने 'तम के सुन्दरतम रहस्य' या अनन्त की गणना कह कर किया है।

प्रसाद जी की शैली में सरसता, लाक्षणिकता और चित्रोत्तमता ये तीन गुण बिशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लाक्षणिकता और चित्रोपमता का चित्रण ऊपर किया जा चुका है और सरसता के लिये हम इतना ही कह सकते हैं कि उसका राज्य तो सर्वत्र उनके काव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



में विस्तृत है। नारी की विवशता और महानता एक सरस चित्रण देखिये—

यह आज समझ तो पाई हूँ ;
मैं दुर्बलता में नारी हूँ ;
अवयव की सुन्दर कोमलता ,
लेकर मैं सब से हारी हूँ
पर मन भी क्यों इतना ढीला '
अपने ही होता जाता है
घन श्याम खंड सी आँखों में
क्यों सहसा जल भर आता है।

यह प्रसाद जी की सरस शैली की ही महानता है ,, जिसके कारण आपकी भाषा संस्कृत गर्भित और जन साधारणके लिये दुरूहहोते हुए भी आपका साहित्य सबके कंठ का हार बना हुआ है।

प्रश्न —७ प्रस्तुत पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिये।

## उत्तर

प्रस्तुत पाठ 'लज्जा, कामायनी का एक सर्ग है। कामायनी श्रद्धा और मनु की कहानी है। प्रलय के जलप्लावन से बचे हुए मनु की जब श्रद्धा से भेंट होती है तो दोनों के हृदय में वासना जाग पड़ती है। यहाँ श्रद्धा को लज्जा घेरली है। लज्जा सर्ग इसी के अन्तर्गत आताहै जिसका सारांश निम्नलिखित है—

श्रद्धा जिस समय मनु के प्रति अपने हृदय में अटूट प्रेम और मिलन मा स्वप्न सजो रही थी उसी समय उसे अनुभव हुआ कि कोई छाया मूर्ति चुप रहने का संकेत करती हुई उसकी ओर बढ़ रही हूं श्रद्धा ने उससे पूछा, तुम कौन हो ? जो मुझे अपनी बाहुओं में सिमट, जाने के लिये विवश कर रही हो। तुम्हारे आते ही मेरे अंग मोम के समान कोमल हो गये हैं, मेरी चचंल हँसी मुस्कराहट में बदल गई है। मैं अपने प्रिय अतिथि का सत्कार करना चाहती हूँ मैं अपने प्रियतम को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एक टक देखना चाहती हूँ परन्तु तुम्हारे कारण देख नहीं पाती , प्रेम के मधुर शब्द मेरे अधरों तक आकर सहसा रुक जाते हैं। रोमांचित शरीर आलिंगन के लिये उत्सुक है परन्तु तुम चुप चाप रोक देती हो। हे छाया मूर्ति तुम कौन हो ,जो इस प्रकार मेरी स्वतंत्रता छीन रही हो।

श्रद्धा के यह बचन सुनकर वह छाया मूर्ति गुन गुना उठी—हे वाला! मैं एक पकड़ हूँ जो प्रत्येक से यही कहती हूं कि ठहरो और सोच बिचार कर आगे बढ़ो। मैं चंचल यौवन की रक्षा करती हूँ। वह यौवन जिसके आते ही आंखों में सरसता छा जाती है, जो नसनस में कंपन भर देता है, उसी यौवन के रक्षार्थ में शालीनता का पाठ पढ़ाती हूँ। मेरा ही दूसरा नाम रति है। कामिनी के कपोल मेरी कृपा से ही लाल हो उठते हैं और मैं ही उसके नेत्रों का शृंगार हूं।

तत्पश्चात श्रद्धा ने कहा—हां मैं समझी कि तुम कौन हो। परन्तु क्या तुम मेरे जीवन का पथ निर्देशन करोगी। मैं स्वयं यह अनुभव करती हूं कि मैं बड़ी दुर्बल हूं। हृदय में स्वतः समर्पण की इच्छा सदैव बलवती रहती हैं।

लज्जा ने उत्तर दिया—हे नारी ! तुम क्या कह रही हो तुम तो पहले ही आंसुओं के संकल्प जल से अपने को मानव जाति को समर्पित कर चुकी हो। अब तुम उसके जीवन को अमृतमय बना दो और उसके जीवन के संघर्ष को अपनी मधुर मुस्कान से आनन्दमय कर दो। बस यही निर्देश तुम्हें जीवन पथ पर अग्रसर होने में सफल बना सकेगा।

परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल –

निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये—

(१) बरदान सदृश हो.......... सुन पाती हूँ।

[देखो 'लज्जा' पृष्ठ १२३]

(२) अभिलाषा अपने यौवन.......प्रति चढ़ती।

[देखो 'लज्जा' पृष्ठ १२३-१२४]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(३) इतना न चमत्कृत.......... उन्माद लिये।
[देखो 'लज्जा' पृष्ट १२५]

(४) हिल्लोल भरा हो.............. लहरों पर से।
[देखो 'लज्जा' पृष्ट १२५]

(५) मैं देव सृष्टि.................श्रम दलिता सी।
[देखो 'लज्जा' पृष्ट १२६]

(६) मैं रति की प्रतिकृति......... बन कर जगती।
[देखो 'लज्जा' पृष्ठ १२६-१२७]

(७) सर्वस्व समर्पण .....श्रमशीला।
[देखो 'लज्जा' पृष्ट १२७ १२८]

(८) क्या कहती हो ............समतल में;
[देखो 'लज्जा' पृष्ठ १२८-१२९]

(९) देवों की विजय ..... ....लिखना होगा।
[देखो 'लज्जा' पृष्ठ १२९]

# चौदह बाल कृष्ण शर्मा नवीन

## श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

पृष्ठ—१३०

परिचय—श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सुप्रसिद्ध काँग्रेसी नेता हैं और आप कवि भी हैं। आप का जन्म सम्वत् १९५८ वि० में उज्जैन के समीप मयाना नामक स्थान में हुआ। आपकी कविताओं में दो प्रकार की युग प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः दिखाई पड़ती हैं। कुछ रचनाओं में रुप और प्रेम की प्यास विद्यामान है और कुछ रचनायें उनकी राष्ट्रीय विचार धारा को अभिव्यक्त करती हैं। वर्त्तमान सामाजिक और आर्थिक विषमता के प्रति असंतोष और उससे उत्पन्न विद्रोह भावना से आपकी रचनायें ओतप्रोत हैं। आपकी वास्तविक कीर्ति आपकी राष्ट्रीय विचार धारा से परिपुष्ट कविताओं से हुई है। आप कानपुर के श्री गणेश शकंर विद्यार्थी के सम्पर्क में आकर राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**रचनायें**—आपके तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—(१) कुंकुम (२) अपलक (३) क्वासि।

कुंकुम में संग्रहीत कवितायें राष्ट्रीय आन्दोलन, गाँधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित हैं। देश में तीव्र होते हुए वर्ग संघर्ष, मजदूर आन्दोलन और प्रगति वाद विचार धारा के प्रभाव में आपका कवि हृदय मर्माहत हो कर क्रांति की मांग करने लगता है। 'अपलक' और क्वासि, की कविताओं में हमें कवि प्रेम की भाव भूमिका दार्शनिक श्रृंगार करता हुआ दीख पड़ता हैं। आप का काव्य वस्तुत जीवन की मस्ती का काव्य है।

**साहित्य में स्थान**—'नवीन'जी नवीन धारा के कवि हैं आपका कविनाम 'नवीन' ही उनकी विचार धारा का परिचायक हैं। आप राष्ट्र की चेतना के गायक हैं। राष्ट्रीय कवियों आपका अच्छा स्थान है। आपने शोषित और पीड़ित जनता की आवाज को कविता द्वारा व्यक्त किया और एक स्वच्छन्द धारा कों बढ़ाने का प्रयत्न किया यद्यपि आप इस दिशा में अधिक आगे बढ़ने में असफल ही रहे।

# टीका

पृष्ठ-१३०

**रहस्य उद्घाटन**—

(जीवन, जगत और प्रकृति के अनेक रहस्यों के ज्ञात करने का मानव प्रयत्न करता रहता है—इस आधार को लेकर नवीन जी ने इस पाठ की रचना की है।)

यह रहस्य............उडडीयन-साधन।

**शब्दार्थ**— उद्घाटन = प्रकाशन,खोलना; रत=संलग्न; संश्लथ=दुर्बल, शिथिल, हिय=हृदय; अम्बर-विहरण=आकाश में विचरण; रण=शब्द; उडडीयन साधन=उड़ने के उपाय।

**अर्थ**—यह दुर्बल शरीर धारी, असफल मानव अपने मन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सदा अनेक रहस्यों को खोलने की क्रिया में लीन रहता है। समस्त उड़ने के साधन नष्ट होने पर भी इसका हृदय आकाश में विचरण करने के शब्दों से निनादित रहता है अर्थात इसके हृदय में नभ विचरण के भाव सदैव उठते रहते हैं।

(१) पंख नोच ......... यह संश्लथ तन।

शब्दार्थ—अन्तर = हृदय; चिनगी = चिनगारी; संघर्षण = संघर्ष, युद्ध;

अर्थ—ऐसा प्रतीत होता है कि किसी महान खिलाड़ी ने इस मानव के पंखों को नोच कर इसे पृथ्वी पर पटक दिया हो। परन्तु फिर भी उसके हृदय के पंख अब भी उड़ने के लिये फड़फड़ाते रहते हैं अर्थात् यह उड़ने के लिये लालायित रहता है। पृथ्वी पर गिरते ही पृथ्वी माता ने भी अपने आकर्षण की बेड़ियों में इसे जकड़ लिया और फिर किसी अज्ञात शक्ति ने इसके हृदय में संघर्ष की चिनगारी भी प्रज्वलित करदी है। इस प्रकार यह पृथ्वी पर रहने को विवश है परन्तु फिर भी यह अति आकुल-मन, पंखहीन दुर्बल शरीर वाला अत्यत छोटा प्राणी रहस्यों को खोलने की क्रिया में संलग्न है ॥ १ ॥

(२) मानव रहा............यह संश्लथ तन।

शब्दार्थ—लौं = तक; डैने = पंख; संतत = निरन्तर;

अर्थ—यही मानव न जाने कितने युगों तक तो सुप्तावस्था में ही पड़ा रहा और उसका भी क्या लेखा है कि यह कितने दिनों से रहस्य उद्घाटन की धुन में खोया खोया सा विचरण कर रहा है? परन्तु नींद में भी यह उड़ने के ही स्वप्न देखता रहा है और अपने इस निरन्तर जगत भ्रमण की अवस्था में भी यह अपने पंखों की खोज में ही व्यस्त रहा है परन्तु आज तक यह अपने पंखों और अपने वास्तविक स्वप्न को प्राप्त नहीं हो सका है। यह दुर्बल शरीर धारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



असफल मानव सदा रहस्य उदघाटन की क्रिया में ही लीन रहता है ॥ २ ॥

(३) क्या जाने··· ··· ···संश्लथ तन।

शब्दार्थ--पगडंडी=संकीर्ण मार्ग, मार्ग क्रमण कर आया=रास्ता तय कर आया; दंडी=सन्यासी; देशाटन=देशों का भ्रमण; परिव्रजन=घूमना; दिगभ्रमण=दिशाओं में घूमना; अतन्द्रिल=तन्द्रा रहित; आलस्य रहित, सचेष्ठ, निमिष गणन=पल पल गिनना; नियति=भाग्य।

अर्थ—यह मानव सतत भ्रमणशील रहता है, न जाने उसका यात्रा मार्ग कितना लम्बा है और यह महान भ्रमण करने वाला सन्यासी न जाने आज तक कितना मार्ग तय कर आया है। नित्य देशों को भ्रमण, सर्वदा परिव्राजक की तरह घूमना, और प्रतिपल दिशाओं में चक्कर लगाना; सर्वदा सचेष्ट होकर पल पल गिनना—इस प्रकार क्षण क्षण व्यतीत होने वाले समय का संकलन—यही मानव के जीवन का कार्य क्रम रहा है और यही उसके भाग्य की रेखाओं द्वारा भी अंकित है। इस प्रकार रहस्य उद्घाटन में संलग्न मानव भ्रमण करते करते ही दुर्बल शरीर हो गया है ॥३॥

पृष्ट १३१

(४) मानव झोली··· ···· ···क्षण क्षण उन्मन।

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र; लकुटी=डंडा; पथ-लीक=मार्ग; नेति=जिसकी इति न हो अर्थात अनन्त या असीम, स्वन=स्वर शब्द, उन्मन=अनमना।

अर्थ—मानव ने अपने भ्रमण के मार्ग में जो कुछ भी मिला उसे शीघ्र ही उठा लिया इस प्रकार उसने अपनी झोली में कितने ही कंकड पत्थर ज्ञान और अज्ञान आदि के रत्न एकत्रित कर लिये हैं। इस युगों से संचित किये हुए बोझ ज्ञान और अज्ञान का बोझ) को वह अपनी डंडी पर टांगे हुए ले जा रहा है यद्यपि बोझ के भार से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



झुका जा रहा है परन्तु फिर भी वह अपने मार्ग पर एक २ डग डग नाप कर बढ़ता ही जा रहा है। इतना करने पर भी उसके कानों में सतत यही स्वर सुनाई पड़ते रहते है कि अभी तो कुछ भी नहीं हुआ यह मार्ग तो अनन्त है, सीमा रहित है—इसी स्वर को सुनकर रहस्य उद्घाटन में संलग्न मन प्रतिपल वे सुध या अनमना सा हो जाता है।

(५) मानव की··· ···· ···सश्लब तन।

शब्दार्थ:—जिज्ञासा=जानने की इच्छा; साक्षी=गवाह; कल्याणी=हितकारी; प्रभाकर=सूर्य; स्तभित=आश्चर्य चकित; वामन=भगवान का वामन अवतार हुआ था जिसमें उनका स्वरूप बहुत छोटा था, यहाँ छोटे मानव से कवि का अभिप्राय है; नभतारक गण=आकाश में तारों के समूह; अमित=असंख्य।

अर्थ—मानव जिसकी ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा महान है—उसकी साक्षी स्वयं प्रकृति है। यही मानव अनेक युगों से हुँकार भरता चला आ रहा है। आज भी दिशाऐं, समय और घड़ियाँ [प्रहर] उसके भीषण हुंकारे के स्वर का ध्यान कर काँप रही है, और मानव के प्रयत्नों को देखकर तो स्वयं तीव्र ज्योति वाला सूर्य भी आश्चर्य चकित है। इस लघु मानव (वामन) की गति को देखकर असंख्य ताराओं का समूह भी चकित है, परन्तु रहस्य उद्घाटन के हेतु यह दुर्बल प्राणी बराबर चलता ही जा रहा है ॥५॥

[६] अम्बर काँप ......... ..... ..........सश्लथ तन

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश; अवनी=पृथ्वी; न–इति=नेति [देखो पद संख्या ४) लोक लोकान्तर=लोक–परलोक; ग्रीवा=गरदन संस्मरण=याद; स्मरण;

अर्थ—यह मानव अपने पथ पर बराबर अग्रसर है परन्तु फिर भी इसकी नेति नेति की आवाज सुनकर आकाश पृथ्वी और तारा गण भी काँप उठे हैं और लोक परलोक सभी इसके आगे पराजित हैं। फिर भी इसकी आग्रह भरी 'नेति नेति' की ध्वनि नहीं रुकती, स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



समय और नभमंडल भी इस मानव से भयातुर है। सबने देखा है कि यद्यपि इस मानव की गरदन लचीली है परन्तु फिर भी सदैव ऊँची ही रहती है अर्थात ये किसी के सामने झुकती नहीं। इतिहासों के पृष्ट भी मानव की याद करते हैं और उसका ही गुणगान करते हैं। यह मानव रहस्यउदघाटन में संग्लन, दुर्बल शरीर होते हुये भी आगे बढ़ता ही चला जा रहा है ।।६।।

विशेष—'नेति'—भगवान की महिमा को भी कविगणों ने 'नेति नेति ही कहा है—'भगवन नेति नेति तव कीरत'। यहाँ मानव भी रहस्य उद्घाटन करता जा रहा है परन्तु फिर भी रहस्यों की इति या समाप्ति नहीं है।

[७] कोटि कोटि.............................. संश्लथ तन

शब्दार्थ— ज्योतिर्वर्ष=प्रकाशित वर्ष; व्यतीत हुए वर्ष; तनु =दुर्बल; द्विपद=दो पैर वाला; द्विभुज=दो भुजा वाला; विद्युन्मणी =तारा नक्षत्र; कांडो=अध्यायों; अवगाहन=थाह लेना,

अर्थ—इस मानव का विस्तार करोड़ों व्यतीतवर्षों तक विस्तृत है। अर्थात यह मनुष्य करोड़ों वर्षों मे इसी प्रकार आगे बढ़ता आया है और उसके बारे में जाना है। यह बताना भी कठिन है कि इस दो पैर और दो भुजा वाले दुवल मानव का मन कहाँ कहाँ तक पहुँच चुका है। इस मानव की लीलायें छोटे से चमकते तारे से अनेक ब्रह्माड़ो तक फैली हुई है। मानव की लीलाओं का महाकाव्य एक दो पृष्ट या अध्यायों में समाप्त हो जाने वाला नहीं इसकी लीलाओं की गाथा तो अनेक अध्यायों तक पहुँच चुकी है और अभी क्या पता है कि यह कितनी गहरी थाह लेना चाहता है। यह मानव, जो अत्यन्त अनमना सा रहता हैं और दुर्बल शरीर है, नित्य प्रति रहस्य उद्घाटन में ही संलग्न रहता है ।।७।।

पृष्ट—१३२

(८) अमित ज्ञान ..................................नित उन्मन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



शब्दार्थ—अमित=अत्यन्य, अग-जग=नश्वर संसार, स्फुरणों=स्फूर्ति कंपन, संभ्रम=हलचल, घवराहट, चक्कर, अंग व्यस्तता=अस्त व्यस्तता, निरलङ्कृता=आभूषण-हींन, कंकण=एक आभूषण, जो कलाई पर पहना जाता है।

शब्दार्थ—यह मानव अनेक युगों से प्रयत्नशील रहा हैं जिसके फल स्वरूप इसने अथाह ज्ञान प्राप्त किया है। इसने अपने खाली भंडार को सर्वदा अनेक प्रकार के रत्नों से भरा है। इस नश्वर संसार की समस्त स्फूर्ति में जहाँ एक प्रकार की घवराहट और भ्रम था और जहाँ सव कुछ अस्तव्यस्त अवस्था में था, वहाँ इस मनुष्य ने सव वस्तुओं के कारण और कार्य पर दृष्टि डाली और आभूषण हीन स्वच्छन्द प्रकृति को भी नियमवद्ध किया, परन्तु इतना करने पर यह रहस्य की खोज करने वाला मानव अगमना सा ही बना रहता है ॥८॥

(९) किन्तु पैठ.......................... का उन्मन मन

शब्दार्थ—पैठ=घुसकर, तिरोहित=विलीन, दैवायत्त=दैव के आधीन; आरोहित=उठना; अंशु=ज्योति; स्फुरणकारी=संचार करने वाला; दीप्त–सक्रिय=प्रकाशवान् तथा क्रियाशील (active); तत्व मूल पदार्थ; अणु=छोटे कण; संघति=मेल; भेदन=प्रथकीकरण।

अर्थ—रहस्यउद्घाटन के लिये आतुर मानव ने जव अधिक गहराई में घुसकर खोजने का प्रयत्न किया तो समस्त नियम आदि एक दम विलीन होगये और फिर यही भावना जाग्रत होने लगी कि सव कुछ ईश्वर के आधीन है। भाव यह है कि ज्यों ज्यों मनुष्य अधिक गहराई में जाने का प्रयत्न करता है त्यों त्यों रहस्य और अधिक वढ़ता ज्ञात होता है और फिर मानव यही कह उठता है कि यह सब ईश्वर की लीला है। मानव ने इस जगत में कुछ ऐसे पदार्थ देखे हैं जो प्रकाश या ज्योति का संचार करते हैं...ऐसे पदार्थों को उसने प्रकाशवान और क्रियाशील पदार्थों की कोटि में रखा है। ये पदार्थ ऐसे हैं कि इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नर्माणकरने वाले अणुओं में सदा परिवर्तन होतारहता है, कभी तो इन अणुओं में अन्य अणुओं का मेल होता रहता है और कभी ये अलग होते रहते हैं। इस एकत्रीकरण और प्रथकीकरण को देखकर अनमने भाव से मानव पूछ उठता है कि ऐसा क्यों होता है ॥९॥

(१०) जिसे कराल… … …यह संश्लथतन !

शब्दार्थ —कराल=भयानक; संघति-भेदन=एकीकरण और प्रथकीकरण; अलेष=नाशरहित; विज्ञानी=ज्ञान धरण करने वाला; याहिच्छक=इस प्रकार स्वयं होने वालीं, पटावरण घन=छाये हुए बादल;

अर्थ—वह कौन सा विशेप अणु है जिसका अन्त भयंकर काल कर सकता है। अणुओं का एकत्रीकरण और प्रथकीकरण क्यों होता है और अणु अविनाशी क्यों होता है—अत्यन्त ज्ञानी मानव इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका है। इस प्रकार स्वयं अणुओं के भेदन का कार्य जो होता रहता है, उसका रहस्य अब तक किसी ने नहीं जाना। कवि कहता है कि फिर आप ही बताइये कि इस प्रकार रहस्य के छाये हुए बादलों को देखकर मानव क्यों न अकुलाये ? यह पंखहीन, दुर्बल मानव नित्य रहस्य उद्घाटन में संलग्न रहता है।

(११) असंतोष है… … …रतजब।

शब्दार्थ—निपट=बिलकुल; क्षुद्र=तुच्छ, छोटे,

अर्थ—यह जगत जो एक स्वप्न के समान है उससे इस मानव को सदैव असंतोष ही रहता हैं, और वह इस जगत की ही क्या शिकायत करे वह स्वयं अपने से ही असंतुष्ट रहता है। यद्यपि वह अनेक ब्रह्मांडों के समस्त तत्वों का निरीक्षण करने यहाँ आया है परन्तु उस की इन्द्रियों के गुण इस निरीक्षण में विशेष सहायता नहीं पहुँचाते और मानव को यह अनुभव होता है कि ये इन्द्रियों के साधन बिलकुल अधूरे ही हैं। ये विज्ञान और ज्ञान प्राप्त करने के साधन बिल्कुल ही तुच्छ और असंगत हैं। जब इस प्रकार की अवस्था है तो फिर रहस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उद्घाटन में संलग्न यह मनुष्य क्यों न खिन्न हो अर्थात इसका खिन्न होना स्वाभाविक ही है ॥११॥

(१२) श्रोत, चक्षु... ... ....है प्रतिक्षण।

शब्दार्थ—श्रोत=कान; चक्षु=आँख; रसना=जिह्वा; सपर्शन=छूना, इन्द्रियों के आधार पर त्वचा; घ्राण=सूँघना; इन्द्रियों के आधार पर नासिका, अचरज=आश्चर्य;

पृष्ट १३।

संनिधान=समीप।

अर्थ—पच इन्द्रियों—(कान, आंख, रसना, त्वचा और नासिका) तथा मन के सम्मिलन से ही मानव की जगत में स्थिति हैं। यही मनुष्य जगत की अनेक उलझने सुलझाता रहता है और नये २ आश्चर्यों की खोज करता रहता है। परन्तु खोज में आगे बढ़ने के साथ साथ मानव नवीन समस्याओं की भी उत्पत्ति करता जाता है। एक प्रश्न के हल होने पर, दूसरा स्वयं समीप उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार सुबह हो या शाम–प्रत्येक समय उसके समक्ष एक नई पहेली तैयार रहती है। इस प्रकार रहस्य उदघाटन में संलग्न मानव प्रति-पल एक न एक उलझन में ही उलझा रहता है।

(१३) जाना है जग................नित उन्मन।

शब्दार्थ— उपकरण = साधन; स्मरण=याद, यथार्थता =वास्तविकता; इन्द्रिय-संवेदन=इन्द्रियों द्वारा की हुई अनुभूति; पूर्वोत्तर =आगे पीछे;

अर्थ—अपने छोटे से साधन अर्थात इन्द्रियों के द्वारा ही मनुष्य ने जगत के स्वरुप का ज्ञान प्राप्त किया है। अपनी स्मरण शक्ति के द्वारा कार्य और कारण की लड़िया पूंथी हैं अर्थात यह ज्ञातकिया है कि प्रत्येक कार्य का क्या कारण है और किन कारणों में कोई कार्य सम्पन्न हो सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि वास्तविकता क्या है? क्या जो इन्द्रियों केद्वारा अनुभूति होती है वही यथार्था है और क्या भूत और भविष्य क

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



घटता क्रम ही क्या कार्य और कारण का सम्बन्ध स्पष्ट करता है—यही प्रश्न मानव हृदय को शताब्दियों से मथ रहे हैं अर्थात मानव हृदय में हल चल उत्पन्न कर रहे हैं। यह रहस्य उदघाटन में संलग्न मानव नित्यों ही दुर्बल शरीर और अनमना सा बना रहता है ॥१६॥

ये इन्द्रियां ....................रत-ज्ञन।

शब्दार्थ—प्रकेतन=आह्वान

अर्थ—क्या ये इन्द्रियां कभी वास्तविकता का परिचय दे सकी हैं ?क्या जो कुछ हम आंखों से देखते हैं वही निश्चय पूर्वक यथार्थ या सत्य है ? जब इन आंखों से इस प्रकृति को देखा तो केवल एकभाई के रूप में यह दिखाई दी। यह एक छल-छाया अर्थात पल पल नव रुप धारण करने वाली छाया के रूप में केवल एक परछाई सी दिखाई पड़ती है। और यदि हम दृश्य (दिखाई देने वाली वस्तु) को ही सत्य मानते हैं तो स्वप्न भी वास्तविकता का पूर्ण आह्वान है---यही विचार युगों से रहस्य उद्घाटन में सलंग्न मानव कर रहा है।।१४।।

(१८) नयनों ने . ...... न निवारण

शब्दार्थ—घनत्व=घनता;तारल्य; तरलता;गहन=गंभीर;घन +Positive;ऋण=-Negative(धन और ऋण विद्युत के प्रकार हैं) ,प्लवन=तैरना

अर्थ—नेत्र वस्तुओं के घनत्व को देखते हैं और उसकी तरलता को भी परन्तु मानव ने अपनी खोजों के द्वारा गहन ज्ञान प्राप्त कर यह सिद्ध कर दिया कि घनता और तरलता के भेद कुछ नहीं है और अब इस रूप में देखा जाता है जगत ऋण और घनविद्युत कणों से निर्मित है ये विद्युत धारण करने वाली मणियां या वस्तुएँ ऐसी हैं कि जिनका यथार्थ स्वरूप बताना भी कठिन हैं और अकारण ही इस प्रकार की मणियों का प्लवन होता रहना है अर्थात इनके विद्युत कणों का तैरना या कणों का एक साथ चक्कर लगा ने का कार्य होता रहता है। जब इसप्रकार के रहस्य मानव ने खोज लिये हैं तो फिर कार्य और कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



के सम्बन्ध पर आधारित तर्कों का मानव हृदय में कैसे स्थान बना रह सकता है अर्थात इनका निवारण होना तो स्वाभाविक ही है॥१५॥

(१६) यों इन्द्रियगण ... .......अपने मन।

शब्दार्थ—इन्द्रिय-गण=इन्द्रियों का समूह; परिगणना=गिनती; संश्लेषण=मिलना, सम्बन्ध स्थापित करना; हिय=हृदय; क्रमित=क्रम पूर्वक रखना;

पृष्ट—१३४

भू ग्रस्त=संसार ग्रस्त; भौतिकता=सांसारिकता; उत्क्रमण=क्रम का उलंघन;

अर्थ—इस प्रकार इन्द्रियों के द्वारा जगत की वस्तुओं की गिनती करना या जगती की वस्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण और मन के द्वारा घटनाओं में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना आदि सब हृदय को नहीं जंचे अर्थात जगत के समस्त रूप और विशेषतायें हृदय को विशेष प्रभावित न कर सके। परन्तु मानव भी क्या करे? क्या वह हृदय में हार मान कर चुप चाप बैठ जाय। वह अपनी साँसारिक रचनाओं को किस प्रकार क्रम बद्ध करे। जब वह स्वयं संसार के जाल में जकड़ा हुआ है फिर किस प्रकार सांसारिकता के क्रमों का उल्लंघन कर सकता है। यही अपने मन में मानव, जो रहस्य उद्घाटन में संलग्न है, नित्य प्रति सोचता रहता है॥१६॥

(१७) क्या है स्रोत..............शान्ति घर।

शब्दार्थ—स्रोत=उद्गम; निकलने का स्थान; ज्ञानाराधन=ज्ञान की उपासना; प्रवचन=भाषण;

अर्थ—जब मानव ने अपने आप से यह प्रश्न किया कि ज्ञान का उद्गम या मूल स्थान कौनसा है, तो एक ध्वनि सुनाई दी कि ज्ञान इन्द्रियों के कंपन से उत्पन्न होता है अर्थात ज्ञान इन्द्रियों के क्रियाशील होने पर उत्पन्न होता है। परन्तु भौतिक-विज्ञान का ज्ञाता बोल उठा कि इन्द्रियां तो ज्ञान प्राप्त करने की साधन मात्र हैं और इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



बिना मानव ज्ञान की उपासना नहीं कर सकता, भाव यह है कि ज्ञान प्राप्त करने की साधना इन्द्रियों की सहायता से ही सफल होती हैं। यद्यपि मानव ने इस प्रकार के अपने ही स्वरूप से सम्बन्धित अनेक तर्क युक्त विचार सुने, परन्तु तत्व-उदघाटन में संलग्न मानव को सन्तोष और शान्ति रूपी धन प्राप्त न हुआ ।। १७ ।।

(१८) क्या है ये............रत जन ।

शब्दार्थ — अतुल = बहुत; नोदना = प्रेरणा; उपकरण समुच्चय = साधनों का समूह;

अर्थ — यह अथाह ज्ञान जिससे प्राप्त हुआ है क्या वे ही इन्द्रियां हैं और मानव व्याकुल होकर पुकार उठा कि क्या केवल इन्द्रियां साधन ही हैं तो यह बताओ कि इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा कैसे प्राप्त हुई। और यदि ये इन्द्रियां साधनों का समूह मात्र ही हैं तो इन इन्द्रियों का धारण करने वाला मानव ज्ञान से अनुराग रखने वाला कैसे बन गया। और क्या ज्ञान और विज्ञान का उदय केवल इन्द्रियों की अनुभूति के आधार पर ही होता है? ये सब प्रश्न रहस्य उदघाटन में संलग्न, अशिथिल सा मानव बार बार पूछ रहा है ॥१८॥

(१९) आदि मनुज ··· ··· ·· जन उन्मन ।

शब्दार्थ — सदन लालिता = गृह को सुशोभित करने वाली; वह्नि = अग्नि; आदि = प्रारम्भिक; स्पन्दन = कंपन; अभौतिक — भौतिकता से रहित।

अर्थः — प्रारम्भिक मानव ने लपट का निरीक्षण कर गृह को सुशोभित करने वाली अग्नि को बनाया और वह कौन सी प्रेरणा थी जिसने अग्नि को पालने का आदेश दिया। प्रारम्भिक मानव में पशुओं को देखा और उन्हें अपने वश में किया, वह कौन सी प्रेरणा थी जिसने मानव से कहा कि तुम इन पशुओं के स्वामी बन जाओ। अतः वह जो प्रारम्भ काल से ही प्रेरणा मानव हृदय में निवास करती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आई है क्या यह भी इन्द्रियों का कम्पन मात्र ही है या सांसारिकता से रहित ज्ञान है—यही अन्मना सा मानव पूछता है ॥१६॥

(२०) अपने को ·· ···· ··· संश्लथ तन।

शब्दार्थ—उपकरण समुच्चय=साधनों का समूह; भूत संघ= पंचभूत या तत्वों का सम्मिलन; सांग=अंग सहित, उपकरण संयुत= साधनों से युक्त; अनंग=अंग रहितः प्राप्तव्य=प्राप्त करने योग्य,

अर्थ—प्राणवान मानव अपने को केवल साधनों का समूह मात्र ही कैसे मान ले जब विचार और मनन करने की अमर निशानी अर्थात आत्मा को उसने धारण किया है। मानव बराबर यह घोषणा करता है कि मैं केवल पंच तत्वों का सम्मिलन ही नहीं हूँ, मैं तो अंग सहित या शरीर धारण करने वाला, साधनों से युक्त हूँ। परंतु यह घोषणा करते हुए भी मानव यह अनुभव करता है कि वह नित्य अंग रहित अर्थात अनित्य है; नश्वर है। अतः यह लघु प्राणी मानव अपने को नित्य अर्थात अमर बनाने के प्राप्त करने योग्य लक्ष्य की ओर चला जा रहा है। यह दुर्बल शरीर और पंखहीन मानव रहस्य उदघाटन में ही संलग्न है।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न १ 'नवीनधारा के प्रथम उत्पार्थन के कवियों में नवीन जी का प्रमुख स्थान है'—इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

## उत्तर

'नवीन जी' का स्थान नवीन धारा के तृतीय उत्थान काल में आता है अतः 'प्रथम उत्थान काल में उनका प्रमुख स्थान है'—ऐसा कहना असंगत है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रथम उत्थान काल का समय सम्वत १९२५ से १९५४ तक है और नवीन जी का जन्म सम्वत १९५४ विक्रमी में हुआ है। अतः यह प्रश्न असँगत है।

प्रश्न—२. नवीन जी राष्ट्र कवि क्यों माने जाते हैं? सोदाहरण उत्तर दीजिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## उत्तर

श्री बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' कांग्रेसी नेता हैं। कांग्रेस के सदस्य होने के कारण राष्ट्रीय विचार धारा से आपका ओत प्रोत होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि आपने रोमांटिक भावों को अपनी कविता में आध्यात्मिक रूप देने का भी प्रयास किया हैं परन्तु आपकी राष्ट्रीय भावना ने आपको दूसरी ओर ही खींच लिया। राष्ट्री चेतना में आपकी कविताओं ने विशेष योग दिया है। देश में तीव्र होते हुए वर्ग संघर्ष, मजदूर आन्दोलन और प्रगति वादी विचार धारा से प्रभावित एवं मर्माहत हृदय से आपने जो काव्य रचना की, वह उन्हें राष्ट्र कवि की उपाधि से विभूति करने में समर्थ हुई है।

विप्लव गान' नाम की आपकी कविता राष्ट्रोत्थान की प्रबल भावना की परिचायक हैं—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आए॥
प्राणों के लाले पड़ जाएं, त्राहि त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए॥

भारत की दुर्दशा का चित्रण 'जूटे पत्ते' नामक कविता में करता हुआ कवि इतनाक्षुब्ध हो जाता है कि वह 'जग पति' का भी टेंटुआ घोटने की सोचता है—

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को।
उस दिन सोचा क्यों न लगादुं आज आग इस दुनियां भर को॥
यह भी सोचा क्यों ना टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगपति का।
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का॥

इस प्रकार नवीन जी के आहत हृदय के भाव स्पष्ट है, जो राष्ट्र की दयनीय अवस्था को देखकर जाग्रत हो गये हैं। आपने अपनी कविताओं द्वारा देश वासिओं की स्वतन्त्रता की वेदी पर बलिदान होने के लिये प्रोत्साहित किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रश्न ३—पठित सामग्री के आधार पर नवीन जी की काव्य साधना पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

प्रस्तुत कविता 'रहस्य उदघाटन' के आधार पर नवीन जी की काव्य साधना का जो परिचय मिलता है; वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपकी यह कविता भावना और कला दोनों दृष्टियों से ही उच्चकोटि की है। आपकी भावुकता ने मानव हृदय की उच्चाकांक्षाओं की सहज स्वरूप प्रस्तुत करने के पूर्ण सफलता प्राप्त की है। मानव ने जगत के रहस्य मय स्वरूप का उद्घाटन करने के लिये क्या नहीं किया? अर्थात उसने सब कुछ किया हैं परन्तु फिर भी—

एक प्रश्न सुलझा कि दूसरा उसके संविधान आता है,
सांझ सवेरे रहती ही है सम्मुख एक पहेली नूतन
यह रहस्य उद्घाटन रत जन उलझन में उलझा है प्रतिक्षण!

नवीन जी का यह चित्रण कितना स्वाभाविक है? जगत के रहस्यों का कोई अन्त नहीं है एक के खोजने में दूसरा प्रस्तुत हो जाता हैं इसी भाव का सुन्दर चित्रण उपर्युक्त पंक्तियों में बड़ी कुशलता के साथ किया गया हैं।

कुछ वैज्ञानिक तथ्यों का भी सजीव चित्रण आपकी इस कविता में मिलता है। जैसे—

अब देखा कि जगत है केवल धन और ऋण विद्युत्कणिका मय।
औ विद्युन्मणियाँ भी ऐसी जिनका कठिन वास्तविक परिचय॥
ऐसी मणियां, होता रहता जिनका प्लवन बिना ही कारण।
तब फिर कारण कार्य तर्क का जन हिय से हो क्यों न निवारण॥

इन पंक्तियों में विज्ञान की नवीनतम खोजों के आधार पर जगत को धन और ऋण विद्युत कणों से युक्त बताया गया है। वैज्ञानिक तथ्य का काव्यत्मक स्वरूप प्रस्तुत करने में नवीन जी को पूर्ण सफलता मिली हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


आपकी दार्शनिक विचार धारा का भी दर्शन यत्र तत्र होता है

मनुज कर रहा है घोषित यों, अरे नहीं हूँ भूत संघ में।
मैं हूँ साँग उपकरण संयुत, पर फिर भी हूँ नित अनंग में॥
इसी नित्य प्राप्तव्य ध्येय की ओर जा रहा है यह लघु जन।
यह रहस्य उदघाटन रत जन, पंख हीन यह, यह संश्लथ तन॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवीन जी ने भावनाओं का काव्यात्मक चित्रण किया है। आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। आपकी भाषा में कला का विशेष आग्रह नहीं है। सरल और सुबोध शैली में आप ने भावों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। परन्तु कहीं २ पर भावनाये गूढ़ होने के कारण भाषा शैली भी गूढ़ हो गई है, जैसे—

अपनी भौतिकता को कैसे करे क्रमित यह बेचारा सा।
भूत ग्रस्त है जो वह कैसे भौतिकता का करे उत्क्रमण॥

प्रश्न—४. गुप्त जी और नवीन जी दोनों राष्ट्रकवि हैं—पर दोनों एक नहीं हैं—इस कथन की सप्रमाण पुष्टि कीजिये।

## उत्तर

श्री मैथली शरण गुप्त और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन दोनों राष्ट्र कवि हैं परन्तु दोनों एक नहीं हैं—यह कथन पूर्णतः सत्य है। कारण यह है कि गुप्त जी प्रतिनिधि कवि हैं। गुप्तजी ने राष्ट्र की प्रत्येक समस्या कर विचार किया है। अछूतोद्धार, नारी जाति की दुर्दशा; किसानों, श्रम जीवियों के साथ सहानुभूति, हिन्दू मुस्लिम एकता, सर्वं धर्मों के प्रति पूज्य भावना आदि आदि विषयों का विशद स्वरूप गुप्तजी के काव्य में मिलता है। इस प्रकार राष्ट्र के समस्त अंगों पर पुष्ट विचारधारा के आधार पर गुप्तजी ने रचना करके राष्ट्र-कवि का महान् आसन प्राप्त किया है। गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना का पूर्ण अध्ययन करने के लिये देखिये 'श्री मैथली शरण गुप्त'—आलोचनात्मक प्रश्न के अन्तर गत प्रश्न—५ का उत्तर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इस के विपरीत श्री नवीन जी का स्वरूप गुप्तजी से भिन्न ही मिलता है। राष्ट्रीय भावाम्रों से श्रोत श्रोत होते हुए भी नवीन जी ने गुप्त जी का अनुसरण न करके एक दूसरा ही मार्ग अपनाया है। नवीन जी ने शोषक साम्राज्यवाद के विरूद्ध राजनीतिक आन्दोलन, किसान आन्दोलन, मजदूर आन्दालन आदि अपनी कविता द्वारा प्रतिध्वनित किये। नवीन जी में प्रगतिवाद का विशेष आग्रह है।

प्रश्न—५. प्रस्तुत काव्य में नवीन जी ने किस विचार को प्रधानता दी है और 'रहस्य उद्घाटन' शीर्षक से उसका क्या सम्बन्ध ? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

## उत्तर

प्रस्तुत काव्य 'रहस्य उदघाटन' में श्री नवीन जी न इस विचार धारा की प्रधानता दी है कि मानव सदैव से जगत के अनेक रहस्यों को ज्ञात करने में प्रयत्नशील रहा हैं परन्तु वह ज्यों ज्यों ग्रुत्थियों को सुलझाता हैं, नवीन ग्रुत्थियां सामने आती जाती हैं। मानव की जिज्ञासा सदैव आगे बढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने की रही है इसी कारण वह किसी न किसी अन्वेषण और अनुसंधान में रत रहता है। यही विचार धारा पूर्व रूप से इमे काव्य में पल्लवित हुई है। प्रमाण रूप में निम्न पक्तियां प्रस्तुत हैं—

'श्रोत, चक्षु, रसना, स्पर्शन, मन घ्राण केवल यह मानव।
सुलझा रहा उलझने जग की, खोज रहा है अचरज नव नव।
किन्तु साथ ही नयी समस्या मानों उपजाता जाता है।
एक प्रश्न सुलझा कि दूसरा उसके संविधान आता है,
सांझ सवेरे रहती है, सम्मुख एक पहेली नूतन।
यह रहस्य उद्घाटन रत जन, उलझन में उलझा है प्रतिक्षण

इस प्रकार यह मानव नित्य नवीन समस्या का हल करते, हुए इस विचार धारा पहुंचा है कि मानव केवल पंच भूत से बना हुआ ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नहीं है उसके अन्दर चिन्तन और विचार करने की शक्ति है और वह आत्मा को धारण करता है। परन्तु फिर भी मानव यह अनुभव करता हैं कि वह पंच भूतों से बना होकर भी अंग रहित है—

मैं हूँ सांग उपकरण संयुत, पर फिर भी हूं नित आनग मैं,
इसी नित्य प्रासव्य ध्येय की ओर जा रहा है यह लघु जन।

अंग रहित से कवि का तात्पर्य जीवन की नश्वरता है। अतः अपने को नश्वर समझ यह मानव इसे अमर बनाने के प्राप्त करने योग लक्ष्य की ओर बढ़ा चला जा रहा है परन्तु यह लक्ष्य रहस्य के आवरण में छिपा हुआ है। इसी रहस्य को समझने में यह दुर्बल मानव रत है—इसी विचार धारा को लेकर नवीन जी ने इस काव्य की रचना की है, अतः इसका शीर्षक 'रहस्य उद्घाटन' समुचित ही है।

प्रश्न ६ पठित सामग्री के आधार पर नवीन जी की भाषा एवं शैली की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

प्रस्तुत पठित सामग्री 'रहस्य उद्घाटन' के आधार पर हम नवीन जी की भाषा शैली के बारे में निम्नलिखित विचार धारा व्यक्त करते हैं।

नवीन जी की भाषा शुध्द खड़ी बोली है आपने यद्यपि सरल भाषा और सुबोध शैली को अपनाया है परन्तु 'रहस्य उद्घाटन' शीर्षक कविता में आपकी भाषा संस्कृत की क्लिष्ट शब्दावली का यत्र तत्र व्यवहार करने में संकोच शील नहीं हुई है-जैसे—

नित देशाटन सतत परिव्रजन, सतत चलन, दिग्भ्रमण क्षण २,
सतत अतन्दित निमिष गणन यह, दिक्काल संकलन क्षण क्षण।
यही रहा है मानव का क्रम, यही नियति का है रेखांकन;
यह रहस्य उद्घाटन रत जन, कर कर भ्रमण हुआ संश्लथ तन॥

यहीं पर समास शैली के भी दर्शन होते हैं। आपकी शैली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की सरलता तो सर्वत्र स्पष्ट ही है। वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विचार धारा को सरल शब्दों में व्यक्त करना आपकी शैली की विशेषता है—

नयनों ने घनत्व देखा थो, नयनों ने तारल्य निहारा,
पर, मानव के गहन ज्ञान ने यह सब मिटाया सारा।
अब देखा कि जगत केवल है धन और ऋण विद्युत्कणिका मय;
औ' विद्युन्मणियां भी ऐसी जिनका कठिन वास्तविक परिचय।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आपकी शैली सरल और शुद्ध हिन्दी है जिसमें संस्कृत का पुट भी यत्र तत्र मिलता है।

प्रश्न—७. 'नवीन जी की रचनाओं में कवित्व है, कलाकारिता का प्रयास नहीं है'—इस मत की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

नवीन जी की रचनाओं में कवित्व है—इस कथन के मानने में तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये क्यों कि बिना कवित्व शक्ति के कोई कवि के आसन को सुशोभित नहीं कर सकता है। 'रहस्य उद्घाटन' में आपने जिस विचार धारा को प्रस्तुत किया है वह नीरस है आध्यात्मिकता और दार्शनिकता के किनारों को स्पर्श करने वाली है, परन्तु उसे काव्यमय स्वरूप देकर उसमें सरसता का सँचार करके नवीन जी ने अपनी कवित्व शक्ति का भर पूर परिचय दिया हैं। आपकी प्रारम्भिक पक्तियां ही आपके कल्पना शील कवि हृदय की सूचक हैं—

पंख नोच पटका मानव को किसी खिलाड़ी ने धरती पर,
पर होती रहती है उसके, अन्तर में पंखों की फर फर,
पृथ्वी माता ने पहनाई उसे बेड़ियां आकर्षण की।
और किसी ने सुलगा दी है, हिय में चिनगी संघर्षण की॥

अतः उनकी कवित्व शक्ति किसी से छिपी नहीं परन्तु हाँ यह स्पष्ट हैं कि वे कलाकार बनने का प्रयास नहीं करते वे कलाकारिकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



के पोषक, अलंकार, कल्पना, रस आदि को घसीट कर अपने काव्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न नहीं करते। इसी लिये श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ ने अपनी प्रारम्भिक भूमिका में लिखा है—

'उनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है, पर उसमें कला का आग्रह नहीं है'। आपकी कविता में यथार्थता की अधिकता है। यथार्थ का पल्ला पकड़ने का कारण भी, उनमें कलाकारिकता के प्रयास का अभाव मिलता है।

कुछ परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये—

(१) क्या जाने कितनी.............. संश्लथ तन।

(देखों 'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या ३)

(२) मानव की झोली............... क्षण क्षण उन्मन।

(देखो 'रहस्य उदघाटन' पद संख्या ४)

(३) किन्तु पैंठ गहरे...................उन्मन मन।

(देखो रहस्य उद्घाटन' पद संख्या ९।

(४) असंतोष है...................उद्घाटन' रत जन।

(देखो 'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या ११)

(५) श्रोत चक्षु.................... हे प्रतिक्षण।

(देखो 'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या १२)

(६) जाना है जगरूप.................यह नित उन्मन।

(देखो 'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या १३)

(७) यों इन्द्रिय-गण........ .........अपने मन।

(देखो 'रहस्य उदघाटन' पद संख्या १६)

(८) आदि मनुज ......................जन उन्मन।

(देखो'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या १९)

(९) अपने को उपकरण....................संश्लथ तन।

(देखो 'रहस्य उद्घाटन' पद संख्या २०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



# पन्द्रह, सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला'

पृष्ट—१३

**श्री सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला'—**

परिचय—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म महिषादल (मेदनी पुर बंगाल) में सम्वत् १९५२ में हुआ। महिषादल स्टेट में आपके पिता श्री राम सहाय जी एक उच्च पद पर कार्य करते थे और राजा साहब की उन पर विशेष कृपा थी फलतः बालक सूर्यकान्त की शिक्षा का प्रबन्ध राजकुमारों की तरह राज्य की ओर से ही हुआ। बचपन से ही आपको कुश्ती लड़ने और घुड़सवारी का शौक था हिन्दी में आने से पूर्व आप बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, बचपन से ही कविता की ओर आपकी रुचि थी इसका आपकी पहली कविता 'जुही की कली' हैं जो १६ वर्ष की अवस्थाप्रमाण में लिखी गयी थी परन्तु आपकी सर्व श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है।

आपका विवाह १३ वर्ष की आयु में हो गया था परन्तु २१ वर्ष की अवस्था में पत्नी की असामयिक मृत्यु से 'निराला' जी को महान व्यथा हुई। आपका साहित्यिक जीवन वास्तव में सन १९२३ से प्रारम्भ होता है जब आपने 'मतवाला' पत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया।

रचनायें—निराला जी सर्वतो मुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति है। निम्न लिखित रचनाओं से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जयगा।

काव्य—(१) अनामिका (२) परिमल (३) गीतिका (४) तुलसी दास, (५) कुकुरमत्ता (६) अणिमा (७) बेला (८) नये पत्ते (९) अपरा

उपन्यास—(१) अप्सरा (२) अलका (३) प्रभावती (४) निरुपमा (५) चोटी की पकड़ (६) काले कारनामे

कहानी संग्रह—(१) लिली (२) चतुरी चमार (३) सुकुल की बी (४) सखी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


रेखा चित्र—कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा

निबन्ध—'चाबुक' प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिभा

समालोचना—रवीन्द्र-कविता-कानन

साहित्य में स्थान—छायावाद और रहस्यवाद की धारा में निराला जी का स्थान अत्यन्त उच्च है। आपकी रचनाओं पर बंग साहित्य और उनके दर्शन पर स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों का विशेष प्रभाव है। आप मानवीय व्यापारों और प्रकृति के चित्र उतारने में अत्यन्त पटु है। काव्य के रूप को आपकी दो प्रमुख देन हैं। (१) स्वच्छन्द छंद (२) संगींत-परता। आपने काव्य को संगीत के समीप लाने का सुन्दर प्रयत्न किया है। निराला जी ने अपनी सर्वतो मुखी प्रतिभा हिन्दी साहित्य के सब अंगों को पुष्ट किया है। आप हिन्दी साहित्य के उच्च महारथी हैं और हिन्दी की शक्ति हैं।

## टीका

पृष्ट १३८

भर देते हो—

बार बार प्रिय ·············भर देते हो।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=व्यथित; पुलकित=आनन्दित; अंतर—हृदय; कर कंज—कर कमल; सिक्त धरा—भीगी हुई पृथ्वी; लोल—चचल; शिशिर कण—ओस बूंद।

संकेत—प्रिय सूर्य रूप ईश्वर का गुण गान है जो जीवन में नव उत्साह और प्रभात भरने वाला है।

अर्थ—हे प्रियतम! तुम अपनी दया की किरणों से स्पर्श कर बार बार मेरे व्यथित हृदय को आनन्द मग्न कर देते हो। मेरे हृदय में, हे देव! तुम सर्वदा आकर व्यथा के बोझ को हलका कर जाते हो। जीवन को अन्धकार मय पाकर जब मैं रोने लगता हूँ और मेरा दन पृथ्वी के अंचल को प्रति पल भिगोने लगता है और वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आंसू जब कुसुमों के कपोल अर्थात् पंखुड़ियों पर चंचल ओस बूंद के रूप में प्रकट होने लगते हैं तब तुम बार बार अपने कर कमलों को बढ़ा कर इन आंसुओं को पोंछकर जीवन में नव प्रभात भर देते हो।

विशेष—रात्रि में अंधकार होता है और जब ओस की बूंदें पुष्प पंखुड़ियों पर पडने लगती हैं तो प्रातः सूर्य आकर उस अन्धकार का नाश करता है और उन ओस कणों को भी सुखा देता हैं—यही आधार लेकर कवि अपनी भावना प्रकट करता है।

मातृ बन्दना—

नर जीवन के ..................................कर दृढ़तर।

शब्दार्थ—श्रम संचित—परिश्रम से प्राप्त, खर—तेज; शर—बाण।

अर्थ—मातृ भूमि की बन्दना करता हुआ कवि कहता है—हे मां! तेरे चरणों पर मैं समस्त मानव स्वार्थों की बलि चढ़ा दूं और जीवन के समस्त परिश्रम से प्राप्त फल भी तुझे भेंट कर दूं। और मैं जीवन के रथ पर चढ़कर सदैव मृत्यु की ओर बढ़ता हुआ काल के तीव्र बाणों के प्रहार भी सह सकूं मुझे ऐसा दृढ़ और शक्तिवान बना दे,

पृष्ट १३७

जागे.......................................फल।

शब्दार्थ—अश्रु जल धौत—आंसुओं के जल से धुली हुई; फल—व्यतीत समय।

अर्थ—हे माँ! मेरे हृदय में अश्रुजल से धुली हुई तेरी निर्मल मूर्ति सदैव जाग्रत रहे और मैं व्यतीत समय से बल प्राप्त करके तेरे चरणों पर अपने इस जन्म के समस्त परिश्रम से प्राप्त फल को न्यौछावर कर दूं—(ऐसी मुझे शक्ति दे)।

बाधायें आये.................श्रम सिंचित फल।

शब्दार्थ—अपलक—निश्चल; उर—हृदय, शतदल—कमल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



क्लेद—पसीना; श्रेय—अच्छापन, सदाचार। श्रमसिंचित फल—परिश्रम से प्राप्त फल।

अर्थ—मां! जब अनेक बाधाओं से तेरा शरीर व्याप्त हो और मैं तेरे आश्रय चाहने वाले नेत्रों को देखूं, उस समय तू अपने सजल नेत्रों से मुझे अपने हृदय कमल पर निस्चल रूप में ही देखना। मैं तुझे अपने पसीने से युक्त शरीर देकर अटल रूप से मुक्त करने का प्रयत्न करूंगा और तेरे चरणों पर ही अपने समस्त सदाचार या शुभ कर्म जो परिश्रम से प्राप्त फल के रूप में मेरे पास हैं, न्योछावर कर दूंगा।

विधवा—

यह इष्टदेव ........................................विधवा है।

शब्दार्थ—इष्टदेव—प्रिय देवता, क्रूर काल तांडव—कठोर काल के प्रचंड नृत्य, दलित—कुचली हुई।

संकेत—भारत की विधवा का अत्यन्त करुण चित्र निराला जी ने इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है।

अर्थ—वह भारतवर्ष की ही विधवा है जो प्रिय देवता के मन्दिर की साक्षात उपासना सी प्रतीत होती है, जो दीपक की लौ के समान शान्त रहती है अर्थात जो दुखों की अग्नि में जलती रहने पर भी मौन रहती है और अपने भावों में ही सर्वदा मग्न रहती है। जिस प्रकार कठोर काल अपने प्रचंड नृत्य की स्मृति रेखा छोड़ जाता है उसी प्रकार वह भी इस पृथ्वी पर अवशेष है और जिस प्रकार टूटे हुए वृक्ष की बेल उससे छूट कर दीनावस्था में पैर से कुचली जाती है इस प्रकार भारत की विधवा अपने पति की मृत्यु पर उससे छूट कर समाज द्वारा दलित होती रहती है।

षडऋतुओं का........................स्वप्न अथवा है।

शब्दार्थ—षड—छः; कुसुमित—फूलों से हरा भरा, नीरव पद संचार—चुपचाप चलना, व्यथा—दुख।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—षड ऋतुएं जिस प्रकार अभिनव शृंगार करती हैं, उसने भी एक दिन ऐसा शृंगार किया था और जीवन के हरे भरे वन में चुपचाप चरण रखे थे और एक अमर कल्पना के लोक में स्वतन्त्र रंगरेलियाँ की थीं, परन्तु वह सब आज दुख की एक भूली हुई सी कहानी है अथवा उसके जीवन का एक स्वप्न है जो बीत चुका है।

उसके मधु सुहाग·································करुणा की धारा।

शब्दार्थ—मधु-सुहाग—मधुर सौभाग्य, जीवन-धन—प्रियतम, पृष्ट १३८.

लक्ष्य—उद्देश्य;

अर्थ—उसने अपना मधुर सौभाग्य के दर्पण में केवल एक बार अपने जीवन सर्वस्व प्रियतम का प्रतिबिम्ब देखा था। परन्तु वही प्रियतम; जो उसके बलहीन हाथों का एक सहारा था, जीवन का एकमात्र प्रिय लक्ष्य था और प्रकाशित करने वाला ध्रुव तारा था, दूर होकर और एक अनन्त पथ पर जाकर वहीं से बराबर करुणा की धारा इसके दुखी जीवन मे प्रवाहित कर रहा है।

हे करुणा रस······ ·····हा हा कार

शब्दार्थ—पुलकित — रोमांचित, मन-मधुकर—मनरूपी भौंरा; पांखे—पंख; मृदु—कोमल; गुन्जार—आवाज

अर्थ—इस विधवा के नयन सर्वदा करुणा रस से परिपूर्ण रहते हैं और देखने पर ज्ञात होता हैं कि इसके मन रूपी भौरे के पंख सर्वदा भीगे रहते हैं अर्थात् इसकी आंखों में करुणा भरे आंसू भरे रहते हैं और इसका मन भी सदैव व्यथित बना रहता है। और कोमल करुणा रस के वेग के साथ निकलने पर जो मन रूपी भंवरा गुन्जार करता है या अन्तःकरण से जो आवाज निकलती है वह और कुछ नहीं उसके हृदय की हा हा कार ध्वनि ही होती है।

उस करुणा की··········ठहर ठहर कर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



शब्दार्थ— सरिता= नदी;पुलिन= किनारा; छिन्न=फटा हुआ; त्रस्त= भयभीत; चितवन=दृष्टि; अस्फुट—अस्पष्ट; निश्चल —शान्त,

अर्थ—वह करुणा की नदी जो विधवा के जीवन में सतत रूप से बहती है, उसी के मलीन किनारे पर अपने जीवन की छोटी सी टूटी हुई कुटिया की शान्ती को और भी अधिक बढ़ा कर, वह अपने फटे हुए भीगे अंचल में अपने मन के भावों को दुख के कारण शुष्क ओठों को और अपनी भयभीत दृष्टि को दुनियां की दृष्टि से छिपाये रहती है। इसी अवस्था में वह अस्पष्ट स्वर में रोती भी है। उसके रुदन स्वर को इस समय धैर्यवान आकाश सुनता है शान्त वायु सुनती है और जीवन में बहने वाली करुणा की नदी की लहरें उठ उठ कर सुनती हैं।

कौन उसको ..........सर गया।

शब्दार्थ—छोर—किनारा; पल्लव—पत्ते

अर्थ—ऐसा कौन है ? जो भारत की विधवा को धीरज प्रदान कर सकता है और उसके दुख के भार को अपने ऊपर ले सकता है उसका दुख ही ऐसा है जिसका कोई अंत नहीं है। ईश्वर ! यह उसके ऊपर कैसा निष्करुण और घोर अत्याचार है। क्या तुमने कभी उसके नयनों के आंसू पोंछे भी है या तुम सबको दुख ही देते रहते हो ! नव पल्लव के समान विधवा की आँखों से ओस बूंद वत् जो आंसू झर गये हैं उन्हीं के कारण भारत का सर अथवा मान कम हो गया है। और वह वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुआ है।

### खँडहर के प्रति

खँडहर ! खड़े... .... ... गाते हुए ?

शब्दार्थ—पुरातन=प्राचीन काल; विस्मृति=भूल;

अर्थ—हे खँड़हर। तुम आज भी अपने उस विचित्र और अज्ञात प्राचीन स्वरूप के अवशेष दीन हीन रूप में खड़े हो। जिसको हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भूल चुके हैं और भूल कर सुख की नींद सो चुके हैं, फिर हे दयालु! तुम बार बार अपने करुणा भरे गीतों को गा गा कर हमें जगा जगा कर उस पुरानी स्मृति को क्यों उठाते हो ?

पृष्ट—१३६

पवन-संचरण... ...तरसते हुए ?

**शब्दार्थ**—पवन-संचरण=वायु का चलना ; परिमल=सुगन्धि; विभूत-रज=ऐश्वर्य की धूल; जरा-जीर्ण=वृद्धावस्था में जर्जर -निर्निमेष= एक टक।

**अर्थ**—वायु के चलने के साथ क्या तुम पराग की सुगन्धि के समान पुरातन काल के ऐश्वर्य की धूल अथवा पुरातन-पुरुष के आशीर्वाद सब देशों को भेजते हो ? तुम्हारा वास्तविक उद्देश्य क्या है ? यह संसार तो बन्धनमें बंधा हुआ होने पर भी बन्धन मुक्त है, क्या तुम उपदेश देकर स्वयं नर नारियों के संसारिक बंधन ढ़ीले करते रहते हो या तुम अपनी संतानों से एक बूंद पानी भी न पाकर तरसते हुए एक टक नेत्रों से अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हो।

किम्बा, हे यशोराशि .. ..................सुधा-पान ।"

**शब्दार्थ**=किम्बा=अथवा; यशोराशि=यश के समूह अथवा यशस्वी; आर्त भारत=दुखी भारत; जनक=जन्म देने वाला; जैमिनि=एकऋषि; पतञ्जलि=एकऋषि, व्यास=एकऋषि; शैशक विनोद=बचपन के खेल; भीमार्जुन=भीम और अर्जुन; भीष्म=भीष्म पितामह; नरदेव=राजा; तृष्णा=प्यास; गरल=विष; साम-गान=साम्वेद की रचनाओं का गायन।

**अर्थ**—अथवा हे यशस्वी खँडहर। तुम आँसू बहाते हुए यह कहते हो—कि हे दुखी भारत! मैं ही जैमिनि, पतंजलि, व्यास जैसे महान ऋषियों का जन्मदाता हूँ और मेरी ही गोद में राम, कृष्ण, भीम अर्जुन भीष्म पितामह आदि राजाओंने बचपन में क्रीड़ायें की थीं और तेरा मान बढ़ाया था परन्तु आज हे भारत! तुम मुझसे मुँह फेरकर सुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


की लालसा में विष अपना रहे हो। तुम नव सभ्यता की छाया में बसे हुए नये स्वप्न सजा कर उठरहे हो परन्तु तुम वह पुरातन स्वतंत्र जीवन भूल गये, वेदमंत्रों के गायन भूल गये और भूल गये हो वह अमृत पान जो प्राचीन पुरुष करते थे।

पृष्ट १४०

अरसो.............................प्रणाम हैं।

शब्दार्थ—पुरुष-पुराण = प्राचीन पुरुष।

अर्थ—लेखक उस प्राचीन मानवता से युक्त पुरुष से अन्त में प्रार्थना करता है—हे प्राचीन पुरुष! तुम आशीर्वाद की वर्षा करो तुम्हारे चरणों में प्रणाम हैं।

विशेष—यहां पर लेखक की इस रचना में खंडहर जिसको सम्बोधित किया गया है वह पुरातन पुरुष है जो मानवता से युक्त था परन्तु आज मानवता से रहित होकर वह जीर्ण शीर्ण खंडहर मात्र है—उसी के प्रति लेखक ने अपने भाव व्यक्त किये हैं।

भगवान बुद्ध के प्रति—

आज सभ्यता.............................स्वार्थ विचक्षण।

शब्दार्थ—जड़—अज्ञानतासे युक्त, गर्वित—अभिमानी, अम्बर =आकाश, नभयानों =वायुयान, दर्प =अभिमान, विचक्षण =स्पष्ट दिखाई देने वाला।

अर्थ—आज सभ्यता का अज्ञानता के युक्त वैज्ञानिक विकास हो रहा है और अभिमानी संसार विनाश की ओर बढ़ता जा रहा है-यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही है। वैज्ञानिक साधन जिनकी कि हमने खोज की है, वे सुख के लिए मनुष्य के खिलौने से बने हुए हैं और मनुष्य का लक्ष्य आज केवल पैसा या धन ही है। पृथ्वी, आकाश और समुद्रों को रेल, तार; बिजली; वायुयानों से परिपूर्ण करके मानव अभिमान में चूर्ण ह। आज यह स्पष्ट है कि एक वर्ग दूसरे वर्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



से, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से और एक का स्वार्थ दूसरे के स्वार्थ से टक्कर ले रहा है।

हंसते हैं ·· ··· ··· ···विनिर्माण यह।

शब्दार्थ—जड़वादग्रस्त=अज्ञानता से जकड़े हुए; विकृत=कुरूप; अतीत=बीता हुआ समय; अपटु=जो चतुर न हो; वन्य=जंगली, विनिर्माण=विशेष रूप से निर्मित।

अर्थ—प्रेतों के समान आपस में अज्ञानता से जकड़े हुए मानव अपने नेत्र और मुख को विकृत करके यह कहते हैं—कि अतीत तो मानव के लिये बड़ा ही भयंकर था, जहाँ पर संसार के प्राणियों का मन निराशा से युक्त रहता था और हमारे भाई-बन्धु चतुरता और शिक्षा से रहित थे और जंगली थे। आज का सा मुक्त जीवन पहले कहीं नहीं था। यह सब कारण सहित सिद्ध है अर्थात प्रमाण देकर यह सब सिद्ध किया जा सकता है यह आज का विशेष रूप से निर्मित जगत एक स्वप्न है जो आज साकार हुआ है।

वहां बिना कुछ............ तथागत !

शब्दार्थ—जस—समान; सर्वस्थित—सब प्रकार से दृढ़ स्थान; रत—संलग्न; लक्ष्य—उद्देश्य; तथागत—गौतम बुद्ध

संकेत—बुद्ध को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है—

अर्थ—उस समय बिना कुछ कहे, सत्यवाणी के मंदिर के समान अर्थात सत्य की साक्षात् प्रतिमा के समान तुम इस सन्सार में अवतीर्ण हुए थे और आज भी बार बार तुम फिर मानव हृदय में उसी रूप में अवतीर्ण हो रहे हो जैसे हे गौतय बुद्ध ! तुम भोग से विमुख हो कर सब प्रकार से स्थित राज पद और युवराज राजकुमार का पद त्याग कर केवल सत्य के लिये रूढ़िवाद को नष्ट कर कठिन तपस्या में सन्लग्न होकर आपने परम उद्देश्य को प्राप्त हुए थे।

फूटी ज्योति..... ......ज्योति प्रदर्शित।

शब्दार्थ—सम्मिलित—संगठित; तिरोहित—विलीन; संचित—एकत्रित; वंचित—रहित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पृष्ट—१४१

उत्स—स्रोत; पंकिल—मलीन; भौतिक—साँसारिक; अदर्शित—विलीन, छिपना;

अर्थ—हे बुद्ध! तुम्हारे द्वारा इस संसार में ज्ञान की ज्योति फूट पड़ीं और मानव संगठित हो गये और धीरे धीरे उनके हृदय के विरोधी भाव भी विलीन हो गये। भिन्न भिन्न धर्मों में अलग अलग रूप से यह भाव जाग्रत हुआ कि मानव करुणा से रहित न रहना चाहिये अर्थात् मानव हृदय में करुणा का प्रसार आवश्यक है। इसके साथ मनुष्यता रूपी जल के सैकड़ों श्रोत स्वभावत: ही यहां वहां पृथ्वी के सब देशों में उमड़ पड़े अर्थात मनुष्यता जाग पड़ी। हे महान बुद्ध! तुम्हारे ही प्रभाव से छल और शक्ति के मलीन और साँसारिक रूप विलीन हो गये और नवनी ज्ञान की ज्योति चारों ओर दिखाई पड़ने लगी।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न—१.'हिन्दी कविता की बाह्यकला में निराला जी स्वतन्त्रता के सूत्रधार हैं।" अपने शब्दों में इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

उत्तर

हिन्दी कविता की बाह्यकला में निराला जी स्वतन्त्रता के सूत्रधार हैं—यह कथन पूर्णत: सत्य है। कविता के बाह्य स्वरूप परिवर्तन में निराला जी के मुक्त छन्द ने विशेष योग दिया है। इसके कारण निराला जी से बड़ा विरोध भी हुआ और आलोचकों ने उपहास में आपके मुक्त छन्द को रबड़ या केंचुआ छंद कहकर पुकारा। मुक्तछन्द निराला जी की अपनी देन है उसमें न वर्णों की संख्या नियत होती है और न मात्राओं या तुक का ही कोई बन्धन होता है। यद्यपि निराला जी ने अपने मुक्त या अतुकान्त छंद द्वारा कविता की वाह्यकला में स्वतंत्रता का सूत्रपात किया परन्तु उन्होंने लय या संगीतात्मकता को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हाथ से नहीं जाने दिया है। छंद अतुकान्त होने पर भी उन्होंने उसका संगीत से विशेष श्रृंगार किया और उसे गेय बनाकर एक नवीनता का उन्मेष किया।

निराला जी वास्तव में युगान्तरकारी कलाकार हैं। आप सभी दृष्टियों से निराले हैं। उनके भाव, उनकी भाषा, उनकी शैली, उनके छंद सभी हिन्दी कविता में नवीनता और स्वतन्त्रता की गाथा गारहे हैं। आपका भाषा पर महान अधिकार है और आपने हिन्दी को सबसे अधिक नवीन शब्द भेंट किये हैं।

आपके मुक्त छंद का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है इसे पढ़कर यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि हिन्दी कविता का युग युग से चला आता हुआ छंद बद्ध स्वरूप जैसे निराला की शक्तिशाली नवीनता में तिरोहित हो गया हो—

उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का, मौन बढ़ाकर,
अति छिन्न हुए भीगे अचल में मन को—
दुख-रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनियां की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में
दुख सुनता है आकाश धीर—
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर।

उपर्युक्त उदाहरण को पढ़ कर यह स्पष्ट हो जाता है कि आपका अतुकान्त काव्य लय बद्ध भी रहता है। वास्तव में निरालाजी की काव्य धारा ने कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया। श्री सुमित्रा नन्दन पंत के शब्दों में—

छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़ कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि! तेरी कविता धारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मुक्त अबाध अमंद रजत निर्झर–सी निःसृत—
गलित ललित आलोक राशि , चिर अकलुष अविजित ।

प्रश्न २ अतुकान्त छंद की विशेषतायें सोदाहरण बताइये।

## उत्तर

अतुकान्त छंद की विशेषताओं पर प्रकाश डालने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि छंद किसे कहते हैं? मात्राओं एवं वर्णों की नियमित व्यवस्था के अनुकूल संगठित किये हुए उस शब्द समूह को छंद कहते हैं जिसमें एक विशेष लय और गति हो। हिन्दी छंद रचना में चरणान्त में वर्ण समता एवं स्वर समता का रखना एक प्रकार से आवश्यक सा मान लिया गया है यद्यपि यह छंद की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संस्कृत में अतुकाँत कविता होती है। तुकान्त कविता तो एक अलंकार की अनुगामिनी है जिसे 'अन्त्यानुप्रास' कहते हैं। परन्तु अब हिन्दी में अतुकांत कविता होती हैं जो मात्राओं और वर्णों के बन्धन से भी मुक्त होती है; इसे मुक्त छंद बद्ध कविता भी कह सकते हैं—इसकी निम्न विशेषतायें गिना सकते हैं—

(१) जैसा कि नाम से स्पष्ट है अतुकान्त होने के कारण इस में अन्त्यानुप्रास को कोई स्थान नहीं।

(२) इसमें वर्णों की संख्या नियत नहीं होती क्योंकि यह चरण बद्ध नहीं होती। इसमें चरण कितने ही हो सकते हैं।

(३) मात्राओं का कोई बन्धन होता है।

(४) एक लय विशेष का होना आवश्यक रहता है।

उदाहरण के लिए निम्न छंद प्रस्तुत है—

किंवा हे यशोराशि।
कहते हो आँसू बहाते हुए—
"आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनी पतंजलि व्यास ऋषियों का;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम कृष्ण भीमार्जुन भीष्म नरदेवों ने।............."

उपर्युक्त छंद में अन्त्यानुप्रास, मात्रा और वर्णों का कोई बंधन नहीं है। हां, अपनी लय विशेष अवश्य है।

प्रश्न २ 'निराला जी ने हिन्दी काव्य को द्विवेदी युग की बंधी हुई शैली से निकाल कर एक नई दिशा की ओर अग्रसर किया और उसे विविधता प्रदान की।' इस कथन की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

निराला जी साहित्य में नवीनता के संस्थापक हैं। द्विवेदी युग की बंधी हुई शैली से काव्य को मुक्त करने कार्य छायावादी युग में सम्पन्न हुआ इसमें निराला ने भी महान योग दिया— द्विवेदी युग आधुनिक हिन्दी का शिशु काल था उसमें अधिकांश रचनाएं वस्तु प्रधान थी। उसमें कल्पना और सरस भावुकता का अभाव था। शृंगार का साहित्य से बहिष्कार सा हो गया था और इतिवृत्तात्मक शैली को विशेष रुप से अंगीकार किया जा रहा था। इस युग में कवि कुछ बंधे बंधाये आदर्शों और मान्यताओं के भीतर सञ्चरण करता था।

निराला जी ने द्विवेदी युग की इस बँधी हुई परम्परा से हिन्दी कविता को मुक्त किया। आपने हिन्दी काव्य का कई नवीन दृष्टियों से शृंगार किया। छंद, भाषा और भाव सबको आपने नवीनता प्रदान की अब द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता के स्थान पर कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यजंना और शब्द प्रयोग की विचित्रता आदि विविधताओं को लेकर हिन्दी कविता अग्रसर हुई। इस में निराला जी का सहयोग विशेष रुप से उल्लेखनीय है क्यों कि आपने हिन्दी कविता को छंद के बन्धन से भी मुक्त कर दिया मुक्त छंद निराला जी की हिन्दी संसार को नवीनतम देन है। दूसरे निराला जी की रचनाये पौरुष गुण सम्पन्न हैं। निरालाजी ने जो शैली अपनाई है वह ओज गुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पूर्ण है कई कविताओं तीखा व्यंग भी मिलता है लाक्षणिकता, वक्रता, व्वजंकता आदि शैली की विशेषतायें निरालाजी में पाई जाती हैं जो हिन्दी कविताको द्विवेदी युग का प्राचीन शैली से निकाल कर एक नवीन छायावादी युग में लाकर खड़ा कर देती है

निराला जी की नई रचनाओं में प्रगतिवाद के बीच स्पष्टता मिलते हैं 'कुकुरमुत्ता' में कुकुरमुत्ता दीन शोषित वर्ग का और गुलाब शोषक वर्ग का प्रतीक है कुकुरमुत्ता कहता है—

अबे सुन बें गुलाब !
भूल मत गर पाई खुशबू, रगों आब,
खून चूसा खाद का तुने अशिट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा सहाया जाड़ा घाम

इस प्रकार अपने दीन हीन जनता की मूक व्यथा को शब्द बद्ध कर जनता के सामने पहुँचाने का भी प्रयत्न किया है। वास्तव में निराला जी का साहित्यक व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी रहा है अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में आपने द्विवेदी कालीन छंद वन्धन, तुक बन्दी, स्थूल नैतिकता तथा इति वृत्तात्मकता के विरुद्ध आवाज उठाई और आज प्रसाद युग की कल्पना प्रियता, भावतिरेक व्यक्तिवदिता को पीछे छोड़ लोक सुलभ भावनाओं को सरल भाषा में चित्रित करने में व्यस्त हैं।

प्रश्न—४ निरालाजी के काव्य की विशेषतायें बताइये।

## उत्तर

श्री गुलाबराय जी ने निराला की काव्यगत पाँच विशेषतायें गिनाई हैं जो नीचे दी जाती हैं—

(१) निराला जी की प्रतिभा वहुमुखी है और उन्होंने कविता में कई नये प्रयोग किये हैं। मुक्त छंद उनकी विशेष देन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(२) उनका काव्य व्यंग्यात्मक अधिक है और उसमें कवित्व और दार्शनिकता का अपूर्व समन्वय है ।

(३) साधारणतया निराला जी की भाषा ओजमयी और संस्कृत गर्भित है किन्तु उन्होंने उर्दू के शब्दों के प्रयोग में संकोच नहीं किया है उनकी भाषा विषयानुकूल बदली है ।

(४) निरालाजी शब्द चित्र उपस्थित करने में बड़े कुशल हस्त हैं ।

(५) निराला जी की भाषा ओजमयी होते हुई भी संगीतमय है साहित्य और संगीत का उन्होंने बड़ा सुन्दर सम्बन्ध किया हैं ।

प्रश्न—५. 'विधवा' शीर्षक कविता में नारी हृदय की मूक वेदना छिपी हुई है ।' उदाहरण देकर उस मत को पुष्ट कीजिये ।

## उत्तर

'विधवा' शीर्षक कविता में निराला जी ने भारतीय विधवा की करुण जीवन गाथा का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । विधवा के दुखी जीवन का चित्रण करते हुए कवि उस के हृदय में प्रविष्ट सा हुआ दिखाई पड़ता है। विधवा का जीवन ऐसा बन जाता है कि वह प्रवल वेदना सहते हुए भी मूक बनी रहती है। यही मूक वेदना कवि की कविता साकार हो उठी हैं । इस वेदना मय स्थिति में उसकी आंखों से बहता मूक पानी उसके हृदय के हा हा कार को व्यक्त करता है—

हैं करुणा रस से पुलकित इसकी आँखे,
देखा तो भीगीं मन मधुकर की पांखें,
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हा हा कार ।

अबला की जीवन में करुणा रस की धारा सतत प्रवाहित होती रहती है, उसका मूक रुदन स्वर इस करुणा की धारा को सदैव आंदोलित करता रहता है—

दुख-रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनियां की नजरों से दूर बचाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रोती है अस्फुट में स्वर में
दुख सुनता है अकाश धीर,—
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर।

कितनी महान् व्यथा से विधवा का जीवन ओत प्रोत रहता है। उसके दुख को कोई नहीं देखता दस आकाश और शान्त समीर ही उसके दुख को सुनने वाले हैं या फिर उसके जीवन में बहने वाली करुण रस की धारा में उठने वाली लहरें ही ठहर ठहर कर उसका रुदन स्वर सुनती हैं। उपर्युक्त पंतियाँ विधवा की मूक व्यथा को पूर्णतः व्यक्त करती हैं।

प्रश्न—६. निराला जी की भाषा की विशेषतायें बताइये और प्रसाद जी की भाषा से उसकी तुलना कीजिये।

## उत्तर

निराला जी की भाषा संस्कृत गर्भित एवं ओज पूर्ण है परन्तु उन्हों ने उर्दू और फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपकी भाषा कुछ क्लिष्ट भी हो गयी हैं। कुछ आलोचकों ने तो आपकी क्लिष्ट भाषा को देखकर आपको 'आधुनिक केशव' ही कह दिया। आपने हिन्दी भाषा को सबसे अधिक नये शब्द दिये हैं। परन्तु अनेक अप्रचलित शब्दों का प्रयोग ही आपके काव्य को क्लिष्टत्व प्रदान करता है। क्लिष्ट का एक कारण यह भी है कि अनेक स्थानों पर दार्शनिकता ने आपकी भाव धारा को ढक लिया है। परन्तु निरालाजी की बाद की गतिवादी रचनाओं की भाषा अपेक्षाकृत सरल हैं।

निरालाजी की भाषा की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह उनकी कला को चित्रमयता प्रदान करती है। भाषा दुरूह होने पर भी आप जब चित्र आँकते हैं तो उनकी रूप रेखा बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्पष्ट और उनका सौन्दर्य बहुत आकर्षक होता है । 'विधवा' का ही चित्र देखिये—

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजासी
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताडव सी स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

विधवा का कितना सजीव चित्रण है। इस प्रकार के सजीव चित्र प्रस्तुत करना आपकी भाषा की एक बड़ी विशेषता है।

निराला जी की तरह प्रसाद जी भाषा भी संस्कृत गर्भित है, परन्तु प्रसाद जी की भाषा माधुर्य गुण सम्पन्न है जबकि निराला जी की भाषा ओज गुण सम्पन्न। प्रसाद जी की भाषा में विदेशी शब्दों का अभाव मिलता है लेकिन निराला जी ने उर्दू फारसी के चलते शब्दों का प्रयोग किया है। चित्रमयता प्रसाद और निराला दोनों की भाषा शैली की विशेषता है। प्रसाद जी की कल्पना इतनी रंगीन और सजग होता है और भाषा इतनी पुष्ट होती है कि चित्र ज्यों का त्यों उतर आता है निराला जी का चित्रण ऊपर देखा था, प्रसाद की चित्रमयता का भी एक उदाहरण देखिये—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
    मैं शालीनता सिखाती हूँ
मतवाली सुन्दरता पग में
    नूपुर सी लिपट मनाती हूँ

लज्जा का कैसा सुन्दर चित्रण प्रसाद की भाषाने प्रस्तुत किया है।

जैसा कि ऊपर बतायागया है कि प्रसाद जी की भाषा सरस है तो निराला जी की ओज गुण सम्पन्न। निराला जी की भाषा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



संगीतात्मकता उनकी ओजपूर्ण भाषा को स्वयं सरसता प्रदान करती है।

प्रश्न ७—निरालाजी की रचनाओं में कवित्व की अपेक्षा कलाकारिता अधिक है।'—शैली की दृष्टि से इस कथन की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

निरालाजी में कवित्व शक्ति तो है ही परन्तु उससे अधिक उनमें अपने कवित्व को कलामय बनाने की शक्ति है। निराला जी एक उच्च कोटि के कलाकार हैं। आपके भाव तो मौलिक और निराले रहते ही हैं, जो उनकी कवित्व शक्ति के परिचायक हैं परन्तु साथ साथ आप का निर्माण कौशल भी अद्वितीय है। किसी भी रोमांटिक कवि में विषय—वस्तु का ऐसा दृढ़ नियंत्रण न मिलेगा जैसा निराला में। डा० राम विलास शर्मा लिखते हैं — वह (निराला) स्थापत्य-कला-विशारद की तरह काव्य रूप को तराशते और गढ़ते हैं। आपकी 'जूही की कली' कविता को ही लीजिये—इसमें जूही के स्नेह-स्वप्नमग्न होने से लेकर 'खिली खेल रंग, प्यारे संग' की परिणीत तक का पूरा चित्र है। निरालाजी की कला स्वच्छंदता की हामी है यही कारण है कि आपने मुक्त या अतुकान्त छंद का प्रयोग किया। प्रबल विरोध होने पर भी आपने मुक्त छंद का प्रयोग किया। आपकी कलाकारिता के गौरव का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि आपके मुक्त छंद के प्रति किये हुए विरोध जल्दी ही शान्त हो गये। आपने काव्य और संगीत कला का समन्वय किया। आपके छंद अतुकान्त होने पर भी संगीत मय हैं।

निराला जी की शैली चित्रोपम है: सजीव चित्र प्रस्तुत करने की निराला जी की प्रवृत्ति उनकी कलाकारिता की पूर्ण परिचायक है। इस विषय का प्रश्न-६ के उत्तर में प्रकाश हो चुका है।

**परीक्षा की दृष्टि से कुछ उपयोगी स्थल—**

१ बाधायें आयें...................... ............. श्रम सिंचित फल।

(देखो 'मातृ वन्दना' पृष्ठ १०७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



स्पष्ट और उनका सौन्दर्य बहुत आकर्षक होता है। 'विधवा' का ही चित्र देखिये—

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजासी
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताडव सी स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

विधवा का कितना सजीव चित्रण है। इस प्रकार के सजीव चित्र प्रस्तुत करना आपकी भाषा की एक बड़ी विशेषता है।

निराला जी की तरह प्रसाद जी भाषा भी संस्कृत गर्भित है, परन्तु प्रसाद जी की भाषा माधुर्य गुण सम्पन्न है जबकि निराला जी की भाषा ओज गुण सम्पन्न। प्रसाद जी की भाषा में विदेशी शब्दों का अभाव मिलता है लेकिन निराला जी ने उर्दू फारसी के चलते शब्दों का प्रयोग किया है। चित्रमयता प्रसाद और निराला दोनों की भाषा शैली की विशेषता है। प्रसाद जी की कल्पना इतनी रंगीन और सजग होता है और भाषा इतनी पुष्ट होती है कि चित्र ज्यों का त्यों उतर आता है निराला जी का चित्रण ऊपर देखा था, प्रसाद की चित्रमयता का भी एक उदाहरण देखिये—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूं
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ

लज्जा का कैसा सुन्दर चित्रण प्रसाद की भाषाने प्रस्तुत किया है।

जैसा कि ऊपर बतायागया है कि प्रसाद जी की भाषा सरस है तो निराला जी की ओज गुण सम्पन्न। निराला जी की भाषा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



संगीतात्मकता उनकी ओजपूर्ण भाषा को स्वयं सरसता प्रदान करती है।

प्रश्न ७—निरालाजी की रचनाओं में कवित्व की अपेक्षा कलाकारिता अधिक है।'—शैली की दृष्टि से इस कथन की आलोचना कीजिये।

## उत्तर

निरालाजी में कवित्व शक्ति तो है ही परन्तु उससे अधिक उनमें अपने कवित्व को कलामय बनाने की शक्ति है। निराला जी एक उच्च कोटि के कलाकार हैं। आपके भाव तो मौलिक और निराले रहते ही हैं, जो उनकी कवित्व शक्ति के परिचायक हैं परन्तु साथ साथ आप का निर्माण कौशल भी अद्वितीय है। किसी भी रोमांटिक कवि में विषय—वस्तु का ऐसा दृढ़ नियंत्रण न मिलेगा जैसा निराला में। डा० राम विलास शर्मा लिखते हैं — वह (निराला) स्थापत्य-कला-विशारद की तरह काव्य रूप को तराशते और गढ़ते हैं। आपकी 'जूही की कली' कविता को ही लीजिये—इसमें जूही के स्नेह-स्वप्नमग्न होने से लेकर 'खली खेल रंग, प्यारे संग' की परिणीत तक का पूरा चित्र है। निरालाजी की कला स्वच्छंदता की हामी है यही कारण है कि आपने मुक्त या अतुकान्त छंद का प्रयोग किया। प्रबल विरोध होने पर भी आपने मुक्त छंद का प्रयोग किया। आपकी कलाकारिता के गौरव का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि आपके मुक्त छंद के प्रति किये हुए विरोध जल्दी ही शान्त हो गये। आपने काव्य और संगीत कला का समन्वय किया। आपके छंद अतुकान्त होने पर भी संगीत मय हैं।

निराला जी की शैली चित्रोपम है। सजीव चित्र प्रस्तुत करने की निराला जी की प्रवृत्ति उनकी कलाकारिता की पूर्ण परिचायक है। इस विषय का प्रश्न-६ के उत्तर में प्रकाश हो चुका है।

### परीक्षा की दृष्टि से कुछ उपयोगी स्थल—

१ बाधायें आवें......................... श्रम सिंचित फल।

(देखो 'मातृ वन्दना' पृष्ट १०७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



षड ऋतुओं का.................................करुणा की धारा।

(देखो 'विधवा' पृष्ट १३७-१३८)

३ हैं करुणा रस से पुलकित.........................ठहर ठहर कर।

(देखो 'विधवा' पृष्ट-१३८)

४ किम्वा हे यशोराशि.........................सुधा पान।

(देखो 'खंडहर के प्रति' पृष्ट-१३६)

५ वहाँ बिना कुछ कहे.........................लक्ष्य को, तथागत।

(देखो 'भगवान बुद्ध के प्रति' पृष्ट-१४०

६ फूटी ज्योति विश्व.........................ज्योति प्रदर्शित।

(देखो 'भगवान बुद्ध के प्रति' पृष्ट-१४०-१४१

# सोलहः सुमित्रानन्दन पन्त

पृष्ट १४२

श्री सुमित्रा नन्दन पन्त—

परिचय—पंत जी का जन्म सं० १६५८ विक्रमी में अल्मोड़े में हुआ। बचपन में ही आपको अपनी स्नेहमयी माता की गोद से वंचित होना पड़ा। आपने बी० ए० तक अध्ययन किया परन्तु आप परीक्षा में न बैठ सके। पर्वतीय प्रदेश में जन्म लेने के कारण स्वभावतः ही आपका अनुराग प्रकृति पर हो गया अत. आपकी रचनाओं में प्रकृति प्रेम का प्राधान्य रहा है संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी साहित्य के आप अच्छे ज्ञाता हैं आज कल आप प्रयाग आकाशवाणी में एक उच्च पद पर कार्य कर रहे हैं।

साहित्यिक रचनायें—

कविता—'पल्लव'; वीणा, ग्रन्थि; गुंजन, युगान्त..युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण-धूलि, मधुज्वाल, उत्तरा।

नाटक—ज्योत्सना,

कहानियां—पांच कहानियां,

कविता सम्बन्धी आपके सब ग्रंथ स्फुट कविताओं के सकलन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हैं आपकी प्रारम्भिक रचनाये 'पल्लव' और 'वीणा' में संगृहीत हैं इनमें रहस्य भावना, प्रकृति सौन्दर्य की अनुभूति मिलती हैं आपकी अंतिम रचनाये 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तर' आदि में अरविंद दर्शन से प्रभावित रचनायें हैं।

साहित्य में स्थान—पंत छायावाद के प्रमुख कवि हैं इसके साथ प्रकृति का चित्रण करने वाले कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है प्रकृति के अति सूक्ष्म स्पदन और कार्यों को अपनी तीव्र दृष्टि से देख कर आप एक कुशल चित्रकार की भांति उनके भावचित्र कोमल शब्दों में प्रस्तुत कर देते हैं यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में आप 'प्रकृति के सुकुमार कवि' के नाम से प्रसिद्ध हैं आप प्रगतिवादी के रूपमें भी काव्य जगतमें आये और अरविन्द दर्शन को हिन्दी साहित्य प्रस्तुत करने का श्रेय भी आपको ही जाता है अरविंद की ऊर्ध्व-चेतना ही विश्व में कल्याण कारी प्रवृति को जगा सकेगी-यही आज कवि का संदेश है इस प्रकार एक नवीन विचार धारा को सफलता के साथ हिन्दी साहित्य में प्रस्तुत करने के कारण आपका मान और स्थान और भी अधिक ऊंचा हो जाता है वैसे आप छायावाद के प्रवर्त्तक में अग्रणी माने ही जाते हैं।

## टीका

### पृष्ठ १४२

वायु के प्रति—

प्राण ! तुम ........ ..............तरुपात

शब्दार्थ—लघु=छोटा, गात=शरीर, निःसंग=अकेला, अप्सरी=परी; अधर=ओठ, चलपद=पत्ता, भ्रू-भंग=भौंटेढ़ी होना थिरकना=नाचना, तृण=घास,

अर्थ—कवि वायु को प्राण! शब्द से सम्बोधन करता हुआ कहता है—हे जीवन रूप वायु। तुम अत्यन्त सूक्ष्म शरीर हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



तुम नीचे आकाश की लताओं के भवन में छिपी रहती हो। तुम सदैव शांत रहती हो और अकेली रहते पर भी नवीन स्वरूप वाली प्रतीत होती हो। तुम सम्पूर्ण शोभा की भी शोभा हो अर्थात् महान् शोभा वाली हो और साथ २ एक शोभा हीन परी सी अज्ञात भी हो।

तुम्हारे ओठ मर्मर ध्वनि करते रहते हैं और शरीर के अग रोमाँचित रहते हैं, तुम्हारी चंचल लहरे पत्तों को चूमती फिरती है, तुम्हारी वक्र दृष्टि संकेत से कलियां चटकने लगती हैं या खिलने लगती हैं और वृक्षों के पत्ते तथा घास आदि नृत्य करने लगते हैं,

हरित द्युति........................................अज्ञात :

शब्दार्थ—द्युति = शोभा ; कंचु = चोली ; कच = केश ; हृत = छीना हुआ ; निभृत = अटल ; शतदल = कमल ; अहर्निशि = दिन रात ; अदृश्य = जो दिखाई न दे ; अस्पृश्य = जो छुआ न जा सके।

अर्थ—यह हरी भरी शोभा ही तुम्हारा चंचल अंचल का छोर है तुम्हारी शोभा जल से आद्र होकर शोभित है, नीलाकाश तुम्हारी चोली है और तुम गौर वर्ण की हो। जगत में छाई धूल (चूर्ण) तुम्हारी केशराशि हैं और सुगन्धित झकोरे तुम्हारी स्वाँस की गति के सूचक हैं। तुम्हारे पखों में सायंकाल और प्रातःकाल फड़फड़ाते रहतेहैं ।

संसार से छीना हुआ अर्थात् दूर कमलचक्रों में तुम्हारा अटल निवास है तुम अज्ञात, अदृश्य और स्पर्श में न आने वाली होकर भी जीवन को हास और विलास मग बनाती रहती हो।

सुख-दुख—

मैं नहीं चाहता........................................अपना मुख।

शब्दार्थ—चिर—सुख = चिरकाल तक सुख या सदैव सुख ;

अर्थ— कवि जीवन सुख और दुख दोनों की झाँकी देखना चाहता है अतः वह कहता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मैं सदैव सुख की अभिलाषा नहीं करता और न मैं यही चाहता हूँ कि जीवन सदैव दुखमय ही बना रहे। मेरी तो यह इच्छा है कि सुख और दुख की आँख मिचौनी के बीच जीवन का उद्घाटन हो अर्थात् कभी सुख और कभी दुख—इन दोनों के बीच ही जीवन का प्रकाशन होता रहे।

पृष्ठ—१४३

सुख दुख ........................................—हो घन।

शब्दार्थ—परि पूरन=परिपूर्ण, भरा हुआ; घन=बादल; शशि=चन्द्रमा।

अर्थ—यह जीवन सुख और दुख दोनों के मधुर सम्मिलन से परिपूर्ण रहे जिस प्रकार कभी चन्द्रमा बादलोंमें छिप जाताहै और कभी चन्द्रमा के प्रकाश में बादल विलीन हो जाते है इसी प्रकार कभी दुख की छाया में सुख छिप जाय और कभी सुख छाया में दुख।

विशेष—यहाँ दुख को बादल रूप और सुख को शशि रूप माना है।

जग पीड़ित........—.................. सुख दुख से।

शब्दार्थ—पीड़ित=दुखी;

अर्थ—यह संसार अत्यन्त सुख से भी पीड़ित रहता है और अत्यन्त दुख से भी पीड़ित रहता है अतः इस संसार में मनुष्यों का वर्गीकरण सुख दुख के आधार पर होना चाहिये। भाव यह है कि जगत में कुछ मानव पहले सुख और दुख और कुछ पहले दुख और सुख की अनुभूति करें।

अविरत दुख.......................................जगजीवन।

शब्दार्थ—अविरत=निरन्तर; उत्पीड़न=कष्ट देना; दिवा=दिन।

अर्थ—जीवन में निरन्तर दुख की अनुभूति भी कष्ट दायक है और निरन्तर सुख की अनुभूति भी, अतः दुख और सुख की रात्री और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



दिन में जगत का जीवन सोता जागता रहना चाहिये। भाव यह है कि जिस प्रकार रात और दिन जीवन में सुलाने और जगाने वाले आते हैं इसी प्रकार दुख और सुख भी आते रहने चाहिये।

यह साँझ-उषा......................मानव जीवन का।

शब्दार्थ—साँझ=सन्ध्या; आनन=मुख।

अर्थ—अन्त में कवि जीवन का वास्तविक रूप क्या होना चाहिये—इसकी अभिव्यक्ति करता हुआ कहता है—

यह जीवन सन्ध्या और उषा का आँगन है अर्थात इसमें दुख रूपी सन्ध्या और सुख रूपी उषा दोनों का आगमन होना चाहिये और इस प्रकार एक से वियोग और दूसरे से मिलन का सदैव आलिंगन होता रहना चाहिए। संसार में मानव जीवन का वास्तविक स्वरूप है कि वह सदैव हँसी और आँसुओं से परिपूर्ण बना रहे।

विशेष—प्रसादजी ने भी 'आँसू' नामक काव्य में यही भाव व्यक्त किया है—

मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का।
सुख-दुख दोनों नाचेंगे,
है खेल आँख का मन का॥

एक और स्थान पर लिखा है—

बिना दुख के सब सुख निस्सार।
बिना आँसू के जीवन भार॥

**नौका विहार—**

शान्त स्निग्ध ......................मृदुल लहर।

शब्दार्थ—स्निग्ध=स्नेह पूर्ण; ज्योत्सना=चांदनी; अपलक=शांत; अनंत=आकाश; नीरव=शांत; सैकत शय्या=बालू की शय्या; दुग्ध धवल=दूध सी सफेद, तन्वंगी=दुर्बल, विरल=क्षीण श्रांत क्लांत=थकी हुई, मृदु करतल=कोमल हथेलियां, कुन्तल=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



केश, तार तरल=झीना झीना तारों से चंचल, नीलाम्बर=नीला आकाश; वर्तुल=चक्कर खाती हुई।

संकेत—ग्रीष्म ऋतु में रात्रि के समय नौका बिहार का वर्णन कवि करता है।

अर्थ—चारों ओर शांत और स्नेहपूर्ण चाँदनी छिटकी हुई है आकाश भी शांत है और पृथ्वी पर भी नीरवता छाई हुई है। दूध के समान श्वेत बालू की शय्या पर ग्रीष्म के ताप से क्षीण एवं पतली दुबली गंगा अत्यंत थकी और शांत भाव से लेटी हुई है। यहां गंगा एक तपस्विनी बालिका सी प्रतीत होती है। चन्द्रमा के मुख के समान उसकी कोमल हथेलियां दीप्तमान हैं अर्थात गंगा की हथेलियां जो वास्तव में उसके तट हैं चांदनी से प्रकाशित हैं; गंगा के वक्ष स्थल पर लहरों के रूप में उसके बाल लहरा रहे हैं और उसके गोरे २ अंगों पर बार २ कम्पित होता हुआ सुन्दर एवं चंचल झीने झीने अंचल सा तारों से युक्त नीला आकाश लहरा रहा है। भाव यह है कि नीले आकाश का प्रतिबिम्ब गंगा के जल में पड़ रहा है वही उसके अंचल के रूप में प्रतीत होता है। कोमल कोमल चक्कर खाती हुई लहरें चन्द्रमा की रेशम के समान कोमल आभा से युक्त होकर सिमटी हुई सी ऐसी प्रतीत होती हैं मानो गंगा की साड़ी की सिकुड़न हों।

पृष्ठ १४८

चांदनी रात का ·· ······ · ··········सघन।

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र, सिकता=बालू, सस्मित सीपी=चमकती हुई सीपी, तरणि=नाव निश्चल=शांत, रजत पुलिन=चांदी की तरह चमकते तट, कालाकांकर=एक स्थान, प्रमन=आनन्द मग्न, निर्भर=सम्पूर्ण।

अर्थ—चान्दनी रात का पहला पहर था कि हम शीघ्र ही नाव लेकर गंगा में बिहार के लिये चल दिये। तट पर बिखरी बालू पर चांदनी का प्रकाश ऐसा बिखर रहा था जैसे कि उज्जवल सीप पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मोती की चांदनी चमकती है। ऐसे सुन्दर समय में हमने पाल चढ़ा दिए और लंगर उठा लिया। अब अत्यन्त कोमल और मंद गति से तैरती हुई हमारी नाव ऐसी प्रतीत होती थी मानो कि हंसनी अपने पाल रूपी परों को खोलकर तैर रही हो। स्थिर जल के निर्मल दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर चांदी सदृश सम्पूर्ण रेतीले किनारे एक क्षण के लिये दुगने ऊँचे प्रतीत होते हैं (प्रतिविम्ब के ऊपर का वास्तविक भाग तथा पानी में नीचे का प्रतिविम्ब दोनों मिलकर दुगने ऊँचे लगना स्वाभाविक ही हैं) काला कॉकर का राजभवन भी चिन्ता रहित होकर आनंद मग्न जल में सोया हुआ लगता है और उसके पलकों में महान वैभव का स्वप्न दिखाई पड़ता है—भाव यह है कि काला कांकर के राजभवन का प्रतिबिम्ब जल में उसके समस्त वैभव के साथ प्रतिविम्बित हो रहा है।

नौका से उठती...... ......................सा रुक रुक।

शब्दार्थ—विस्फारित=खुले हुए; तारक दल=ताराओं के समूह, अन्तस्तल=हृदय, अन्तप्रदेश; अविरल=निरंतर; शुक्र=एक तारा; कल=सुन्दर; रुपहरे=चांदी के, कच=बाल; तिर्यक=टेढ़ा; मुग्धा=नवयौवना बाला जिसमें लज्जा का भाव अधिक होता है।

अर्थ—नौका के चलने से गंगा का जल आन्दोलित होने लगता था अतः उस जल में प्रतिविम्बित आकाश देखने पर ऐसा प्रतीत होता था। मानों कि गगन आदि से अत तक कम्पित हो गया हो, और ताराओं के समूह आँखें फाड़ फाड़ कर जल के अन्तप्रदेश को प्रकाशित करते हुए कुछ खोज रहे हों, इन तारा रूपी छोटे छोटे चंचल दीपों को निरंतर अपने अंचल की ओट में किये हुए लहरें प्रत्येक क्षण उनसे आँख मिचौनी खेलती फिरती हैं अर्थात नौका के चलने से तरंगित लहरों में तारा रूपी दीपों का प्रतिविम्ब कभी दिखाई पड़ता है तो कभी छिप जाता है; मानो वह आंख मिचौनी खेल रहे हों सामने शुक्र तारे की झिलमिलाती आभा जल में परी के समान तैरती दिखाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पड़ती है और वह कभी चांदी की लहरों रूपी बालों में छिप भी जाती है दशमी का अपूर्ण चन्दमा लहरों में ऐसा प्रतिबिम्वत हो रहा है मानो कि कोई मुग्धा रुक रुक कर अपना तिरछा मुख घूंघट में से दिखा रही हो,

आ पहुँची चपला ............ ......को विलोक;

शब्दार्थ—चपला=चंचल नाव, कगार=किनारा, दूरस्थ= दूर पर स्थित, कृश=दुर्बल,

पृष्ठ १४५

विटप माल=वृक्षों की माला, भ्रू रेखा=भौं, अराल=टेढ़ी अपलक=निर्निमेष, उर्मिल=लहरों से पूर्ण, प्रतीप—उलटा. कोक—चकवा।

अर्थ— अब हमारी चंचल नाव बीच धार में पहुँच गयी है और चांदनी से प्रकाशित किनारे अब दिखाई नहीं देते। दूर पर स्थित दोनों किनारे दो बांहोंकी तरह प्रतीत होतेहैं जो गँगा की दुर्बल धारा से निर्मित कोमल शरीर का आलिंगन करने के लिये अधीर दिखाई पड़ते हैं

अति दूरी पर क्षितिजके पास वृक्षों की पंक्ति टेढ़ी भौंहों जैसी प्रतीत होती है और नीला आकाश अपने तारा रूपी विशाल नेत्रों से निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ मालूम पडता हैं गंगा की धाराके बीचमें स्थित एक द्वीप ऐसा लगता था, जैसे कोई शिशु अपनी माता के वक्ष पर सोया हो। यह द्वीप धारा के प्रवाह को उल्टा लौटा रहा था वह कौन पक्षी हैं ? क्या यह व्याकुल चकवा तो नहीं है जोजल में अपने प्रतिबिम्ब को ही चकवी समझ कर अपने विरह शोक को दूर करने के लिये उड़ रहा है।

पतवार घुमा.............सहोत्साह

शब्दार्थ—प्रतनु=हलकी; चल करतल=चंचल हाथ; मुक्ता-फल=मोती फेन स्फार=बहुत से झाग; रल मल=मिलकर; रश्मियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



=किरण; उडु=तारे फेनिल=फेन या झाग युक्त; सहोत्साह=उत्साह के साथ।

अर्थ—पतवार घुमाने पर हल्की नाव धार के विपरीत घूम गई अर्थात अब हम लौटने लगे। अब नाव डांड़ों की चँचल हथेलियां फैलाकर बूंदों के मोती तथा विपुल झाग भर भर कर जल में तारों के हार बिखराने लगी। चंचल किरणें चांदी के सांपों की तरह परस्पर मिलकर नाचती है और टेढ़ी सीधी रेखाओं सी ज्ञात पड़ती हैं। लहरों की लताओं में शत शत चन्द्रमा और झिलमिलाते तारे फूलों की तरह फेन युक्त जल में स्थित हैं अब उथला स्थान आ गया अतः हम लग्गी से थाह लेते हुए बड़े उत्साह के साथ किनारे की ओर बढ़े !

ज्यों ज्यों लगती............अमरत्व दान।

शब्दार्थ—आलोकित= प्रकाशित; शाश्वत=अमर उद्गम =निकलने का स्थान; संगम=मिलन; जगजीवन के कर्णधार= ईश्वर,

अर्थ—कवि कहता है—ज्यों ज्यों नौका किनारे की ओर बढ़ती है त्योंर हृदय में सैकड़ों विचार प्रकाशित होने लगते हैं। अनुभव होने लगता है कि संसार का क्रम भी गंगा की धारा के ही समान है। और जिस प्रकार गंगा में बहने वाला जल चिर काल से अपने उद्गम से निकल रहा है उसी प्रकार मानव जीवन का उद्गम भी अमर है। जिस प्रकार गंगा की गति और उस का समुद्र से संगम अमर हैं उसी प्रकार जीवन की गति और उसका ब्रह्म से मिलन भी शाश्वत है। आकाश में व्याप्त नीलम का विस्तार भी अमर हैं, चन्द्रमा की रूपहली चांदनी अमर है और छोटी छोटी लहरों की क्रीड़ा भी अमर है। जगती की जीवन नौका के खेने वाले हैं ईश्वर ! जन्म और मरण के दोनों किनारों के बीच मानव की जीवन नौका का विहार सनातन है अर्थात मानव जीवन अमर है। कवि कहता हैं कि इस विचार धारा में मैं इतना डूब गया कि मुझे अपनी सत्ता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



भी ज्ञान नहीं रहा । और इस परिणाम पर पहुँच कर कि मानव जीवन की धारा अमर है मुझे अपनी अमरता का बोध हुआ।

पृष्ट—१८६

मानव—

सुन्दर है .. . .. ... ... ...... ... ... .....के रूप रंग।

शब्दार्थ—विहग = पक्षी; मधु-सुषमा = सुन्दर शोभा; निखिल = सम्पूर्ण; वेष्ठित = घिरे हुए; मृदु = कोमल; त्वच = चर्म; प्ररोह = अंकुर; छाया—प्रकाश रात-दिन;।

अर्थ—पक्षी और फूल सुन्दर हैं परन्तु हे मानव! तुम सबसे अधिक सुन्दर हो। तुम सबकी सुन्दर शोभा से बनाये गये हो और तुम समस्त सृष्टि में अद्वितीय हो। तुम्हारा शरीर यौवन की ज्वाला से ढका हुआ है अर्थात् तुम पूर्ण यौवन से पूर्ण हो। तुम्हारी त्वचा कोमल है और तुम्हारे अंग सौन्दर्य के अंकुर से जान पड़ते हैं अर्थात तुम अद्वितीय सुन्दर हो। तुम्हारे शारीरिक अंगो की शोभा पर समस्त प्रकृति रात और दिन के रूप रंग न्योछावर हैं।

धावति कृश ... ... .... नख शिख शोभन

शब्दार्थ—धावित = प्रवाहित, शिराओं = नड़ियों; मदिरा = शराब; रुधिर = रक्त; लावण्य = सुन्दरता; निसर्ग = प्राकृतिक; पृथु = विशाल; उरोज = कुच, वक्ष; सर = सरोवर; प्रलम्ब = लम्बी पीनोरू = पुष्टजंघा; स्कंन्ध = कधा;

अर्थ—हे मानव! तुम्हारी नीली नाड़ियों में मदिरा से भी अधिक नशीली रक्त की धारा प्रवाहित है। तुम्हारी आंखें सुन्दरता के दो लोक जैसी हैं और तुम्हरे स्वर में प्राकृतिक अथवा स्वर्गीय संगीत का सार भरा हुआ है। तुम्हारा हृदय विशाल है, वक्ष इस प्रकार सुशोभित है जैसे सरोवर में सरोज! तुम्हारी शक्ति शाली लम्बी बाहुँए प्रेम पाश के समान हैं। तुम्हारी पुष्ट जंघायें जीवन रूपी वृक्ष के कंधे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



है। तुम्हारे हाथ, पैर, अंगुली, नाखून, शिखा आदि सब सुन्दर है अर्थात तुम नख से लेखर शिख तक शोभनीय हो।

यौवन की मांसल... .... स्वभाव-पूर्ति !

शब्दार्थ — मांसल=पुष्ट ; नव-युग्म=नव-दम्पति ; जीवनोत्सर्ग=जीवन का समर्पण ; आह्लाद=प्रसन्नता ; उद्यम=परिश्रम अजस्र=निरंतर ; असद्-सद्=असत्य और सत्य, विवेक=ज्ञान ; अक्षय=चिरन्तन, भूतियां=गुण, विभूतियां ; अदंभ=उज्ज्वल ; पार्थिव=सांसारिक ;

अर्थ—हे मानव ! तुम यौवन की पुष्ट और स्वस्थ गंध हो अर्थात तुम्हें पुष्ट और स्वस्थ यौवन प्राप्त है। तुम्हारे नव जोड़े में जीनोत्सर्ग की भावना विद्यमान रहती है। तुममें समस्त आनन्द और सम्पूर्ण सौंदर्य व्याप्त है। ओह ! तुम तो प्रथम के मधुर स्वर्ग में विचरने वाले जीव हो। तुम आशा अभिलाषाओं और उच्च आकांक्षाओं से पूर्ण हो, अनवरत परिश्रम करते हो और विघ्नों पर जय पाते हो।

तुम विश्वसनीय हो ! तुमने सत्य और असत्य का समझने का ज्ञान है और दृढ़ श्रद्धा, अमर प्रेम, सहृदयता, त्याग, सहानुभूति आदि उज्जवल गुण या विभूतियां हैं, जो सांसारिक सभ्यता के आधार और स्वर्गीय संस्कृति की सहज पूर्ति करने वाले हैं।

पृष्ठ १४७

मानव का मानव ··· ............... · ···तुम मानव

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास; अन्वेषण=खोज

अर्थ—यहाँ कवि मानव को मानव बने रहने का आदेश देता हुआ कहता है—हे मानव ! तुम्हारे पारस्परिक विश्वास और परिचय पर ही मानवता का विकास आधारित है विज्ञान और ज्ञान की खोज यही है कि सब मानव एक है और सबमें एक ही आत्मा का प्रकाश है तुम्हें ईश्वर का असीम बरदान प्राप्त है क्योंकि तुम सर्व श्रेष्ठ प्राणी हो अतः इस संसार में प्रति पल नये नये उपभोग करो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



तीनों लोकों में तुम्हारे लिये किसी वस्तु की कमी नहीं है यदि तुम मानवता का परित्याग न करो। भाव यह है कि मानवता को खोकर तुम कुछ नहीं पा सकते और मानवता के धारण करने मात्र से तीनों लोकों में तुम्हारे लिये किसी वस्तु की कमी नहीं है।

महात्मा जी के प्रति—

निर्वाणोन्मुख...... ........... लोकोज्वल,

शब्दार्थ—निर्वाणोन्मुख=बुझते हुए, शिखोदय=उदय होने वाली शिखा या लौ; प्लावित=परिपूर्ण, दिगंचल=दिशाओं का अंचल अर्थात दिशायें, अभिभव=पराजय, लोकोज्वल=संसार को उज्जवल करने वाली,

अर्थ—महात्मा गांधी को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए पंत जी कहते हैं—हे महान पुरुष! तुम बुझते हुए आदर्शों के अन्तिम दीपक की प्रज्वलित होने वाली लौ हो अर्थात जो आदर्श आज विश्व भूलता जा रहा है उन आदर्शों को आप प्रकाशित करने वाले हो। इन आदर्शों के प्रकाश से आज समस्त दिशायें परिपूर्ण हो रही हैं। पुराने आदर्शों की स्थापना में पराजय को प्राप्त होना भी आज मानव आत्मा की जय का सूचक है क्योंकि जो आदर्श निर्वाणोन्मुख हैं उन्हें पुनः प्रतिष्ठित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है अतः हे बापू! यद्यपि तुम्हें प्राचीन आदर्शों को प्रतिष्ठित करने में पराजित होना पड़ा परन्तु तुम्हारी पराजय जय से भी अधिक इस संसार को संतत प्रकाशित करने वाली है।

मानव आत्मा.............साधारण

शब्दार्थ—प्रतीक=चिन्ह; विद=ज्ञानी; चिरन्तन=सनातन महत्तर=महान्; विजित=पराजित; वरेण्य=श्रेष्ठ; सिद्ध=सिद्धि प्राप्त करने वाला।

अर्थ—हे बापू! तुम मानव की शुद्ध आत्मा के प्रतीक हो। तुम्हारा स्थान आदर्शों से भी ऊंचा है और तुम अपने उद्देश्यों से भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



महान हो। भाव यह है कि तुम्हारा उद्देश्य तो महान है ही परन्तु तुम उससे भी महान हो। और जितना तुम्हारा यश संसार में छाया हुआ है उससे भी अधिक तुम ज्ञानी हो और तुम्हारे आदर्श तुम्हारे यश से भी सनातन हैं। तुम कोई सिद्धि प्राप्त करने वाले नहीं हो अपितु तुम तो संसार को सम्पन्न बनाने वाले महान साधक हो। हे श्रेष्ठ पुरुष इतना होते हुए भी आज तुम पराजित हो और साधरण जन समूह विजयी है।

युग युग की— — जन अन्तर

शब्दार्थ— शिलान्यास करना=स्थापना करना; भव शुभकर =संसार के लिये कल्याण कारी; पाहन=पत्थर; पदाघात= चरण स्पर्श

अर्थ—हे बापू, तुमने युगों की प्राचीन संस्कृतियों के सार या तत्व को चुन चुन कर एक ऐसी नवीन संस्कृति की स्थापना करनी चाही जो संसार के लिये कल्याण प्रद हो। अनेक साम्राज्यों ने प्राचीन युगों के संचित वैभव या ऐश्वर्य की शिला को पुर्णतः त्याग दिया परन्तु हे बापू! तुम्हारे चरणों का स्पर्श पाकर वही वैभव का शिला पुनः चैतन्य हो गई और इस प्रकार प्राचीन वैभव के प्रकाश में जन समूह का हृदय मोह से मुक्त हो गया।

विशेष—राम के चरण स्पर्श सेजैसे अहिल्या, जो शिला रूप थी सजीव हो उठी थी उसी प्रकार बापू के चरण स्पर्श से प्राचीन ऐश्वर्य जो शिला रूप अचेतन अवस्था में था, चैतन्य पा गया और जन जन ने प्राचीन संस्कृति के स्वरूप को देखा।

दलित देश के .... ... ... . ... ही निष्फल।

शब्दार्थ—दलित=गिरा हुवा; दुर्दम=अदम्य, ध्रुव= अटल, धीर धुरन्धर=धीरज धारण करने वाले,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पृष्ठ—१४८

नखशिख=नख से लेकर शिखा तक, सम्पूर्ण, रूपान्तर=स्वरूप परिरवर्तन, निष्फल=असफल।

अर्थ—हे अटल तथा धैर्य धारण करने वाले बापू! तुम इस गिरे हुए देश भारत के अदम्य नेता हो। तुमने ही अपनी आत्मिक शक्ति के द्वारा इस निर्जीव जाति में जीवन शक्ति डाल दी है। तुम्हारे द्वारा विश्व की सभ्यता का सम्पूर्ण परिवर्तन होना ही था अतः तुम्हारे राम राज्य स्थापित करने का स्वप्न यों ही व्यर्थ नहीं गया।

विकसित व्यक्तिवाद....... ...जर्जर।

शब्दार्थ—व्यक्तिवाद=जिसमें व्यक्तिवाद विशेष को प्रधानता मिलती है; सामन्तकाल=राजाओं का समय; निःसंशय=निश्चय ही; विगत सांस्कृतिक हृदय=संस्कृति को भूला हुआहृदय; जर्जर=दुर्बल

अर्थ—संसार में जो व्यक्ति विशेष का महत्व स्थापित हो गया था उसका तो नाश होना निश्चय ही था क्योंकि राजाओं के समय का विश्व अब केवल अचेतन खंडहर मात्र रह गया था। भाव यह है कि राजाओं के शासन में व्यक्ति(राजा) का अधिक महत्व होता था जिसके फल स्वरूप व्यक्ति मात्र की निरंकुशता से विश्व जर्जरित हो गया था—तो इस प्रकार की अवस्था का विनाश तो निश्चय ही था। हे समस्त भारत के हृदय बापू निश्चय ही आज तुम्हारे कारणइस जगत का संस्कृति को भूला हुआ दुर्बल हृदय चूर्ण चूर्ण हो गया है।

गत संस्कृतियों............रहीं निर्मित।

शब्दार्थ—गत=व्यतीत; नियत=निश्चित; सौध=महल; स्वर्ण-पाश=स्वर्ण के बन्धन अर्थात ऐसे बन्धन जिनका तोड़ना कठिन होता हैं;

अर्थ—वह गुजरी हुई संस्कृतियां, जिनके महल और भवन विभिन्न वर्ग और व्यक्ति को आत्मा को दवा कर स्थिर खड़े थे—उनका नाश तो निश्चय ही था। आज मनुष्य अपने स्वर्ण-वन्धन तोड़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



कर मुक्त हो रहा है और एक जनता तथा मनुष्यता की पोषक संस्कृति का संसार में निर्माण हो रहा है।

किए प्रयोग ........विभव अवलम्बित ।

शब्दार्थ—भावादर्श=भावना और आदर्श; हितकल्याण; अधोमूल—पतित; अस्वस्थ—दीन दुर्बल; वर—सुन्दर;

अर्थ—हे बापू! आपने नीति और सत्य के प्रयोग संसारके मनुष्यों पर किये अर्थात जगत के प्राणी मात्र के साथ नीति और सत्य पर आधारित व्यवहार किया। क्यों कि केवल भावना और आदर्शों के प्रगट करने मात्र से जन समूह का कल्याण नहीं हो सकता, इसके लिये क्रियात्मक प्रयोगों की आवश्यकता है। यह दीन दुर्बल संसार यद्यपि पतन की ओर अग्रसर है परन्तु संस्कृति की सुन्दर शाखायें अब भी इस में लगी हुई हैं। परन्तु संसकृति महान होते हुए भी पतन के मार्ग पर चलने के कारण आज भी जन समूह की वैभवशाली अर्थात महान भावनायें वस्तु वैभव अर्थात सांसारिक पदार्थों के वैभव पर ही आधारित हैं।

वस्तु सत्य का........संकते जाग्रत ।

शब्दार्थ—आवाहन—पुकार; परखे-परीक्षण करके.

अर्थ—हे बापू! यदि तुम जगत में बिना मानव भावों और परिस्थितियों पर विचार किये हुए वास्तविक सत्य की पुकार करते तो सबसे पहले गरीब भारत ही तुम्हारे विरुद्ध हो जाता। मध्यकालीन युग में जिस नीति का अनुसरण किया गया, उसके द्वारा जनता का पोषण और शोषण दोनों बातें ही हुईं। अब वह जनता जिसमें शोषित वर्ग ही अधिक था, वह बिना अपनी भावनाओं के सपनों का परीक्षण किये हुए कैसे जाग्रत हो सकते हैं अर्थात जाग्रति उसी अवस्था में हो सकती है जब की उनकी भावनाओं में सजे सुख और स्वतन्त्रता के सपने साकार होने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



सफल तुम्हारा·········· ··············युगपत।

शब्दार्थ—सत्यान्वेषण=सत्य की खोज, सत्यान्वेषक=सत्य के खोजी, अचिर=क्षणिक, नश्वर, जनगण-तंत्र=प्रजातन्त्र, प्रेषक =भेजने वाले, प्रस्तुत करने वाले, भव रूप=संसार का स्वरूप, युगपत=एक साथ।

अर्थ—हे सत्य की खोज करने वाले मानव! तुम्हारी सत्य की खोज सफल रही। जिस आधार पर धर्म और नीति की आयोजना होती है, वह नश्वर है, दर्शन, मत और शास्त्र नश्वर हैं, और वे जनता की शासन प्रणाली भी नश्वर हैं जिन सबको कि युग की परिस्थितियां भेजती है। मानव के गुण और संसार के स्वरूप और नाम एक साथ ही परिवर्तित होते रहते हैं।

पूर्ण पुरुष······ · ····· ·· ····· चिर पावन।

शब्दार्थ—जगवंद्य=जगत के लिए वंदनीय, मनश्चक्षु=मन की आँख वाले, अपलक=एक टक, श्री चरण=सुन्दर चरण, धरा= पृथ्वी।

अर्थ—हे बापू! तुम पूर्ण पुरुष हो और पूर्ण रुप से उच्चता को प्राप्त मानव हो और जीवन में ही अहिंसा की सिद्धि प्राप्त करने वाले हो। हे जगत के लिये वंदनीय महात्मा। तुमने अपनी साधना से स्वयं को मुक्त करने के साथ जनता को बन्धन मुक्त कर दिया। मन की आँखों वाले आप निर्निमेष दृष्टि से मानव का भविष्य देख रहे हो। सदैव के लिये पवित्र पृथ्वी आज आपके सुन्दर चरणों के स्पर्श से धन्य है।

आलोचनात्मक प्रश्न—

प्रश्न १ हिन्दी काव्य के उत्थान में पंत जी की रचनाओं का क्या महत्व है? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

## उत्तर

श्री सुमित्रानन्दन पंत हिन्दी काव्य की नई धारा के अत्यंत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं आप सन १६१८ के लगभग काव्य क्षेत्र में आये। उस समय नवीन युग की काव्य प्रवृत्तियों को वहन करने के लिये ठीक भाषा और छंद हिन्दी के पास पर्याप्त न थे। पंत जी ने इन दोनों ही क्षेत्रों में अदभुत प्रतिभा का परिचय दिया। आपकी प्रथम कृति 'वीणा' है जिसके गीत रवीन्द्र और विवेकानद जी की विचार धारा से प्रभावित हैं। दूसरी रचना 'ग्रन्थि' है—असफल प्रेम की। पंतजी की पहली प्रौढ़ रचना 'पल्लव है। इसमें 'चित्रमयी भाषा' लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत विधान इत्यादि की विशेषतायें प्रचुर परिणाम में भरी-सी पाई जाती हैं। इस रचना ने हिन्दी में छायावाद के उत्थान में परम योग दिया, क्योंकि 'पल्लव' छायावाद शैली की सफल कृति है। इसमें कल्पना की कोमलता और प्रकृति—सौन्दर्य के भव्य चित्र हैं। छायावादी काव्य के उत्थान में 'पल्लव' का बहुत महत्व है क्योंकि इस काल के कवियों ने प्रकृति को उसके अपने रूप में प्राय: कभी नहीं देखा। पंत ने प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को देखा और चित्रित किया।

युग की धारा के साथ चल कर कवि 'युगान्तर' की घोषणा करता है जिसमें कवि के छायावादी स्वप्नों की समाप्ति हो जाती है। और 'युगवाणी' में कवि ने वर्तमान जीवन के संघर्षों को पहचानने का प्रयत्न किया है। इसमें गाँधीवाद और मार्क्सवाद दोनों का प्रभाव आप पर दिखाई पड़ता है। 'ग्राम्या' आपकी प्रकृतिवादी विचार-धारा को स्पष्ट करती है। यह प्रगतिवादी साहित्य में एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ती है। इसके पश्चात् पंत अरविंद के जीवन दर्शन से प्रभावित होकर अपनी काव्य-धारा को दूसरी ओर मोड़ देते हैं। 'स्वर्ण किरण' स्वर्ण-धूलि, 'उत्तरा' 'रजत शिखर' आदि आपकी रचनायें आपकी आध्यात्मिक विचारधारा को प्रस्तुत करती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पंतजी ने युग की आवाज को पहचान कर काव्य रचना की और साहित्य के उत्थान में हाथ बँटाया। आपने छायावादी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रगतिवादी और अध्यात्मवादी साहित्य की रचना की। छाया वादी और प्रगतिवादी साहित्य में आपका योगदान उत्तम कोटि का है परन्तु आज जिस आध्यात्मवादी धारा में आप बहे जा रहे हैं, उसमें आप एकाकी ही हैं।

प्रश्न—२ 'भावना के क्षेत्र में कल्पना ही पंतजी की कविता की विशेषता और उसके आकर्षण का रहस्य है। इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये।

## उत्तर

पंतजी एक भावुक कलाकार हैं। बच्चन के विचार से पंतजी 'कल्पना के गायक हैं'। अतः हम कह सकते हैं कि कल्पना ही पंतजी की कविता की विशेषता और उसके आकर्षण का रहस्य है। छाया-वादी कवियों में आप सबसे अधिक भावना-प्रवण और कल्पना शील हैं। आपकी 'नौका विहार' कविता आपकी उर्वर कल्पना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। गंगा का काल्पनिक मानवीकरण कितना सुन्दर है—

सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उरु पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर लहराता तार तरल सुन्दर,
चंचल अंचल सा नीलाम्बर

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कल्पना के सूत्र में आपने जो गंगा के स्वरूप पुष्प पिरोकर अद्वितीय माला गूंथी है वह कितनी सुन्दर है—इसका अनुभव प्रत्येक सरस हृदय कर सकता है।

चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को गंगा की लहरों में क्रीड़ा करते हुए देख कर पंत जी ने जो मुग्धा की कल्पना की है, वह कितनी मौलिक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



लहरों के घूंघट से झुक र दुसमी का शशि निज तिर्यङ्क मुख.
दिखलाता मुग्धा सा रुक रुक ।

चन्दमा की चंचल किरणों में आपने चाँदी के सांपों की छवि देखी है—

चांदी के सांपों सी रलमल, नाचती रश्मियाँ जल में चल.
रेखाओं सी खिच तरल सरल ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी लिखते हैं—

"वादल को अनेक नेत्राभिराम रूपों में उन्होंने कल्पना की रंगभूमि पर ले आकर देखा है, जैसे—

फिर परियों के वच्चे से हम सुभग सीप के पंख पसार ।
समुद्र पैरते शुचि ज्योत्सना में पकड़ इन्दु के कर सुकुमार ।।

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कल्पना की रंगभूमि पर वस्तुओं की परख पंत जी की विशेषता है, जो वरबस हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। 'परिवर्तन, कविता में आपने इसी कल्पना के सहारे परिवर्तन के स्वरूप वर्णन में 'साँप, को लेकर जो रूपक बांधा है वह कितना आकर्षक और प्रभावोत्पादक है, इसका निरीक्षण कीजिये—

अहे ! बासुकि सहस्त्र फन,
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर ।
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष: स्थल पर,
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फून्कार भयंकर ।
घुमा रहे ह घनाकार जगती का अम्बर,
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर ।
अखिल विश्व ही विवर,
वक्रकुंडल
दिग्मंडल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अतः स्पष्ट है कि भावना के क्षेत्र में कल्पना ही पंत जी कविता की विशेषता और उसके आकर्षण का रहस्य है।

प्रश्न — ३ जीवन के सुख दुख के सम्बन्ध में पंत जी के क्या विचार हैं ? पाठित सामग्री के आधार पर अपना मत व्यक्त कीजिये

## उत्तर

'सुख दुख' आपके 'गुंजन' काव्य संग्रह की एक प्रसिद्ध कविता है। पंतजी जीवन की पूर्णता सुख दुख के समन्वय में मानते हैं। आपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ठ कह दिया है —

मैं नहीं चाहता चिर—सुख
मैं नहीं चापता चिर—दुख

अर्थात जीवन में न सदैव सुख ही वांछित है न दुख। जीवन का पूर्ण आनन्द लेने के लिये सुख और दुख दोनों का अनुभव आवश्यक है। आपका विचार है कि सदैव जीवन में सुख की अनुभूति भी एक प्रकार का उत्पीड़न ही है —

अविरत दुख है उत्पीड़न
अविरत सुख भी उत्पीड़न

इसी भाव को अन्य प्रकार से स्पष्ट करते हुए आप कहते हैं—

जगपीड़ित रे अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से

इसी लिये पंत जी का विचार है कि जीवन की पूर्णता और उसके आनन्द का रहस्य सुख दुख के समन्वय में निहित है—

सुख दुख के मधुर मिलने से
यह जीवन हो परिपूरन ;
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन!

यहां पर 'शशि' और 'घन' 'सुख' और 'दुख' के प्रतीक हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



**प्रश्न—४. 'मानव' शीर्षक कविता की विचार धारा का सारांश लिखिए।**

## उत्तर

'मानव' शीर्षक कविता में पंतजी ने मानव को सुन्दरतम कृति माना है प्रारम्भ में ही वे कहते हैं

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम।
निर्मित सबकी मधु सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरूपम।

इसी प्रकार मानव को सुन्दरतम कृति बता कर कवि उसके अनेक गुणों का अति रंजित वर्णन करता है परन्तु अंत में वह अपने हृदय की बात खोल कर रख देता है और वही उसकी विचारधारा है जो वह इस कविता के द्वारा प्रस्तुत करना चाहता है ।।कवि के शब्दों में ही उस विचारधारा को नीचे उदधृत किया जाता है—

प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें
उपभोग करो प्रति क्षण नव नव
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव

अर्थात सब प्रकार से सुन्दर और सम्पन्न होते हुए भी मानव के लिये यः आवश्यक है कि वह मानवता का त्याग न करे। यदि मानव मनुष्यता का परित्याग न करे तो उसके लिये संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं है। अतः मानव का सब से बड़ा गुण उसकी मानवता है यदि वह उसको धारण करता हुआ जीवन यापन करता है तो सृष्टि की सुन्दरतम कृति के रूप में जीवन का वास्तविक आनन्द लाभ कर सकता है।

**प्रश्न-५. पंतजी और निराला जी की काव्य-प्रतिभा पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



## उत्तर

पंतजी और निराला जी दोनो छायावादी काल के प्रमुख कवि हैं और आधुनिक युग के स्तम्भ हैं। दोनों में साम्य होते हुए भी भिन्नताए हैं : (१) निरालाजी की प्रतिभा बहुमुखी हैं आपने कविता उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, समालोचना और अनुवाद इन सब काव्य की विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है और एक बृहत साहित्य हिन्दी को प्रदान किया है। परन्तु पंत जी मुख्यतः कवि है यद्यपि कविता के अतिरिक्त आपने एक नाटक ज्योत्सना भी लिखा है परन्तु उसमें आपका कवि रूप ही अधिक सजग रहा है। पाच...ो एक कहानी संग्रह भी है परन्तु इसके आधार पर ही आपकी प्रतिभा को बहुमुखी नहीं कहा जा सकता जबकि निराला जी की काव्य प्रतिभा बहुमुखी है।

(२) मुक्त छंद निराला जी की एक बड़ी देन हैं। अब तो मुक्त छंद का विशेष प्रचलन है। पंत जी ने भी मुक्त छंद में काव्य रचना की है परन्तु इसके हिन्दी जगत मैं लाने का श्रेय निराला जी को ही है।

(३) प्रकृति का सुन्दर चित्रण पंत की कविताओं में मिलता हैं इस कारण ही आपको प्रकृति का सुकुमार 'कवि कहा जाता है। निराला का भी प्रकृति चित्रण अति सजीव हैं परन्तु देश की नैराश्य पूर्ण परिस्थिति से आपका मन प्रकृति के कल्पित जगत से हट कर यथार्थ की ओर उन्मुख हो जाता हैं।

(४)दार्शनिकता निराला और पंत दोनों के काव्य में मिलती हैं। परन्तु दोनों की काव्य प्रतिभा में अन्तर केवल इतना है कि पंतजी प्रेम और जीवन से दर्शन की ओर उन्मुख हुए हैं। परन्तु निराला जी दर्शन को रहस्यात्मक भूमि से प्रगति वाद की लोक भावना की ओर उन्मुख हुए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(५) व्यंग्य का निरालाजी की कविताओं में प्रधान्य है, जैसे जैसे आप प्रगतिवाद के पथ पर अग्रसर होते गये आपका व्यंग्य प्रधान होता गया है, इन कविताओं में न छायावाद की रंगीनता है, न आदर्शवाद की ज्योति और न जड़ कल्पना की उड़ान बल्कि यथार्थ का सजीव चित्रण है। प्रगतिवाद की ओर पंत जी भी उन्मुख हुए, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' इसकी साक्षी हैं, परन्तु यह परिस्थियों की प्रतिक्रिया थी और कवि फिर आत्मा की ओर झुक गया— 'सामाजिक जीवन से कहीं महत अन्तर्मन'।

(६) निराला जी के काव्य में भाषा संस्कृत-गर्भित है पर उसमें उर्दू फारसी के शब्दों का वहिष्कार नहीं है आपके काव्य में ओज अधिक है। पंतजी की भाषा संस्कृत गर्भित है और आपके कोमल एवं मधुर भावों का वहन करने में समर्थ है। लाक्षाणिकता, चित्रमयता, सांकेतिकता और ध्वन्यात्मकता दोनों की भाषा की विशेषतायें हैं।

(७) काव्य की संगीतमयता पंत और निराला दोनों में व्याप्त है।

प्रश्न-६— पठित सामग्री के आधार पर पंतजी की भाषा-शैली की विशेषतायें लिखिये।

## उत्तर

पंतजी की भाषा स्वयं उनके काव्य की एक विशेषता है। आपकी भाषा को चित्र भाषा कहा जा सकता है। आपके शब्द भी चित्रमय और सस्वर हैं। सेव की तरह उनकी रस मधुरिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलकी पड़ती है। आपकी भाषा को परिमार्जित, सस्वर, कोमल और प्रवाह मय कहा जा सकता है। खड़ी बोली को कोमल संगीतमय बनाने का आपको विशेष श्रेय है। श्री गुलाबराय के अनुसार प्रांजलता, संगीतमयता, लाक्षणिकता, चित्रमयता, ध्वन्यात्मकता और सांकेतिकता आपकी भाषा शैली की विशेषताएँ हैं। पंतजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की शैली अलंकार मय है। आपकी समस्त काव्य अलंकृत है। सादृश्य-मूलक अलंकारों को आपने खूब अपनाया है। उपमा और रूपक आपकी कविताओं में मणियों की भांति चमकते हैं। इसके अतिरिक्त उल्लेख, संदेह, अनुप्रास, समासोक्ति के अनेक उदाहरणों से आपका काव्य भरा पड़ा है। मानवीकरण का सफल प्रयोग तो छायावाद की विशेषता है अतः इसके भी अनेक चित्र आपके काव्य में प्राप्त होते हैं। नौका विहार इसका ज्वलंत उदाहरण है, जिसमें 'गंगा को 'तापस बाला' के रूप में कवि ने चित्रित किया है।

पंतजी की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषय के अनुकूल वे माधुर्य और ओज गुण का समावेश अपने काव्य में बड़ी सफलता के साथ काम करते हैं। उनकी 'परिवर्तन' नामक कविता में ओजगुण के भव्य दर्शन होते हैं।

प्रश्न —७. 'नौका विहार' शीर्षक कविता पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

पंत जी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। 'नौका विहार' में आपने प्रकृति का सुन्दर एवं चेतन स्वरूप प्रस्तुत किया है। इसमें प्रकृति का शान्त, सौम्य और स्निग्ध रूप अत्यन्त आकर्षक है, यही कारण है कि आपकी यह रचना अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रकृति का मानवीकरण देखने योग्य हैं। गंगा का 'तापस बाला' के रूप में चित्रण देखिये—

सैकत शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त क्लान्त निश्चल।
तापस बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु करतल।
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आपकी सरस कल्पना और सुकुमार भावना का परिचय भी नौका विहार में स्पष्ट रूप में मिलता है। कल्पना के रंगों से चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का जल में कैसा सुन्दर रूप आंका है—

लहरों के घूंघट से झुक झुक दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता मुग्धा सा रुक रुक।

यथार्थ का काव्यमय चित्रण भी आपने—नौका से उठती जल हिलोर, हिल उठते नभ के ओर छोर' पक्तियों में किया है। कवि का सूक्ष्म निरीक्षण भी देखते ही बनता है—

निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।

नदी के किनारे अपने प्रतिबिम्ब के साथ ऊंचाई में दुहरे प्रतीत होते है—इसको कवि की सूक्ष्म दृष्टि ने खूब देखा है।

अंत में कवि ने अपनी आध्यात्मिक रहस्य भावना का भी चित्रण कर कविता की उपादेयता में चार चांद लगा दिये हैं—

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम
हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका–विहार
में भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान।

कुछ परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों का सप्रसंग अर्थ लिखिये—

(१) हरित द्युति चंचल..............अस्पृश्य, अज्ञात।
(देखो 'वायु के प्रति' पृष्ट १४२)

(२) अविरत दुख है..............मानव जीवन का।
(देखो 'सुख दुख' का अंतिम अंश पृष्ट १४३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



(३) शांत, स्निग्ध ....................नीलाम्बर।

(देखो 'नौका विहार' प्रारम्भिक अंश पृष्ट १४३।

(४) नौका से उठती...............मुग्धा सा. रुक २।

(देखो नौका विहार, पृष्ट १४४)

(५) ज्यों ज्यों लगती हैं .........मुझ को अमरत्वदान।

(देखो 'नौका विहार' अन्तिम अंश पृष्ट १४५)

(६) यौवन की मांसल................स्वभाव पूर्ति।

( देखो 'मानव' पृष्ट १४६-१४७ )

(७) मानव का मानव पर............सको तुम मानव।

(देखो 'मानव' अन्तिम अंश, पृष्ट १४७)

(८) निर्वाणोन्मुख आदर्शों......जन विजयी साधारण।

(देखो 'महात्मा जी के प्रति' पुष्ट १४७)

(९) युग युग की संस्कृतियों..........यों ही निष्फल।

(देखो 'महात्माजी के प्रति' पृष्ट १४७-१४८)

(१०) सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण......आज चिर पावन।

(देखो 'महात्मा जी प्रति' पृष्ट १४८)

# सत्रह: महादेवी वर्मा

पृष्ट १५०

महादेवी वर्मा—

परिचय—महादेवी वर्मा का जन्म सम्वत १९६४ वि० में उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद नामक नगर में एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम गोविन्द प्रसाद वर्मा और माता का नाम हेम रानी देवी था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह डा० स्वरूप नारायण जी से कर दिया गया। परन्तु विवाहो परांत भी पिता के घर पर आपका अध्ययन चलता रहा। इस बीच आप गौतम बुद्ध के जीवन और सिद्धांतों से इतनी प्रभावित हुई कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



आप ने एकाँकी जीवन बिताने का निश्चय किया। यद्यपि आपकी साध तो बौद्ध भिक्षुणी बनने की थी परन्तु वह परिस्थिति वश पूरी न हो सकी अतः आप एम० ए० पास करके साहित्य और जन सेवा में जुट गईं। एम० ए० पास करने पर आप प्रयाग महिला विद्या पीठ की प्रधानाध्यापिका नियुक्त हुईं और आज भी उसी पद पर आसीन हैं। आपने कुछ वर्षों 'चाँद' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। कई साहित्यकारों के सहयोग से आपने प्रयाग में साहित्य संसद' की स्थापना की है जिसका उद्देश्य साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाशित करना और उनकी रचनाओं को प्रकाशित करना है।

महादेवी जी प्रमुख रूप से गीतिकार हैं परन्तु आपने गद्य के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलाई है। आपका गद्य अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रौढ़ होता है। आप चित्रकार भी हैं।

रचनायें—कविता (१) नीहार (२) रश्मि (३) नीरजा (४) सान्ध्यगीत (इन प्रथम चारों ग्रंथों का संग्रह 'यामा' नाम से भी प्रकाशित हुआ था) (५) दीप शिखा।

रेखाचित्र—(१) अतीत के चल चित्र (२) स्मृति की रेखायें,

निबन्ध—शृंखला की कड़ियाँ।

हिन्दी साहित्य में स्थान—हिन्दी के स्त्री कवियों महादेवी जी का प्रमुख स्थान है। आपने वेदना की जो धारा अपने गीतों में बहाई है वह रहस्य परम्परा में आपको मीरा के समकक्ष पहुँचा देती है। कवि और चित्रकार का मेल जो आपमें मिलता है वह हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं मिलता। छायावादी कवियों में पंत, प्रसाद निराला के साथ आपका नाम सदैव लिया जायगा। आधुनिक 'गीतकारों' में तो आपका स्थान उच्च है ही परन्तु इसके साथ साथ आपका गद्य लेखिका के रूप में जो स्वरूप मिलता है, वह भी परम उत्कर्ष को पहुँचा हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



# टीका

पृष्ठ—१०

अनन्य साधिका—

(महादेवी जी अपने प्रियतम द्वारा जगत के समस्त कार्यों को सम्पादित होते हुए देखती हैं, परन्तु इतना होते हुए भी प्रियतम को पहचान नहीं पाती। प्रिय को न पहचानते हुए भी वे उसकी अनन्य साधिका बनी रहना चाहती है और अपने को प्रिय की अमर सुहागिनी कहती हैं।

पथ देख बिता.............पहचानी नहीं।

शब्दार्थ—रैन=रात्री; तम=अन्धकार; सुवसित=सुगंधित; हिम जल=ओसकण,तुषार कण;

अर्थ—महादेवी जी कहती हैं—प्रियतम की बाट जोहते हुए सारी रात्री व्यतीत करदी परन्तु मैं प्रियतम को पहचान ही न पाई कि वह कब आया और कब चला गया। अन्धकार ने समस्त आकाश मार्ग धो दिया इस काय के लिये उसने सुगन्धित तुषार कणों का प्रयोग किया, भाव यह है कि अन्धकार ने आकाश मार्ग में तुषार कण फैला दिया अर्थात कुहरा चारों ओर छा गया जैसे कि प्रिय तम के आने का मार्ग धोकर स्वच्छ कर दिया गया हो। इसके साथ अन्धकार ने सूने आंगन में तारों के झिल मिल दीपक भी जला दिये परन्तु प्रातःकाल कौन अपरिचित व्यक्ति आकर इन दीपों को बुझा गया, मैं यह भी न जान पाई!

धर कनक थाल.............पहचानी नहीं।

शब्दार्थ—कनक=स्वर्ण; पाटल=गुलाबी रंग का; बालारुण=प्रातः कालीन-सूर्य; विगह=पक्षी; रव—आवाज;

अर्थ—प्रियतम के आगमन मार्ग से उषा मंडित स्वर्णिम थाल में सुगंधित एवं गुलाबी रंग का सा मेघ रख कर और नवोदित सूर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



की किरणों का कलश बना कर पक्षियों की आवाज का मंगल गान कराते हुए प्रातः आया प्रियतम के आगमन मार्ग से आते हुए प्रातः ने भी प्रियतम की कोई गाथा नहीं सुनाई। मैं प्रियतम को पहचान भी न पाई।

नव इन्द्र धनुष............पहचानी नहीं।

शब्दार्थ—चीर = वस्त्र; अंजन = काजल; अलि = भौंरा; मीलित = बन्द; पंकज = कमल, नूपुर—पायल,

अर्थ—मैं प्रियतम के ध्यान में मग्न मान किये बैठी रही, तो सन्ध्या मुझे मनाने के लिये नव इन्द्र धनुष सा बहुरंगी वस्त्र, सूर्यास्त समय की लालिमा रूपी महावर और तम रूपी काजल तथा भौंरें से गुन्जित बन्द कमल रूपी रुन झुन ध्वनि करने वाले पायल लेकर आई, परन्तु वह मुझे मना न पाई।

इन श्वासों के .........पहचानी नहीं

शब्दार्थ—आँकते—अंकित करते हुए, लिखते हुए; पलरीते = सूने क्षण।

अर्थ—अनेक युग मेरी इन श्वासों का इतिहास लिखते हुये व्यतीत हो गये हैं, सूने क्षण रोम रोम में पुलक भर कर फिर खाली करते रहते हैं अर्थात् शून्य क्षण रोम रोमको पुलकित करते हैं और मेरे नयनों से पानी नहीं ढुलक रहा अपितु यह तो मेरे प्रियतम की याद है, जो जल रूप में नयन से बाहर आ रही है। परन्तु मैं प्रियतम के स्वरूप को नहीं पहिचान पाई हूँ।

अलि कुहरा-सा.........................पहचानी नहीं।

शब्दार्थ — कुहरा = पाला; अनन्त = असीम; निश्चल = अचल;

अर्थ— हे सखि! कुहरे के समान यह आकाश और पानी के बुलबुले के समान यह विश्व मिटने वाला है परन्तु दुख का राज्य असीम और अचल सा बनकर सदैव छाया रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



पृष्ठ—१५१

मैं तो अपने प्रियतम की अमर सुहागिनि हूं अर्थात् मैं सदैव सौभाग्यवती ही अपने अमरप्रिय के साथ रहूँगी, मैं केवल प्रेम-पथ की निशानी ही नहीं हूं। परन्तु मैं आज भी अपने प्रियतम को पहचान नहीं पाई हूँ।

आत्म-परिचय—

(आत्म-परिचय में महादेवी जी अपने को ब्रह्म की महान् सत्ता का एक अंश मानती हैं। वे अपने को ब्रह्म की अभिव्यक्ति का साधन मान कर ही कहतीं हैं—'वीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागनी भी हूँ'। उपनिषदों का एकात्मभाव का आप पर पर्याप्त प्रभाव है)

बीन भी..................................प्रवाहिनी भी हूँ।

शब्दार्थ—बीन=वीणा; अचल=गहरी; निस्पन्द=शान्त; स्पन्दन=हलचल; कूलहीन प्रवाहिनी=किनारों से रहित धारा

अर्थ—महादेवी कहती हैं—हे ईश्वर! मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और तुम्हरी रागनी भी हूं अर्थात मैं आपकी अभिव्यक्ति का साधन हूँ सृष्टि के आरम्भ में जब प्रत्येक कण शान्त अवस्था में था, तब वह मेरी ही हगी नींद थो और जब सृष्टि का आरम्भ होने पर जगत में जो प्रथम हलचल हुई, वहाँ मेरी जाग्रति थी। प्रलय में भी मेरा पता या अस्तित्व था और अब जीवनमें भी मेरे चरण चिन्ह हैं अर्थात सृष्टि के अन्त और प्रारम्भ दोनों में मेरा स्वरूप जीवित रहता है। वास्तव में मैं एक शाप हू जो इस शारीरिक बन्धन में वरदान बन गया हूँ क्योंकि असीम ब्रह्म से वियोग होने के कारण मानव जन्म शाप है परन्तु शरीर के बन्धन में पड़ कर वह वरदान भी है क्योंकि इस प्रकार उसे अपनी ससीम सत्ता का ज्ञान होता है। मैं विस्तृत: कूल और कूल हीन सरिता दोनों ही हूं। कूल से तात्पर्य यहाँ ससीम सत्ता से है और कूल हीन प्रवाहिनी से तात्पर्य असीम सत्ता से है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नयन में जिसके... ... ... .... ...सुहागिनी भी हूं

शब्दार्थ—जलद=बादल; तृषित=प्यासा; शलभ=पतंगा

अर्थ—मैं उस प्यासे चातक के समान हूँ जिसके नेत्रों में सदैव बादल घूमा करते हैं. मैं वह निष्ठुर दीपक हूँ जिसके प्राणों में पतंगा बसा रहता है और मैं वह व्याकुल बुलबुल हूँ जो अपने हृदय में पुष्पों की याद छिपाये रहती है। अर्थात मेरे नयनों, प्राण और हृदय में प्रियतम या परमात्मा समाया रहता है (यहां पर बादल, पतंगा और पुष्प परमात्मा के प्रतीक हैं और चातक, दीपक और बुलबुल आत्मा के प्रतीक हैं।) मैं वह चंचल छाया हूँ जो एक होकर भी शरीर से दूर रहती हूँ अर्थात मैं ब्रह्म का ही एक वह चंचल अंश हूँ जो उसका एक अंश होने पर भी उससे दूर रहता है। परन्तु मैं तुमसे दूर रहने पर भी अखंड सौभाग्यवती हूँ क्योंकि मैं सर्वदा तुम्हें अपने में छिपाये रहती हूँ यद्यपि तुम मेरे से दूर हो

आग हूँ ... ... ... ... ... ... ...दामिनी भी हूं

शब्दार्थ—हिमजल=ओस-कण; पाँवड़े=पैर रखने के लिये फैलाया हुआ कपड़ा!; पत्थर=पत्थर; आधार=मूल करण, परमात्मा; दामिनी=बिजली,

अर्थ—मैं वह अग्नि हूं जिससे शीतल ओस की बूंदें ढुलकती हैं अर्थात् मैं विरह वेदना में जलती हूँ परन्तु इस जलन के कारण जो अश्रु ढुलकते हैं वे शीतल होते हैं मैं वह शून्य हूं जिसके लिये क्षणों के पांवडे बिछे हैं अर्थात मेरा जीवन शून्यता ही युक्त है शून्यता क्षणों के पांवडे पर चलकर आती है भाव यह है कि क्षण क्षण शून्यता मेरी ओर चलती चली आती है मैं वह रोमन्च या प्रसन्नता हूं जो कठोर पत्थर में पोषण पाती है अर्थात् मैं कठिनतम परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहती हूं और मैं वही प्रतिबिम्ब हूँ जो परमात्मा के हृदय में विराजमान है अर्थात मैं परमात्मा की ही छाया हूं मैं नीला बादल भी हूं और उसमें चमकने वाली सुनहली बिजली भी अर्थात् जिस प्रकार बिजली बादल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



में छिपी रहती है उसी प्रकार मैं भी परमात्मा का अंश हूं और बिजली की तरह कभी २ प्रकट हो जाती हूँ।

नाश भी मैं हूँ.......... ... ... ........चाँदनी भी हूँ

शब्दार्थ—आसक्ति = मोह ; तम = अन्धकार ; आघात = चोट

अर्थ—मैं नाश मय भी हूं और असीम विकास का क्रम भी क्योंकि शरीर नश्वर है और आत्मा क्रमिक विकास का साधन। मैं त्याग का महान दिवस भी हूँ और महान मोह की रात्रि भी, क्योंकि जीवन में निर्मल विचार धारा प्रवाहित करने से ज्ञान का प्रकाश होता है और मोह एवं ममता में पड़े रहने से अज्ञान का अन्धकार छा जाता है मैं तार भी हूँ और उसपर होने वाले आघात और उससे निकलने वाली झंकार भी हूँ इसी प्रकार मैं मधु का पात्र अथवा पुष्प भी हूँ और उसमें स्थित मधु भी हूँ और उस मधु पर उत्पन्न होने वाली भौंरे की आत्म विस्मृति भी हूँ मैं ही ओठ हूँ और ओठों पर नाचने वाली मुस्कान की चाँदनी भी हूँ। भाव यह है कि मैं ही कारण हूं और मैं ही कार्य भी, मैं परमात्मा किसी प्रकार भिन्न नहीं हूँ

शाश्वत विरह —(महादेवी जी विरह में दीपक की भांति जलने की इच्छुक हैं। वह अपना हृदय दीप जलाकर अपने प्रियतम के पथ को सदैव आलोकित रखना चाहती हैं। इस दीप को अमर बनाने के लिए वे अपने नेत्रों के अक्षय कोषों से अश्रु जल रूपी तेल भरती रहती हैं) परन्तु इस प्रकार जीवन दीप के जलने का एक मात्र उद्देश्य अपने प्रिय के पथ को आलोकित करना है और उसके मंगल कामना में ही उनके जीवन की सार्थकता है; इसी में उनका कल्याण है।

मधुर मधुर.......... ... ........... ...अणु २ गल।

पृष्ठ १५२

शब्दार्थ—आलोकित = प्रकाशित, विपुल = अत्यन्त, मृदुल = कोमल; सिन्धु = समुद्र, अपरिमित = असीमित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—हे मेरे जीवन दीप तू मधुरता के साथ जलता रह और युग युगों तक प्रतिक्षण एवं प्रतिपल इसी प्रकार जल कर प्रियतम के पथ को प्रकाशित करता रह। जिस प्रकार बहुत सी धूप जलाने पर सुगन्धि फैलती है उसी प्रकार तू भी सुगन्धि विकीर्ण कर। मेरे कोमल शरीर तू दीपक रुप में कोमल मोम की तरह घुलता चला जा और इस प्रकार हे दीप ! तेरे जीवन का प्रत्येक कण गल गल कर प्रकाश का असीम सागर प्रदान करें।

पुलक पुलक ..............................तुझमें मिल।

शब्दार्थ—विश्व शलभ=संसार रूपी पतंगा,

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू पुलकित होकर प्रसन्नता के साथ जलता रह तुझे इस प्रकार ज्योतिर्मय देखकर समस्त शीतल, कोमल और नूतन पदार्थ तुझसे ज्वाला के कण अर्थात चिनगारी मांग रहे हैं जिससे कि वे भी तेरी तरह जल सकें और संसार रूपी पतंगा सिर धुन २ कर यह कहता है कि हाय ! मैं तेरे साथ मिलकर तेरी तरह न जल पाया।

सिहर सिहर ...........है बादल।

शब्दार्थ—सिहरना=कांपना; असंख्यक=अनेक; स्नेह-हीन =तेल रहित; उर=हृदय, विद्युत=बिजली

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप! तू कांपता हुआ ही जलता रह। देख आकाश में असंख्य तेल(स्नेह) रहित तारों के दीपक जल रहे हैं उस पर तू तो स्नेह युक्त हैं अतः जलने में फिर भय क्यों? देख बड़वाग्नि के रूप में समुद्र का भी हृदय जलता है और बादल भी बिजली रूपी अग्नि से घिरे रहते हैं।

विहंस विहंस.......... हल चल।

शब्दार्थ— विहंस= हंसता हुआ,द्रुम=वृक्ष, हृदयंगम= हृदय में छिपाना, वसुधा=पृथ्वी, जड़=अचेतन, तापों=अग्नियों।

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू हंसता हुआ जलता रह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



वृक्षों के अत्यन्त हरे और कोमल अंग भी ज्वाला को अपने हृदय से लगाते हैं अर्थात दावाग्निी प्रज्वलित होने पर जल उठते हैं और इस पृथ्वी के अचेतन हृदय में अग्नियों की हल चल वन्द हैं जो ज्वाला-मुखी के रूप में निकल पड़ती है ।

बिखर बिखर............चंचल

शब्दार्थ—निश्वास=लम्बी लम्बी सांस, द्रुततर =तीव्र, सुभग=सुन्दर,

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू अत्यन्त विस्तार के साथ जलता रह। मेरी तीव्र लम्बी बम्ली सांसों से हे सुन्दर ! तू बुझने की चिन्ता मत कर। हे चंचल दीप ! मैं अपनी कोमल पलकों के अंचल की ओट किये हुए हूँ अतः इस ओट में तुझे बुझने का भय नहीं करना चाहिये।

सहज सहज............आंसू जल

शब्दार्थ—सहज-सहज=स्वभाविक गति से; लघुता=छोटा-पन

पृष्ठ १५३

अनादि=जिसका आरम्भ न ज्ञात हो; दृग नेत्र; अक्षय जिसका कभी नाश न हो; कोषों=भंडार,

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू स्वाभाविक गति से जलता रह ससीमता ही लघुता का बन्धन है अर्थात सीमाबद्ध होना लघुता का मूल कारण है परन्तु तू किसी प्रकार लघु नहीं तू तो अनादि है अतः तू मृत्यु की घड़ियां मत गिन मैं अपनी आंखों के अक्षय भंडार से तुझे अमर बनाने के लिये नित्य अश्रु जल रूपी तेल भरती रहती हैं,

सहज सहज........................अंकित करता चल

शब्दार्थ—विद्युत=विजली

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू स्वाभाविक गति से जलता रह अन्धकार अपरिमित है परन्तु तेरा प्रकाश भी तो अमर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इसलिए अन्धकार और प्रकाश का खेल निरंतर चलता रहेगा तू अन्धकार के कण कण में बिजली के समान अमिट चिन्ह अंकित करता हुआ बढ़ता चल। भाव यह है कि जगत में निराशा रूपी अंधकार अपार है परन्तु जीवन दीपक का आशा रूपी प्रकाश भी शाश्वत है अतः महादेवी कहती हैं कि हे जीवन दीप तू निराशा में आशा का प्रकाश भरता चल।

सरल सरल ........................ आलोकित कर

शब्दार्थ—क्षय = नष्ट; स्मिति = मुस्कान; मदिर = मस्त

अर्थ—हे मेरे जीवन दीप ! तू सरलता से जलता रह। तू जल जल कर जितना ही मिटता है उतना ही वह छलिया प्रियतम समीप आता जाता है प्रियतम के बिल्कुल समीप आने पर जब तेरा उससे मधुर मिलन हो उस समय तू उसकी निर्मल मुस्कान में ही घुलमिल कर अपने को मिटा देना। अर्थात तेरा यही लक्ष्य है कि तू अपने को मिटाकर समय आने पर अपने प्रियतम में ही लीन हो जाना।

हे मेरे जीवन दीप ! तू मस्ती के साथ जलता रह और प्रिय के पथ को सदैव प्रकाशित करता रह।

फूल के प्रति—

(इस छोटी सी कविता में महादेवी जी ने पुष्प का सुन्दर मानवीकरण किया है।)

मधुरिमा के ........................ कोमल प्राण ?

शब्दार्थ—मधुरिमा = माधुर्य; सुषमा = शोभा, छविमान = सुशोभित, सहमे = डरे; अभिराम = सुन्दर; बान = आदत

अर्थात—महादेवी जी फूल को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—माधुर्य और मधु के अवतार पुष्प, तुम अमृत और शोभा का सा साक्षात रूप लेकर, अत्यन्त शोभा युक्त होकर; आँसुओं की तरह सहमें होने पर भी सुन्दर और ताराओं की तरह शांत और भोले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



होकर, हे कोमल प्राणों को धारण करने वाले। यह मुस्काने की आदत तुम कहाँ से सीख कर यहां आये हो।

स्निग्ध रजनी.........................................संदेश!

शब्दार्थ— स्निग्ध=स्नेहमयी; मकरन्द=पराग

अर्थ— मन को मोहित करने वाला स्वर्ग का संदेश देने वाले हे पुष्प! प्रेममयी रात्रि से मुस्कान लेकर और सौन्दर्य से अपने समस्त अंगों को भरकर और नये पत्तों का घूंघट डाल कर तथा अपना निर्मल पराग लेकर तुमने यह देश कैसे ढूंढ़ लिया?

रजत किरणों-से............................ .मुस्काते फूल।

शब्दार्थ— रजत किरण=चन्द्रमा की रूपहली किरण; पखार—धोकर; सौरभ=सुगन्धि; एकाकी=अकेले।

अर्थ— चन्द्रमा की रूपहली किरणों से अपने नयनों को धोकर और अद्‌भुत सुगन्धि का भार लेकर, तथा माधुर्य का छलकता हुआ भण्डार लेकर तुम अकेले ही इस पार चले आये।

पृष्ठ—१५४

हे छोटे से सुन्दर पुष्प! क्या तुम मार्ग भूलकर यहाँ चले आये हो?

उषा के छू........................................की बाट।

शब्दार्थ— आरक्त=लाल, किलक पड़ता=हंस पड़ता; उन्माद=मस्ती; हाट=बाजार; बाट हेरना=प्रतीक्षा करना।

अर्थ— उषा के लाल लाल कपोलों का स्पर्श द्वारा प्राप्त करके तेरी मस्ती एकबार खिलखिला कर हंस पड़ती है। तारोंके बुझते हुए जीवन को देख कर न जाने तुझे क्या याद आ जाता है। हे पुष्प! यह तो बताओ यह तुम्हारी सुगन्धि का बाजार किस निर्मम व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहा है?

चाँदनी का श्रृंगार....................................कारागार?

शब्दार्थ— कोर=किनोरा; लटा=दुर्बल कर; अतीत=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



व्यतीत समय ; अभिनव=नया ; कारागार=बन्दी गृह ।

अर्थ— चाँदनी की शोभा को अपने में समेट कर, तुम्हारी अधखुली आँखों के किनारे अपने अमूल्य यौवन को दलित कर किस प्राचीन काल की ओर देख रहे हैं। हे पुष्प ! यह तुम्हारा नवीन प्रेम ही एक दिन तुम्हारे लिये वन्दी गृह सिद्ध होगा।

कौन वह है...... ..... ... ..... ..... .. के संसार

शब्दार्थ — सम्मोहन राग=मोहित करने वाला गीत ; सुकुमार=कोमल ; कर्तार=बनाने वाला।

अर्थ—हे सुकुमार पुष्प ! वह कौनसा ऐसा मोहित करने वाला गीत है जो तुम्हें यहां पर खींच कर ले आया। वह कौन निष्ठुर तुम्हारा निर्माता या स्वामी हैं जिसने तुम्हें इस देश में भेज दिया है, अब तुम यहां आ गये हो तो हे मधुर और भोले पुष्प ! कांटों का हार पहन कर भी तुम हंसते रहो, भाव यह. हैं कि यह विश्व यातना मय है अतः अब तो यही उत्तम हैं कि इन यातनाओं के बीच रह कर भी हंसते रहो।

**आलोचनात्मक प्रश्न—**

प्रश्न-१. 'महादेवी की रचनाओं में नारी हृदय को विशेष रूप से स्थान मिला है' इस कथन को सप्रमाण पुष्ट कीजिये,

## उत्तर

'महादेवी की रचनाओं में नारी हृदय को विशेष स्थान मिला है'—इस कथन से क्या तात्पर्य है, पहले यह समझने की आवश्यकता है महादेवी स्वयं नारी हैं और उनका हृदय उनके काव्य में बोल रहा है—यह तो स्पष्ट ही है तो फिर उपर्युक्त कथन से प्रश्नकर्ता का क्या अभिप्राय है। वस्तुतः बात यह है कि नारी हृदय को स्थान मिलने का भाव यहहैं कि महादेवी जी का काव्य नारीकी स्वाभाविक प्रकृति प्रसूत करुणा,वेदना और कोमलता का भंडार है। महादेवी पीड़ा' की गायिका हैं। महादेवी का प्रेम अलौकिक हैं, विराट के प्रति प्रेम करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



विरह में जो करुण अनुभूति महादेवी के हृदय ने की है उसका ही उन्होंने गीतमय चित्रण किया हैं। प्रियतम में अपने आस्तित्व को खोने वाली नारी की की भावना आपकी निम्न पंक्तियों में कितनी सजीव हो उठी है

वीन भी हूँ में तुम्हारी रागिनी भी हूं।
हूँ वही प्रतिविम्व जो आधार के उर में
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ ।।

प्रियतम के मार्ग को आलोकित करने के लिये अपने शरीर रूपी दीप को जलाते रहने की भावना भी नारी के त्याग की परिचायक है—इसी त्याग का स्वरूप इन पंक्तियों में चित्रित है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग, प्रतिदिन प्रति क्षण प्रतिपल
पियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन ;
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन।
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित ;
तेरे जीवन का अणु-अणु गल।

नारी जीवन की करुण कहानी का सजीव चित्र भी देखिये—

इन ललचायी पलकों पर
पहरा जब था व्रीडा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का
उस सोने के सपने को
देखे कितने युग वीते
आखों के कोष हुए है
मोती बरसाकर रीते!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अपने इस सूनेपन की
मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जला कर
करती रहती दीवाली!
मेरी आहे सोती हैं
इन ओठों की ओटों में
मेरा सर्वस्व छिपा है
इन दीवानी चोटों में!

विरह में जीवन की यथार्थता का जो अंकन इन पंक्तियों में हुआ है उसमें नारी हृदय की विवश वेदना और उस पर भी प्राणों को तिल तिल जला देने की भावना ही प्रमुख है। आहें भी ओठों की ओट में छिपी रहती हैं अर्थात आह आती है पर निकलती नहीं—यही मूक नारी हृदय की आवाज है जिसे प्रत्येक नहीं सुन सकता है, केवल वही महान प्रिय सुनता है जिसे महादेवी विरह में भी समीप देखती हैं

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी जी के काव्य मे प्रिय और प्रेयसी भाव प्रमुख हो गया है। उनका प्रेम अलौकिक है जिसमें शरीर रहते हुए प्रिय से मिलने की कोई संभावना नही है। ऐसी दशा में उनकी पीड़ा शाश्वत बन गई है। इसी शाश्वत पीड़ा की अनुभूति में नारी हृदय का स्वाभाविक स्वरूप आपकी रचनाओं में विशेष रूप से प्रस्फुटित हुआ है।

प्रश्न—२. महादेवी उच्च कोटि की रहस्य वादी कवियित्री क्यों मानी जाती है?

## उत्तर

प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व रहस्यवाद क्या है, यह समझना आवश्यक है। वस्तुतः रहस्यवाद के विषय आत्मा और परमात्मा हैं। डा० राम कुमार वर्माने रहस्यवाद का विश्लेषण करते हुए निम्नलिखित परिभाषा दी है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



रहस्यवाद जीवात्मा की अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत प्रोत हो जाती है।

वास्तव में रहस्यवाद के अन्दर प्रधान रूप से एक जिज्ञासा होती है। इस संसार का चक्र किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा चलता है वह शक्ति कहां हैं; कैसी हैं, उसे किस प्रकार देखा जा सकता है यह इच्छा मनुष्य में सदैव बलवती रहती है। इस रहस्य को जानने के लिये वह सदैव आकुल रहता हैं। अतः रहस्यवाद मानव की इसी अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासामय अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है। दूसरे शब्दों में इसे हम ब्रह्म के प्रति प्रणय निवेदन कह सकते हैं। रहस्यवाद के भी दो रूप हैं—(१) साधनात्मक रहस्यवाद (२) भावात्मक रहस्यवाद। पहले में अज्ञात शक्ति ब्रह्म के स्वरूप को समझाने के लिए साधना का सहारा लिया जाता है जैसा कि संतों और सूफियों के रहस्यवाद में हठयोग की क्रियाओं द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का आदेश मिलता हैं। दूसरे में भावना के आधार उस अज्ञात चिर सुन्दर प्रियतम का स्वरूप जानने के लिए प्रणय निवेदन किया जाता है।

महादेवी रहस्यवादी कवियित्री इस कारण मानी जाती है क्योंकि उनमें दूसरे प्रकार का अर्थात भावात्मक रहस्यवाद मिलता है परम ब्रह्म को प्रियतम के रूप में आपने देखा है। उस प्रियतम के अज्ञात स्वरूप को जानने के लिये वर्मा जी कितनी व्याकुल हैं—

पथ देख बिता दी रैंन; मैं प्रिय पहचानी नहीं।
तम ने धोया नभ पंथ सुवासित हिम जल से,
सूने आंगन में दीप जला दिये झिलमिल से,
आ प्रात बुझा गया कौन; अपरिचित जानी नहीं,
मैं प्रिय पहचानी नहीं!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


आपके हृदय में मधुर पीड़ा का रग भरते हुए प्रियतम से वे पूछती हैं—

"कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

एक मधुर पीड़ा का वे अनुभव करती हैं। यह पीड़ा उनके प्रियतम की दी हुई है। उसी में वे निमग्न रहती हैं और उससे मिलने को व्याकुल रहती हैं—

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ
एक होकर दूर तन से छांह वह चल हूँ
दूर तुमसे हूँ; अखंड सुहागिनी हूँ।

महादेवी जी की रहस्यानुभूति में प्रेम की मात्रा अधिक है लौकिक प्रेममें कभी मिलन तो कभी विछोह होताहै पर आलौकिक प्रेम व्यवहार में रहस्य वादी का यह दुर्भाग्य है कि उसका प्रियतम अज्ञात और निराकार होता है इस तरह शरीर रहते हुए उससे मिलने की कोई संभावना नहीं रहती है। ऐसी दशामें उसकी पीड़ा शाश्वत होजाती है। महादेवी जी इसी शाश्वत पीड़ा की गायिका है। इस लिये गा उठती हैं—

चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना
है पीड़ा की सीमा यह,
दुख का चिर सुख हो जाना।
मेरे छोटे जीवन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें
भरती न आंसू के सागर ।

अतः स्पष्ट है कि रहस्यवाद का सुन्दर प्रस्फुटन महादेवी जी के काव्य में हुआ है यही कारण है कि वे रहस्यवादी कवियित्री कही जाती हैं ।

प्रश्न—३–"महादेवी मुख्यतः विरह वेदना की कवियित्री है" —इस कथन को सप्रमाण स्पष्ट कीजिये !

## उत्तर

महादेवी जी के काव्य की पहली विशेषता दुख वाद है क्यों कि विरह वेदना उनके काव्य का प्राण है वेदना के पीछे तो वे अमरतत्व का भी तिरस्कार कर देती हैं और मर्त्यलोक का निवास ही श्रेयस्कर समझती हैं। वेदना शोक जलन स्वर्ग में कहां अतः वे स्वर्ग नहीं चाहती—

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिस में अवसाद
जलना जाना नहीं; नहीं
जाना क्या होता विषम विषाद
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार ।

और आपकी कविता—'मैं नीर भरी दुख की बदली' तो बहुत प्रसिद्ध है जो विरह वेदनात्मक भावनाओं को व्यक्त करती हुई उनकी जीवन कहानी सूत्र रूप में प्रस्तुत कर देती है।

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मैं नीर भरी दुख की बदली ।

वर्मा जी ने जीवन को विरह से ही परिपूर्ण देखा है—

विरह का जल जात, जीवन विरह का जल जात ।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात ।
जीवन विरह की जल जात

अर्थात जीवन विरह रूपी जल में उत्पन्न कमल के समान है । उनके आंसुओं के मूल्य को समझने वाला कोई नहीं । कमल पर बिखरे ओस बिन्दुओं को जैसे सूर्य बीन लेता है और रात उसे फिर बखेर देती है वैसे ही दिन को उनके आंसू सूख जाते हैं और रात को वे फिर आंसुओं से भर जाती हैं ऐसा वेदना से परिपूर्ण है उनका जीवन ।

अंत में यही विरह उनके लिए मधुर बन जाता है और वे कह उठतीं हैं—'विरह की घड़ियां हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी' । और भी—'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूं ।

अपने अंतस में प्रिय की मधुर छवि चुराये व्यथा के भार को भी वे हंसकर ले चलती है और इसी का गान गाती हैं । यही कारण है कि वेदना भी उन्हें प्रिय बन जाती है और वे उसी में मस्त होकर गाती हैं—

पीड़ा में तुमको ढूंढ़ा,
तुममें ढूंढ़ूंगी पीड़ा ।

प्रश्न ४ पठित सामग्री के आधार पर महादेवी के काव्य की विशेषतायें बताइये ।

## उत्तर

पठित सामग्री के आधार पर हम महादेवी जी के काव्य में निम्नलिखित विशेषतायें देखते हैं—

(१) प्रथम विशेषता तो यह है कि वे रहस्यवादी कवियित्री हैं । उनका रहस्यवाद भावात्मक है इस रहस्यानुभूति से प्रेम की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मात्रा अधिक है। रहस्यवाद के तीनों रूप—(१)जिज्ञासा (२)विरह (३)मिलन, उनमें मिलते हैं।

(२) दूसरी विशेषता यह है कि उनका काव्य वेदना प्रधान है विरह में स्वयं जल जल कर भी वे प्रियतम के पथ को आलोकित करना चाहती हैं—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल,
युग युग,प्रतिदिन,प्रतिक्ष ण,प्रतिपल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर,

(३) तीसरी विशेषता है प्रकृति का भव्य चित्रण। 'पुष्प के प्रति' कविता उन्होंने पुष्प का जो मानवी करण किया है वह अभिनव है। फूल से उन्होंने कहा है—

स्निग्ध रजनी से लेकर हास , रूप से भर कर सारे अंग ,
नये पल्लव का घूंघट डाल , अछूता ले अपने मकरन्द ,
ढुंढ़ पाया कैसे यह देश ?
स्वर्ग के मोहक हे संदेश !

प्रातः आगमन का भी वर्णन बड़ा मन मोहक उनके काव्य में एक स्थान पर मिलता है—

धर कनक थाल में मेघ सुवासित पाटल सा,
कर बालारुण का कलश विहग-रव मंगल सा
आया प्रिय पथ से प्रात सुनाई कहानी नहीं
में प्रिय पहचानी नहीं।'

४) चौथी विशेषता यह है कि छायावादी प्रवृति भी उनके काव्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। ऊपर प्रातः काल के चित्रण में छायावाद की सुकुमारता देखने योग्य है।

(५) पाँचवीं विशेषता आपकी भाषा सम्बन्धी है। महादेवी जी की भाषा अत्यन्त परिष्कृत और सरस है। संस्कृत-गर्भित होते हुए भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



उसमें एक विशेष सरलता और तरलता है। भाषा में चि. प्रस्तुत करने की शक्ति भी उल्लेखनीय है।

(६) छटी विशेषता आपकी गीतात्मक है। आप सफल गीति-यत्री हैं। पठित सामग्री में पहली कविता 'अनन्य साधिका' गीतिकाव्य का एक उदाहरण है।

प्रश्न (५)— गीति काव्य से आप क्या समझते हैं ? महादेवी और पंतजी के गीति काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार कीजिये।

## उत्तर

गीतिकाव्य के निम्नलिखित लक्षण हैं:—

गीति काव्य मुक्तक के रूप में होना चाहिये। प्रत्येक पद संगीत के तत्व से युक्त अर्थात गेय होना चाहिये। गीत न बहुत बड़ा होना चाहिये न बहुत छोटा जिससे भाव भी पूरा न हो सके। गीत में प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ हृदय का सौन्दर्य भी मिला होना चाहिये. कृत्रिमता न होनी चाहिये। छंद सरल और भाषा प्रवाहमयी होनी आवश्यक है। रस विशेष रूप से शृंगार वात्सल्य या शान्त होने चाहिये। कुटिल कठोर प्रसंग गीतिकाव्य के योग्य नहीं होते। गीतिकाव्य में न कथोपकथन को आवश्यकता है और न चरित्र चित्रण की उसमें तो भावों की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति ही वांछनीय हैं।

महादेवी और पंत का गीत काव्य—

गीत की जिस परम्परा का अनुसरण 'प्रसाद' 'पंत' 'निराला' आदि ने किया है उसकी पूर्णता महादेवी के काव्य में लक्षित होती हैं उपर्युक्त तीनों कवि आध्यात्मवादी होते हुए भी श्रृंगार से मोह करते है पर महादेवी इससे बची हुई हैं, इनके गीत मीरा के पदों के समान हैं। महादेवी जी के गीतों में करुणा तथा माधुर्य का प्राधान्य लक्षित होता है। महादेवी जी के गीतों के छंद मात्रिक हैं और कुछ तो लोक गीतों के ढंग पर लिखे गये हैं। नाद सौन्दर्य तथा मधुर प्रवाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इन की विशेषता है। इनका संगीतभी कम आकर्षक नहीं है जो क्रमशः भव्य होता गया है। 'नीरज' से 'सान्ध्यगीत' मधुर है और सान्ध्य गीत से 'दीपशिखा'। आपके गीतों में अर्थालंकारों का बाहुल्य है और शब्दालंकारों की कमी है। आपके गीतों की भाषा उच्च कोटि की खड़ी बोली है जिसमें संस्कृत के शब्द उचित मात्रा में पाये जाते हैं। कुछ गीतों में उर्दू के कई प्रचलित शब्द भी आ गये हैं जैसे—फीका, बेदाग, लबालब और कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग हुआ है—जैसे लीप, गगरी आदि। महादेवी जी के गीतों में मानवी करण सांकेतिकता के खूब दर्शन होते हैं। वस्तुत: आपके गीत भाव भाषा कला सर्वगुण सम्पन्न हैं।

माधुर्य और छायावाद की वांछित प्रांजलता पंत के गीतों में ही सर्व प्रथम आ पाई है। पंत जी के गीत उच्च कोटि के संगीत से भरे पड़े हैं आपने अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। पंत जी के गीत प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण हैं जिन्हें उन्होंने बिना प्रयास स्वाभाविक ढंग से गाया है प्रारम्भिक पुस्तकों में पंत जी के गीत अधिक मधुर और सरस हैं और दार्शनिक होते जा रहे हैं निश्चय ही आजकल के लिखे गीत अधिक ठोस हैं और उनमें सत्य का विशेष अंश पाया जाता है आपने अपने गीतों में मूर्त के लिये अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया है एक स्थान पर आपने 'प्रेयसि' को चन्द्रिका की झंकार कहा है। आपके गीतों में वर्तमान रुढ़ियों के प्रति क्रान्ति की भावना भी निहित है,

प्रश्न—६. महादेवी की भाषा की विशेषताएं बताइये ?

## उत्तर

महादेवी जी की भाषा संस्कृत-गर्भित खड़ी बोली है उसमें कहीं भी कर्कशता और शुष्कता नहीं है सरसता सुन्दरता और मधुरता तीनों गुण उनकी भाषा में मिलते हैं भाषा की सरसता और भावों की कोमलता का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



चाँदनी का शृंगार समेट अधखुली आँखों की यह कोर
लटा अपना यौवन अनमोल, ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार,
किसी दिन होगा कारागार ?

आपकी भाषा की एक सबसे बड़ी विशेषता चित्रोपमता हैं आपके चित्र भाषा द्वारा अंकित बड़े ही सजीव होते है इसका एक कारण यह भी है कि आप कवियित्री होने के साथ साथ चित्रकार भी हैं प्रातःकाल का एक चित्र देखिये—

धर कनक थाल में मेघ सुवासित पाटल सा
कर बालारुण का कलश विहग रव मंगल सा
आया प्रिय पथ से प्रात .. ..........

मात्रा पूर्ति के लिये अपने यत्र तत्र तुकों का अंग भंग भी किया है 'आधार' का 'आधार' ज्योति मा 'ज्योति' इसके प्रमाण हैं

आपकी भाषा में लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त भावों के लिये मूर्त योजनायें पर्याप्त मिलती हैं। छायावाद का प्राण मानवीकरण भी आपके काव्य में कम नहीं है। 'अन्धकार' का मानवीकरण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है—

तम ने धोया नभपंथ सुवासित हिम—जल से
सूने आँगन में दीप जला दिये झिल मिल से।

आपकी भाषा में अलंकारों का स्वाभाविक प्रवाह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समासोक्ति, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आपके प्रिय अलंकार हैं।

प्रश्न—७ आपको महादेवी की जो रचना प्रिय हो, उसकी विशेषतायें लिखिये।

## उत्तर

महादेवी जी की "मधुर मधुर मेरे दीपक जल, युग युग, प्रति दिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल; प्रियतम का पथ आलोकित कर,, रचना मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



अति प्रिय है इसमें महादेवी जी ने जो अपने हृदय गिरि में भावों की सरिता बहाई है उससे सिक्त होकर प्रत्येक प्राणी अपने जीवन को सफल बना सकता है यह रचना मानव को उसके जीवन का लक्ष्य स्पष्ट बता देती है आत्मा उसी प्रियतम या परमात्मा का अंश है जो इस जग का सृष्टा है आत्मा पंच भूत शरीर को जीवन प्रदान करती है अतः इस जीवन रूपी दीपक को सदैव जलाते रहना ही प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है इस लिये ही महादेवी जी प्रारम्भिक पंक्तियों में ही कहती हैं

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग, प्रति दिन प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

इसी जीवन दीप को जला जला कर ही प्रियतम के आने का मार्ग प्रशास्त हो सकता है प्रियतम के लिये अपने को मिटाने की उत्कट इच्छा स्पष्ट है —

दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु अणु गल

आत्मा की अमरता का संदेश भी महादेवी जी ने इस कविता में दिया है वे कहती हैं

हैं अनादि तू मत, घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से —
तुझमें भरती हूँ आंसू—जल।

आत्मा अमर है और शरीर नश्वर है। जीवन दीप परमात्मा से लौ लगाये हुए जल जल कर जितना क्षय होता जाता है उतना ही प्रियतम समीप आता जाता है और मिलन प्रहर बुझ जाता है यही भाव जीवन दीप को सम्बोधित करते हुए महादेवी की लेखनी से प्रसूत हुए हैं—

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



मधुर मिलन में मिट जाना तू,
उसकी उज्वल स्मित में घुल मिल।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जब तक आत्मा एक शरीर धारण किए हुए हैं, तब तक परम पिता परमात्मा से उसका एकाकार संभव नहीं। शरीर के वाह्य उपकरणों को छोड़कर ही वह उसमें मिल सकता है इसी तथ्य को, दीपक का प्रतीक मानकर, महादेवी ने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है अतः स्पष्ट है कि देवी जी की रहस्यात्मक भावना का कलात्मक, सुन्दर स्वरूप इस कविता में मिलता है।

कुछ परीक्षा की दृष्टि से उपयोगी स्थल—

निम्नलिखित पद्यांशों का अर्थ सप्रसंग लिखिये—

(१) इन श्वासों के इतिहास...... पथ की निशानी नहीं
(देखो 'अनन्य साधिका' पृष्ट १५०)

(२) वीन भी हूं..................प्रवाहिनी भी हूं
(देखो 'आत्म परिचय' पृष्ट १५१)

(३) नाश भी हूँ मैं.................चांदनी भी हूँ।
(देखो 'आत्म परिचय' पृष्ट १५१)

(४) मेरी निश्वासों से......सहज सहज मेरे दीपक जल
(देखो 'शाश्वत विरह' पृष्ट १५२ १५३)

(५) तम असीम तेरा....... मदिर २ मेरे दीपक जल
(देखो 'शाश्वत विरह' पृष्ट १५३)

(६) मधुरिमा के............... मोहक है संदेश
(देखो 'फूल के प्रति' पृष्ट १५३)

(७) उषा के छू..............दिन होगा कारागार
(देखो 'फूल के प्रति' पृष्ट १५४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



# अठारह: रामधारी सिंह 'दिनकर'

पृष्ठ १५५

**रामधारी सिंह 'दिनकर'—**

परिचय—रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता और प्रगतिशीलता का अभूतपूर्व समन्वय देखने को मिलता है आपका जन्म सवत १९६५ वि० में बिहार के जिला मुंगेर के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था। आपने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के विद्यालय में ही प्राप्त की थी। तत्पश्चात आपने बी० ए० की परीक्षा पटना विश्वविद्यालय से प्राप्त की। काव्य की ओर आपकी रुचि बाल्यकाल से ही थी 'प्रणभंग' आपके विद्यार्थी जीवन की रचना है जो उसी समय प्रकाशित हो गई थी जब आप एंट्रेंन्स में थे आपकी प्रसिद्धि आपके काव्य ग्रंथ 'रेणुका' के प्रकाशित होने के पश्चात हुई। दिनकर जी के काव्य की प्रमुख विशेषता उसकी राष्ट्रीय भावना है। आपका दूसरा काव्य ग्रंथ 'हुकार' के प्रकाशित होने पर राष्ट्रीय कवियों में आपकी गणना होने लगी थी। वस्तुतः आपने काव्य क्षेत्र में उस समय प्रवेश किया जब छायावादी कविता ह्रासोन्मुख थी और प्रगतिवादी धारा नई सामाजिक चेतना को जन्म दे रही थी, अतः हृदय और बुद्धि को अपनी ओर खींचने वाले इन दोनों आकर्षणों के परस्पर द्वन्द्व के बीच दिनकर ने युगानुकूल मार्ग ही निकाला। यही कारण है कि जीवन की वर्तमान दैन्यता और कुरूपता के प्रति विद्रोह की भावना आपके काव्य में तीव्र हो उठी है।

रचनायें—कविता—प्रणभंग, रेणुका; हुंकार; रसवन्ती, द्वन्द्व गीत, धूपछाँह, सामधेनी, बापू, कुरुक्षेत्र आपका अत्यन्त प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है जिसमें दो व्यक्तियों—युधिष्ठर और भीष्म के बीच मानव समाज की विविध समस्याओं विशेषतः युद्ध और शाँति पर विचारों का आदान प्रदान होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



एक आलोचनात्मक ग्रंथ 'मिट्टी की ओर' भी आपने लिखा है।

**साहित्य में स्थान**—हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में दिनकर का स्थान प्रमुख हैं दिनकर में अनुभूति की सच्चाई है—यही उनके काव्य की प्रवाभोत्पादकता का आधार है। मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता अतीत संस्कृति के अंचल में विकसित हुई है, बालकृष्ण शर्मा नवीन की राष्ट्रीयता प्रलयों के स्वरों से निनादित है, माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीयता त्याग और बलिदान से पोषित है परन्तु दिनकर का राष्ट्रीय साहित्य इन सब भावों का अपने में समावेश करके एक विशेष जीवन और कम्पन लेकर अवतरित हुआ है। यही कारण है कि राष्ट्रीय कवियों में आपका अद्वितीय स्थान हैं।

# टीका

## पृष्ठ—१५५

## आधुनिक मानव—[कुरुक्षेत्र से]

**संदर्भ संकेत**—प्रस्तुत अंश 'कुरुक्षेत्र' से अवतरित है। कवि ने इस सर्ग में धरणी पर स्वर्ग उतारने का प्रयास किया हैं। कवि मानव बुद्धि का विकास देखकर प्रसन्न है—'यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास। चरण तल भूगोल, मुट्ठी में निखिल आकाश।'

कवि की यही कामना हैं कि विज्ञान मानव के हाथ में फूल बन कर रहे वज्र न बने।

धर्म का दीप.......................... सका संसार।

**शब्दार्थ**—अभिषिक्त=सिंचित ; रसा=पृथ्वी ;

**अर्थ**—कवि कहता है— हे भगवान ! इस संसार में वह सुन्दर समय कब आयेगा जब धर्म और दया के दीपक जल उठेंगे ? और कब दया और धर्म की कोमल ज्योति से सिंचित होकर शुष्क और सतप्त पृथ्वी के जीवन में सरसता का संचार होगा ? यद्यपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



इस पृथ्वी पर चिरकाल तक अमृत वर्षा भी होती रही है परन्तु अभी तक यह विश्व पूर्णतः शीतल नहीं हो पाया है ।

भोग लिप्सा ........................ पुरानी राह ।

**शब्दार्थ**—भोग लिप्सा=विषय भोग की लालसा ; उद्दाम=प्रचंड, उग्र; निष्काम=कामना से रहित ; ईसु=ईसा मसीह ; मात्र=केवल ; वाचिक=वाणी द्वारा किया हुआ ; दग्धकर=जलाकर ; पर—दूसरा ।

**अर्थ**—आज भी संसार में विषय भोग की लालसा प्रचंड रूप में लहरा रही है और मानव की कामना रहित कर्म करने की भावना असहाय सी होकर बह रही है अर्थात निस्वार्थ भाव से कार्य का विचार पूर्णतः मानव द्वारा त्याग सा दिया गया है । भीष्म युधिष्ठर, बुद्ध, अशोक, गाँधी, ईसा मसीह अथवा भगवान में से कोई भी क्यों न हो सबको मनुष्य सिर झुकाता है, और अपने से श्रेष्ठ भी मानता है परन्तु उन्हें ये सम्मान केवल वाणी से ही प्रदान करता है । इस प्रकार वचन द्वारा ही महान पुरुषों का मान करता हुआ मनुष्य दूसरों को भी दुख पहुंचाता हुआ और स्वयं भी दुखों में जलता हुआ अपनी पुरानी राह पर ही चला जा रहा है ।

अपहरण शोषण ........................ भरता नाग ।

**शब्दार्थ**—अपहरण=लूटना, शोषण=चूसना, कुत्सित=बुरा, अभियान=चढ़ाई, उन्माद=पागल पन,

**अर्थ**—आज भी संसार में पूर्ववत लूटमार और शोषण की क्रिया चली आ रही है । अनेक विकार और बुराइयों से युक्त आक्रमण और चढ़ाई की भावना भी मानव हृदय में घुसी हुई है जिसके कारण एक दूसरे को भस्मीभूत करके स्वयं की उन्नति के साधन खोजने का प्रयत्न करता है । परस्पर व्यवहारिक समस्याओं को शील से आज मानव नहीं हल करता है और वह बार बार पागलपन की तलवार उठाकर वार करने को सबद्ध रहता है, आज भी द्रोह से उसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



प्रेम देखा जाता है जैसा कि पहले कभी था, और मानव के प्राणों में विषैला सर्प फुफकारता रहता है, जो समस्त वातावरण की मधुरता को हर लेता है।

पृष्ट १५६

पूर्व युग सा.................................संसार।

शब्दार्थ—गूढ़=रहस्यमय, संसृति=संसार, अमित=बहुत; गुरु=महान

अर्थ—पूर्व युग की तरह आज जीवन में लाचारी का कोई स्थान नहीं है क्योंकि अब संसार द्वापर युग से बहुत आगे बढ़ चुका है यह समय विज्ञान की उन्नति का है जो सर्व प्रकार से पूर्णता और समर्थता का सूचक है। इस रहस्यमय संसार के अनेक गुढ़ या महान अर्थ अर्थात रहस्य आज खुल चुके हैं। यह संसार बुद्धि की पतवार हाथ में लेकर अज्ञान के अन्धकार को चीरता हुआ आज प्रकाश की नवीन भूमि पर आ पहुँचा है।

आज की दुनियाँ.............................एक समान।

शब्दार्थ—आसीन=बैठा हुआ; वारि=जल, व्यवधान=रूकावट, सरित=नदी, गिरि=पर्वत,

अर्थ—आज का संसार अत्यन्त ही नवींन और अद्‌भुत है विजय पुरुष ने सब जगह प्रकृति को वश में कर उसकी सत्ता पर अपना आसन जमा दिया है। मनुष्य ने अपने हाथों में जल, बिजली और भाप को बांध रखा है और उसकी आज्ञा से वायु का तापक्रम तक कम हो जाता है। अब मानव के मार्ग में कोई रुकावट शेष नहीं है, वह नदी पर्वत और समुद सब कुछ लांघ सकता है।

शीश पर आदेश.................................हन संदेश।

शब्दार्थ—अवधार्य=धारण करके, व[illegible]श=समुद के देवता

अर्थ—मनुष्य की आज्ञा को शिरोधार्य करके प्रकृति के समस्त तत्व उसके कार्यो को करने में संलग्न रहते हैं। महान समुद्र के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



देवता वरुण भी मानव की आज्ञा का पालन करते हैं और वह आकाश भी उसके संदेश का पालन करता है जो शब्द गुण सम्पन्न है अर्थात प्रत्येक प्रकार के शब्द को अपने अन्तर में पचा लेता है।

नव्य नर की ........................कुछ बलिदान।

शब्दार्थ—नव्य=नवीन ; मुष्टि=मुठ्ठी ; निस्सीम=सीम रहित ; निखिल=समस्त ; निःशेष=सम्पूर्ण ।

अर्थ—नवीन मानव की मुट्ठी में प्रत्येक क्षण दिशायें और काल सिमटते जा रहे हैं अर्थात अब दूरी और समय दोनों ही मानव के प्रयत्नों द्वारा सिमट कर छोटे होते जा रहे हैं। मानव की यह प्रगति सीमा रहित है और उसका यह विकाश भी अभूतपूर्व है। समस्त पृथ्वी उसके चरणों के नीचे है और समस्त आकाश उसके हाथ में है। परन्तु यद्यपि अब मनुष्य का सम्पूर्ण मस्तिष्क उन्नति कर रहा है, पर वह हृदय प्रदेश को पीछे छोड़ कर ही इतनी प्रगति कर सका है अर्थात वह हृदय की सरलता और कोमलता को छोड़ बैठा है। मानव आज नित्य बुद्धि के पर्व मनाता है अर्थात् बुद्धि की सफलता पर उत्सव मनाता हैं परन्तु उसके प्राणों में देवता दुखी होकर चीत्कार करते हैं। भाव यह है कि देवता रूपी सरल एवं स्वाभाविक गुण उसके हृदय में छटपटाते हैं। ये सरल देवता ज्ञान का प्यासे नहीं हैं अपितु ये तो प्रेम और बलिदान के इच्छुक हैं।

पृष्ट १५७

मोम सी कोई........................लिये लघु गेह।

शब्दार्थ—विजन=वन ; मरु=रेगिस्तान ; राज=रहस्य; गलती हुई=मिटती हुई ; मंदगामी=धीरे धीरे चलने वाली ; कर्म संकुल=कर्मों से परिपूर्ण; उर=हृदय; हेतु=लिये; लघु गेह =छोटा सा घर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri



अर्थ—मोम जैसी कोई मृदुल वस्तु, जहां मन में व्यथा की अग्नि से पिघल उठती है अर्थात् व्यथा के कारण जहाँ कोमल भावनायें जाग्रत हो उठती हैं; व्यथा की अग्नि से झुलसे हुये प्राणों के उपवन में जहाँ कुछ कोमल पुष्प खिलते हैं. ज्ञान की मरुभूमि में जहां कोमल भावनाओं की धारा प्रवाहित होती है, जहां चाँदनी रूपी रागिनी छाई रहती है अर्थात जिस प्रकार सुन्दर चांदनी छाई रहती है उसी प्रकार कर्णप्रिय रागनियां वायुमंडल में निनादित होती रहती हैं और जहां प्रातः काल की थोड़ी सी मुस्कान खिलती है, जहा नींद में भूली हुई अर्थात् शान्त और विस्मृत सी नदी का कल कल गायन होता है, जहां खिलती हुई कली का रहस्य प्रकृति के रंग अथवा सौन्दर्य में विलीन हो जाता है, जहां पत्तियों पर ओस की बूंदों के गिरने की आवाज गूंजती है, जहां दुख की तस्वीर आसुओंकी अविरल धारा में मिटती रहती है, जहाँ पुष्प की रस में बसी और भीगी मन को आकर्षित करने वाली जंजीर हैं, जहां धूम अर्थात शोर हैं; कोलाहल हैं और जहां धूल छाई रहती है तथा थकावट की अनुभूति होती है— वहाँ से दूर दूसरी ओर ही वह स्थान जहां शीतल जल की मंद मंद गति से बहने वाली धारा है, जहां वृक्ष के नीचे बैठकर मन को विश्राम मिलता है जहां मनुष्य कर्मों से परिपूर्ण सांसारिक जीवन से कुछ समय छीन कर अपनी कुछ छुटियों और कुछ सन्ध्याकालीन क्षण व्यतीत कर सकता है और जहां मनुष्य कुछ क्षण स्वयं एकान्त में अपने पुष्पवत कोमल हृदय को विकसित करने के लिए और संध्या को अपनी दिन भर की कमाई के शुभाशुभ पर बिचार करने के लिये अपने को तन्मय कर सकता है।

जितना सुख जीवन में भोगना चाहिये उससे अधिक यह मानव शरीर सुख भोग चुका है अतः अब देवता अर्थात शुभ गुण मन में प्रतिष्ठित होने के लिए थोड़ा सा स्थान चाहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



हाय रे मानव ........................ न तुझको याद ।

शब्दार्थ—नियति=भाग्य, मनुपुत्र=मनु का पुत्र अर्थात् मनुष्य, उपहास=हंसी; प्रच्छन्नता=परदा, आवरण; परिमेय=जिसको नापा जा सके; ससीम; परमाणु=अत्यन्त सूक्ष्म कण(atom) अजेय=जो जीता न जा सके;

पृष्ट १५८

पवमान=पवन, हवा, निरुपाय=साधन हीन, ग्रह तारक=नक्षत्र; नाद=शब्द, शोर ।

अर्थ—शोक है कि मानव भाग्य का दास बना हुआ है अर्थात वह भाग्य पर अपना अधिकार नहीं रखता । इस प्रकार हे मनु के पुत्र ! मानव तू अपना उपहास आप ही करा रहा है । तूने प्रकृति के पर पड़े एक परदे को उठा कर अर्थात उसके रहस्यों को ज्ञात कर उस पर विजय प्राप्त कर ली है । तू सागर से लेकर आकाश तक को आंतकित किये हुए हैं, अपनी बुद्धि के द्वारा तूने इस संसार को भी ससीम बना दिया है । परमाणु का अस्तित्व, जो आज तक असीम और अजेय समझा जाता था; उस परमाणु को भी तूने चीर डाला है । परन्तु इस बुद्धि की वायु में तू किधर असहाय सा उड़ा जा रहा है और साधन हीन सा तू किस दिशा में अग्रसर हो रहा है । तेरा लक्ष्य क्या है ? तेरा उद्देश्य क्या है ? तेरा इस सबसे वास्तविक तात्पर्य क्या है ? यदि तू यह नहीं जानता तो यह बुद्धि (विज्ञान) का परिश्रम व्यर्थ ही है । तू आकाश पर चढ़कर नक्षत्रों की आवाज तक सुन लेता है परन्तु एक छोटी सी बात तुझे याद नहीं आती ।

एक छोटी ........................ पशु नीच ।

शब्दार्थ—वासना=इच्छा, सुखभोग, यामिनी=रात्रि, तिमिर=अन्धकार, भ्रात=भ्रम में पड़ा हुआ; अहार=भोजन, सुरभि=सुगन्धि, रुधिर=रक्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri


अर्थ—एक छोटी और सीधी सी बात है कि संसार भर में सुख भोग की इच्छा रूपी रात्रि छाई हुई है। यह रात्रि ऐसी है कि जिसके अन्धकार पर मानव विजय नहीं पा सका है तथा इससे पराजित होकर भ्रान्ति में पड़ा हुआ वह अपने आप को ही अपना भोजन बना रहा है अर्थात् वह अपनी समाप्ति स्वयं अपने हाथों से कर रहा है। इसकी बुद्धि आकाश की सुगन्धि से परिपूर्ण है अर्थात इसकी बुद्धि उन्नति की ओर उन्मुख है परन्तु इसके शरीर में जो रक्त की कीचड़ भरी हुई है। यह बचन से तो देव तुल्य है परन्तु इसके कर्म ऐसे हैं जिससे यह नीच पशु की कोटि में आता है, भाव यह है कि जैसी इसकी कथनी है वैसी करनी नहीं। कबीर ने भी एक स्थान पर कहा है—

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करे, तो विष से अमृत होय॥

यह मनुज.....................और जग विस्तीर्ण

शब्दार्थ—यान=सवारी, जहाज; करों=हाथों; परमाणु= Atom; गिरी=पर्वत; भू=पृथ्वी; गुह्यतम=अत्यन्त गुप्त; अज्ञेय= अज्ञात; विघ्न=बाधा; दुर्जेय=जिन्हें जीतना कठिन हो नव्य=नवीन; उत्कर्ष=उन्नति; सुपरीक्षिता=अच्छी तरह परीक्षा की हुई; विश्लिष्ट =विश्लेषण की हुई; प्रवेग=जोश, हस्तामलक=हाथ पर रखे हुए आंवले के समान; नर-प्रज्ञा=मानव-बुद्धि, उद्दाम=बन्धनरहित, उग्र

पृष्ठ - १५६

व्योम=आकाश, संकीर्ण=छोटा;

अर्थ—यह वही मनुष्य है जिसकी सवारी आकाश में भी चलती है और जिसके हाथों को देख कर परमाणु भी कांप जाते हैं। पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और आकाश जिसके सामने अपना हृदय खोल कर अपना अत्यन्त गुप्त इतिहास भी सुना चुके हैं। अब तो सब परदे खुल चुके हैं, अब यहां क्या अज्ञात है? अर्थात कुछ भी अज्ञात नहीं है परन्तु मानव को तो नित्य विचार और संघर्ष करने के लिये नवीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri



नवीन विघ्न-बाधायें चाहिये और नवीन उन्नति प्राप्त करने के लिये नये विजय के क्षेत्र चाहिये । परन्तु यह अपनी पृथ्वी तो उसके लिये अब कोई आनन्द का विषय नहीं क्योंकि यह तो अच्छी तरह से परीक्षित है और इसका वह पूर्णतः विश्लेषण कर चुका है ।यह तो एक पढ़ी हुई पुस्तक के समान है अतः उसे नवीन उत्साह प्रदान करने में असमर्थ है । यह गोल भू मंडल उसके लिये हाथ पर रखे हुए छोटे आंवले के समान है, यह एक ऐसी पुस्तक है जिसके सब पृष्ठों को मानव ने खोल कर पढ़ लिया है अर्थात् वह इसके सब रहस्यों से सुपरिचित है। परन्तु फिर भी मानव-बुद्धि सदैव गतिशील और स्वतन्त्र रहती है और वह एक क्षण के लिये भी कहीं रुक कर विश्राम नहीं करती।

यह धरा जिसकी मानव पूर्ण परीक्षा कर चुका है 'यह एक पढ़ी हुई पोथी के समान है और अत्यन्त प्राचीन है अतः अब उसे सोचने के लिये क्या नवीन बात दे । यह पृथ्वी एक छोटा सा ग्रह है यह आकाश भी अत्यन्त छोटा है परन्तु मनुष्य को तो अब एक नवीन विस्तृत जगत की आवश्यकता है।

घुट रही नर-बुद्धि······ ············उठी है बोल।

शब्दार्थ— अपर ग्रह=अन्य नक्षत्र; तृषा=प्यास ;

अर्थ—इस संसार में, जिसे मनुष्य ने अपनी बुद्धि से जीत लिया है। उसकी बुद्धि की सांस घुट रही है अर्थात् उसकी बुद्धि को नवीन खोज करने का क्षेत्र नहीं मिल रहा है। मानव बुद्धि अब एक विस्तृत जगत और आकाश परीक्षा के हेतु चाहती है । मनुष्य के लिए यह पृथ्वी अत्यन्त छोटी पड़ गई है' अब उसके हृदय में अन्य ग्रहों पर विजय प्राप्त करने की पिपासा जाग उठी है।

यह मनुज विज्ञान ···················भक्तियुक्त प्रणाम।

शब्दार्थ—निष्णात=निपुण, विशेषज्ञ; स्यात= कदाचित; मंगल=एक ग्रह; विधु=चन्द्रमा; मृण्मय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri


शिखा=लौ, ज्योति उद्दाम=महान् ; भक्ति युक्त=भक्ति से भरे हुए। चराचर=जड़ और चेतन।

अर्थ—यह मानव विज्ञान में अत्यन्त निपुण है, जो कदाचित् किसी दिन मंगल और चन्द्रमा से भी बात करने लगेगा। यह मनुष्य अखिल ब्रह्मांड का सबसे सुन्दर प्रकाश है, इससे आकाश या भूमि कोई भी अपना रहस्य नहीं छिपा सकते। यह मनुष्य जिसकी ज्ञान ज्योति महान् है उसको सब चेतन और जड़ भक्ति भाव के साथ प्रणाम करते हैं।

यह मनुज जो ज्ञान…… ……………ये अपवित्र।

शब्दार्थ—आगार=भंडार; श्रेय=यश देने वाला ; चैतन्य =सजग ; व्यवधान=परदा ; रसवती=रसों से परिपूर्ण ; अग्निय=अग्निमय ; दाहक=जलाने वाला ; अभिशाप=शाप ; भ्रमित प्रज्ञा=भ्रम में पड़ी हुई बुद्धि ; कुतुक=कौतुक, विचित्र खेल; इन्द्रजाल=माया जाल ; आविष्कार=नई खोज।

अर्थ—यह मनुष्य जो ज्ञान का भंडार है और इस संसार की शोभा है, उसका यश इसी में है कि उसके सजग हृदय ने बुद्धि पर भी विजय पाई है। मानव का यश इसी में है कि उसने असंख्य मानवों से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया है। मानव और मानव के बीच का जो परदा हटा वे वही ज्ञानी है, विद्वान है और मानव भी है। समस्त रसों से युक्त भूमि पर बसने वाले मनुष्य का यश विज्ञान के कारण नहीं है। उसके यश का कारण यह ज्योतिर्मय विद्या और बुद्धि नहीं है, और न विश्व को जलाने वाले, मृत्यु के भार होने वाले संसार के दुख हैं, और न ज्ञान का वह शाप ही है जो भ्रान्ति के मार्ग पर मानव को अन्धा बना कर दौड़ा रहा है। यह सब भ्रम में पड़ी हुई बुद्धि का खेल है, और एक विचित्र माया जाल है। संसार के अपवित्र आविष्कार भी मानव के यश का कारण नहीं हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi